रिष्ट समुच्चय

रचयिता

श्री दिगम्बर जैनाचार्य दुर्गदेव

संपादक

पण्डित नेमिचन्द जैन शास्त्री, आरा

साहित्यरत्न, ज्योतिषाचार्य, न्यायतीर्थ,

प्रकाशक

वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, प्रकाशन, जयपुर

युगवीर-समन्तभद्र-ग्रन्थमाला

सम्पादक एवं नियामक :
डॉ. दरबारीलाल कोठिया, सेवानिवृत्त रीडर का. हि. वि. वि.

संस्थापक :
प. जुगलकिशोर मुख्तार "युगवीर"

रिष्ट समुच्चय
रचयिता :
श्री दिगम्बर जैनाचार्य दुर्गदेव

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :
डॉ. शीतलचन्द जैन
(मानद मंत्री)
वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट
८१/९४ पटेल मार्ग, (नीलगिरी मार्ग) मानसरोवर, जयपुर

अर्थ सौजन्य :
कु. इन्द्रसेना जैन
आर-२, राजस्थान विश्वविद्यालय परिसर, जयपुर

मूल्य . २०रुपये मात्र

द्वितीयावृत्ति - सन् १९९९

मुद्रण कार्य :
जैन कम्प्यूटर्स,
मंगलधाम, मंगलमार्ग, बी-१७०, बापूनगर, जयपुर-१५
फोन : ०१४१-७००७५१ फैक्स ०१४१-५१०२६५

प्रकाशकीय

प्रस्तुत "रिष्ट समुच्चय" श्री दिगम्बर जैनाचार्य दुर्गदेव द्वारा लिखित ज्योतिष विषयक १० वी शताब्दी की बहुमूल्य कृति है। संसार मे ऐसा कोई भी क्षण व्यतीत नही होता, जिसमे कोई घटना घटित न हो, इन सभी छोटी-बड़ी घटनाओ का कुछ अपना अर्थ और महत्त्व होता है। प्रत्येक मानव घटित घटनाओ के शुभाशुभ को जानना चाहता है। कारण, सभी घटनाये भलाई और बुराई की द्योतक होती है। अतएव मानव मन उन घटनाओ और रहस्यो को ज्ञात कर अनिष्टकारक फलो से बचने का प्रयास करता है। जैनाचार्यो ने इन घटनाओ के सम्बन्ध मे नियम निर्धारित किये है। जिससे मनुष्य अपनी भलाई कर सके और बुराई से बचने का प्रयास कर सके।

ज्योतिष के विभिन्न अगो मे रिष्ट ज्ञान को भी स्थान दिया है। रिष्ट की परिभाषा साधारणतया यही है कि ऐसे प्राकृतिक, शारीरिक चिन्ह जिनमे मत्यु के समय की सूचना मिलती हो, रिष्ट कहलाते है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे रिष्टो के सबध मे महत्त्वपूर्ण विचार किया गया है। रिष्टो द्वारा आयु का निश्चय कर काय और कषाय को कृश करते हुये सल्लेखना धारण कर आत्मकल्याण करना परम कल्याणकारी है। इसका स्वाध्याय करके जो साधक सल्लेखना धारण कर आत्मकल्याण करना चाहते है, वे मरण के पूर्व निमित्तो को जानकर अपनी साधना मे दृढ़ और सजग हो जायेगे।

यह ग्रन्थ इक्यावन वर्ष पूर्व पडित नाथूलाल शास्त्री ने श्री जवरचन्द फूलचन्द गोधा जैन ग्रंथमाला, मोतीमहल, इन्दौर से प्रकाशित करवाया था। सम्प्रति यह ग्रन्थ अनुपलब्ध था। इसकी प्रति पूज्यनीय आर्यिका संगमति माताजी ने कुमारी इन्द्रसेना जैन को उपलब्ध कराई और इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने की प्रेरणा दी। अत: माताजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते है।

कुमारी इन्द्रसेना जैन जिनवाणी के प्रति समर्पित विदुषी महिला हैं और उन्होंने इस कृति के प्रकाशन में अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया है। आपकी हार्दिक भावना थी कि भाद्रमास के मौन व्रत के उद्यापन के उपलक्ष्य में मौनप्रिय पूज्य उपाध्याय आनंदसागरजी के तेईसवें दीक्षा दिवस के अवसर पर उपाध्यायश्री के कर कमलों में भेंट की जाये। अतः देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति के प्रति समर्पित कुमारी इन्द्रसेना जैन जिनवाणी का प्रकाशन कर जैन संस्कृति की महती प्रभावना करे —ऐसी मेरी शुभभावना है।

इस ट्रस्ट से पूर्व में ४५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और इन ४५ ग्रन्थो के अतिरिक्त ट्रस्ट प्रकाशन के अन्तर्गत् संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागर महाराज के गुरु आचार्य प्रवर ज्ञानसागरजी महाराज द्वारा लिखित २४ ग्रन्थों का प्रकाशन भी श्री दिगम्बर जैन समाज अजमेर के आर्थिक सहयोग से हो चुका है। इस प्रकार ६९ ग्रन्थों के प्रकाशन के उपरान्त यह ७०वॉ ग्रन्थ रिष्ट समुच्चय प्रकाशित कर आपके समक्ष स्वाध्याय हेतु समर्पित है।

— डॉ. शीतलचन्द जैन
(मानद मत्री)
वीर सेवा मदिर ट्रस्ट
८१/९४ पटेल मार्ग, (नीलगिरी मार्ग) मानसरोवर, जयपुर

शुभाशीर्वाद

कु. इन्द्रसेना जैन, जयपुर द्वारा प्राचीन ग्रन्थ-प्रकाशन के अन्तर्गत् श्री दिगम्बर जैनाचार्य दुर्गदेव द्वारा रचित रिष्टसमुच्चय ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है, सराहनीय है।

आप जिनवाणी, जिनधर्म के प्रचार-प्रसार में जीवन समर्पण कर शतायु हो और धर्मवृद्धि करें – यही मेरा शुभाशीर्वाद है।

उपा० आनन्द सागर मुनि मौनप्रिय
१५.३.९६

समर्पण

परमपूज्य

प्रात:स्मरणीय

करुणानिधि

वात्सल्यमूर्ति

अतिशय योगी

शान्ति सुधामृत के दानी

ज्योति पुञ्ज

तेजस्वी अमर पुञ्ज

इस युग के मौनप्रिय साधक

जिनभक्ति के अमर प्रेरणास्रोत

पुण्य पुञ्ज गुरुदेव उपाध्यायश्री

१०८ आनन्दसागरजी महाराज

के २३वें दीक्षा दिवस के

शुभ अवसर पर उनके

कर-कमलों में

यह ग्रन्थ

सविनय

समर्पित!

कु. इन्द्रसेना जैन

मौनप्रिय उपाध्याय मुनि श्री १०८ आनन्दसागरजी महाराज

प्रस्तावना

ग्रन्थकर्त्ता आचार्य दुर्गदेव ने रिष्टों के विशाल विषय को बड़ी खूबी के साथ इस छोटे से ग्रन्थ में रखा है। आपने अपने समय के उपलब्ध सभी ग्रन्थों से रिष्ट-सम्बधी विषय को लेकर उसे इतने सजीव और स्वच्छ रूप में उपस्थित किया है कि पाठक अपनी रुचि और धैर्य का त्याग किये बिना जो चाहता है, पा लेता है। अनेक स्थानों पर पुरातन विचारों के विरुद्ध अपने स्वतन्त्र विचार और परिणाम इतने आत्मविश्वास के साथ रखे गये हैं कि हठात् यह मानना पड़ता है कि रचयिता ने केवल अनुकरण ही नहीं किया, किन्तु अपनी अप्रतिम प्रतिभा द्वारा मौलिकता का परिचय दिया है। इसी कारण इन्हें संग्रहकर्ता न मानकर एक मौलिक ग्रन्थकर्त्ता मानने को बाध्य होना पड़ता है। जब कभी कोई लेखक परम्परागत नियमों तथा रीतियों का बिना किसी कारण के उल्लङ्घन करता है, तो वह सच्चे संग्रहकर्त्ता के पद से च्युत हो जाता है, पर जब वही अपनी प्रतिभा के बल से उस विषय को नवीन ढंग से सजाकर रख देता है तो वह मौलिक लेखक की कोटि में आ जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में हम यही पाते हैं कि आचार्य ने पुरातन विषयों को नवीन ढांचे में ढालकर अपने ढंग से उनका सन्निवेश किया है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार करने के अनन्तर मनुष्य जीवन और जैनधर्म की उत्तमता का निरूपण कर विषय का कथन किया गया है। प्राक्कथन के रूप में अनेक रोगों और उनके भेदों का वर्णन है, यह १६ गाथाओं तक गया है। विषय में प्रवेश करने के पश्चात् ग्रन्थकार ने रिष्टों के पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ ये तीन भेद बतलाये हैं। प्रथम श्रेणी में शारीरिक रिष्टों का वर्णन करते हुए कहा है कि जिसकी आंखें स्थिर हो जांय पुतलियां इधर-उधर न चलें, शरीर कांतिहीन काष्ठवत् हो जाय और ललाट में पसीना आवे वह केवल सात दिन जीवित रहता है। यदि बन्द मुख एकाएक खुल जाय, आंखों की पलकें न गिरें

इकटक दृष्टि हो जाय तथा नख-दांत सड़ जांय या गिर जांय तो वह व्यक्ति सात दिन जीवित रहता है। भोजन के समय जिस व्यक्ति को कड़ुवे, तीखे, कषायले, खट्टे, मीठे, और खारे रसों का स्वाद न आवे उसकी आयु एक मास की होती है। बिना किसी कारण के जिसके नख, ओठ काले पड़ जांय, गर्दन झुक जाय तथा जिसे उष्ण वस्तु शीत और शीत वस्तु उष्ण प्रतीत हो, सुगन्धित वस्तु दुर्गन्धित और दुर्गंधित वस्तु सुगंधित मालूम हो, उस व्यक्ति का शीघ्रमरण होता है। प्रकृति विपर्यास हो जाना भी शीघ्र मृत्यु का सूचक है। जिसका स्नान करने के अनन्त वक्षस्थल पहले सूख जाता है तथा अवशेष शरीर गीला रहता है वह व्यक्ति सिर्फ पन्द्रह दिन जीवित रहता है। इस प्रकार पिण्डस्थ रिष्टों का विवेचन १७ वीं गाथा से लेकर ४० वीं गाथा तक—२४ गाथाओं में विस्तार पूर्वक किया गया है।

द्वितीय श्रेणी में पदस्थ रिष्टों द्वारा मरणसूचक चिन्हों का वर्णन करते हुए लिखा है कि स्नान कर श्वेतवस्त्र धारण कर सुगन्धित द्रव्य तथा आभूषणों से अपने को सजाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिये। पश्चात् "ओं ह्रीं णमोअरहंताणं कमले-कमले विमले-विमले उदरदेवि इटिमिटि पुलिन्दिनी स्वाहा" इस मन्त्र का इक्कीस बार जाप कर बाह्य वस्तुओं के संबंध से प्रकट होने वाले मृत्युसूचक लक्षणों का दर्शन करना चाहिये।

उपर्युक्त विधि के अनुसार जो व्यक्ति संसार में एक चन्द्रमा को नानारूपों में तथा छिद्रों से परिपूर्ण देखता है, उसका मरण एक वर्ष के भीतर होता है। यदि हाथ की हथेली को मोड़ने पर इस प्रकार न सट सके जिससे चुल्लू बन जाय और एक बार ऐसा करने पर अलग करने में देर लगे तो सात दिन की आयु समझनी चाहिये। जो व्यक्ति सूर्य, चन्द्र एवं ताराओं की कांति को मलिन स्वरूप परिवर्तन करते हुए एवं नाना प्रकार से छिद्र पूर्ण देखता है उसका मरण छः मास के भीतर होता है। यदि सात दिनों तक सूर्य, चन्द्र एवं ताराओं के बिम्बों को नाचता हुआ देखे तो निस्सन्देह उसका जीवन तीन मास का समझना चाहिये। इस तरह दीपक, चन्द्रबिम्ब, सूर्यबिम्ब, तारिका, सन्ध्याकालीन रक्तवर्ण धूमधूसित दिशाएँ, मेघाच्छन्न आकाश एवं उल्काएँ आदि के दर्शन

द्वारा आयु का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार ४१ वीं गाथा से लेकर ६७ वीं गाथा तक — २७ गाथाओं में पदस्थ रिष्टों का विवेचन किया गया है।

तृतीय श्रेणी में निजच्छाया, परच्छाया और छायापुरुष द्वारा मृत्युसूचक लक्षणों का बड़े सुन्दर ढंग से निरूपण किया है। प्रारम्भ में छाया दर्शन की विधि बतलाते हुए लिखा है कि स्नान आदि से पवित्र होकर "ओं ह्रीं रक्ते रक्ते रक्तप्रिये सिंह मस्तक समारूढे कूष्माण्डीदेवि मम शरीरे अवतर अवतर छायां सत्यां कुरु कुरु ह्रीं स्वाहा" इस मन्त्र का जाप कर छाया दर्शन करना चाहिए। यदि कोई रोगी व्यक्ति जहां खड़ा हो वहां अपनी छाया न देख सके या अपनी छाया को रूपों में देखे अथवा छाया को बैल, हाथी, कौआ, गधा, भैंसा और घोड़ा आदि नाना रूपों में देखे तो उसे अपना सात दिन के भीतर मरण समझना चाहिए यदि कोई अपनी छाया को नीली-पीली, काली और लाल देखता है तो वह क्रमशः तीन, चार, पांच और छः दिन जीवित रहता है। इस प्रकार अपनी छाया के रंग, आकार, लम्बाई, छेदन, भेदन आदि विभिन्न तरीकों से आयु का निश्चय किया गया है।

परच्छाया दर्शन की विधि का निरूपण करते हुए बताया है कि एक अत्यन्त सुन्दर युवक को जो न नाटा हो और न लम्बा हो, स्नान कराके सुन्दर वस्त्राभूषणों से युक्त कर "ओं ह्रीं रक्ते रक्ते रक्तप्रिये सिंहमस्तकसमारूढे कूष्माण्डीदेवि ममशरीरे अवतर अवतर छायां सत्यां कुरु कुरु स्वाहा" मन्त्र का १०८ बार जप करवाना चाहिए। पश्चात् उत्तरदिशा की ओर मुँह कर उस व्यक्ति को बैठा देना चाहिए, फिर रोगी व्यक्ति को उस युवक की छाया का दर्शन कराना चाहिए। यदि रोगी उस व्यक्ति की छाया को टेढी, अधोमुखी, पराङ्मुखी और नीले वर्ण की देखता है तो दो दिन जीवित रहता है। यदि छाया को हंसते, रोते, दौड़ते, बिना कान, बाल, नाक भुजा, जंघा, कमर, सिर और हाथ-पैर के देखता है तो छः महीने के भीतर मृत्यु होती है। रक्त, चर्बी, तेल पीव, जल और अग्नि छाया को उगलते हुए देखता है तो एक सप्ताह के भीतर मृत्यु होती है। इस प्रकार ९१ वीं गाथा तक परच्छाया द्वारा मरण समय का निर्धारण किया गया है।

छाया पुरुष का कथन करते हुए बताया गया है कि मंत्र से मंत्रित व्यक्ति समतल भूमि पर खड़ा होकर पैरों को समानान्तर कर हाथों को नीचे लटका कर अभिमान, छल-कपट और विषय वासना से रहित होकर जो अपनी छाया का दर्शन करता है, वह छाया पुरुष कहलाता है। इसका संबंध नाक के अग्र भाग से, दोनों स्तनों के मध्यभाग से गुह्यांगों से पैर के कोनों से ललाट से और आकाश से होता है। जो व्यक्ति उस छाया पुरुष को बिना सिर पैर के देखता है तो जिस रोगी के लिए छाया पुरुष का दर्शन किया जा रहा है वह छः मास जीवित रहता है। यदि कोई छाया पुरुष घुटनों के बिना दिखलाई पड़े तो अट्ठाईस महीने और कमर के बिना दिखलाई पड़े तो पन्द्रह महीने शेष जीवन समझना चाहिए। यदि छाया पुरुष बिना हृदय के दिखलाई पड़े तो आठ महीने, बिना गुह्यांगों के दिखलाई पड़े तो दो दिन और बिना कन्धों के दिखलाई पड़े तो एक दिन जीवन शेष समझना चाहिए। इस प्रकार छाया पुरुष के दर्शन द्वारा मरण समय का निर्धारण १०७ वीं गाथा तक किया गया है।

इसके पश्चात् १३० वीं गाथा तक स्वप्न दर्शन द्वारा मृत्यु लक्षणों का कथन किया है। इस प्रकरण के प्रारंभ में बताया है कि जिस रात को स्वप्न देखना हो उस दिन उपवास सहित मौन व्रत धारण करे और उस दिन समस्त आरंभ का त्याग कर विकथा एवं कषायों से रहित होकर "ओं ह्रीं पण्हसवणे स्वाहा" इस मंत्र का एक हजार बार जाप कर भूमि पर ब्रह्मचर्य पूर्वक शयन करे। यहां स्वप्नों के दो भेद बताये हैं-देव कथित और सहज। मन्त्र जाप पूर्वक किसी देव विशेष की आराधना से जो स्वप्न देखे जाते हैं वे देवकथित और चिन्ता रहित, स्वस्थ एवं स्थिर मन से बिना मंत्रोच्चारण के शरीर में धातुओं के सम होने पर जो स्वप्न देखे जाते हैं वे सहज कहलाते हैं। प्रथम प्रहर में स्वप्न देखने से उसका फल १० वर्ष में, दूसरे प्रहर में स्वप्न देखने से उसका फल पांच वर्ष में तीसरे में स्वप्न देखने से उसका फल छः महीने में और चौथे प्रहर में स्वप्न देखने से उसका फल दस दिन में प्राप्त होता है।

जो स्वप्न में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा को हाथ, पैर, घुटने, मस्तक, जङ्घा, कन्धा और पेट से रहित देखता है वह क्रमश

चार महीने, तीन वर्ष, एक वर्ष, पांच दिन, दो वर्ष एक मास और आठ मास जीवित रहता है अथवा जिस व्यक्ति के शुभाशुभ को ज्ञात करने के लिये स्वप्न दर्शन किया जा रहा है वह उपर्युक्त समयों तक जीवित रहता है। स्वप्न में छत्र भंग देखने से राजा की मृत्यु, परिवार की मृत्यु देखने से परिवार का मरण होता है। यदि स्वप्न में अपना नाश होना देखे या कौआ और गृद्धों के द्वारा अपने को खाते हुए देखे तो दो महीने की आयु शेष समझनी चाहिये। दक्षिण दिशा की ओर ऊँट, गधा और भैंसे पर सवार होकर घी या तैल शरीर में लगाये हुए जाते देखे तो एक मास की आयु शेष समझनी चाहिए। यदि काले रंग का व्यक्ति घर में से अपने को बलपूर्वक खींचकर ले जाते हुए स्वप्न में दिखलाई दे तो भी एक मास की आयु शेष जाननी चाहिये। रुधिर, चर्बी, पीव, चर्म, और तेल में स्नान करते या डूबते हुए अपने को स्वप्न में देखे या स्वप्न में लाल फूलों को बांधकर ले जाते हुए देखे तो वह व्यक्ति एक मास जीवित रहता है। इस प्रकार इस प्रकरण में विस्तार पूर्वक स्वप्न दर्शन का कथन किया गया है। इसके अनंतर प्रत्यक्षरिष्ट और लिंग रिष्टों का कथन करते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति दिशाओं को हरे रंग की देखता है वह एक सप्ताह के भीतर, जो नीले वर्ण की देखता है वह पांच दिन के भीतर, जो श्वेत वर्ण की वस्तु को पीत और पीत वर्ण की वस्तु को श्वेत देखता है वह तीन दिन जीवित रहता है। जिसकी जीभ से जल न गिरे, जीभ रस का अनुभव न कर सके और जो अपना हाथ गुप्त स्थानों पर रखे वह सात दिन जीवित रहता है। इस प्रकरण में विभिन्न अनुमान और हेतुओं द्वारा मृत्यु समय का प्रतिपादन किया गया है।

प्रश्न द्वारा रिष्टों के वर्णन के प्रकरण में प्रश्नों के आठ भेद बतलाये हैं—अंगुलीप्रश्न, अलक्तप्रश्न, गोरोचन प्रश्न, अक्षरप्रश्न शब्द प्रश्न, प्रश्नाक्षर प्रश्न लग्नप्रश्न और होराप्रश्न। अंगुलीप्रश्न का कथन करते हुए बताया है कि श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा के सम्मुख उत्तम मालती के पुष्पों से "ओं ह्रीं अर्हं णमो अरहंताणं ह्रीं अवतर अवतर स्वाहा" इस मंत्र का १०८ बार जाप कर मन्त्र सिद्ध करे। फिर दाहिने हाथ की तर्जनी को सौ बार मन्त्र से मंत्रित

कर आंखों के ऊपर रखकर रोगी को भूमि देखने लिए कहे, यदि वह सूर्य के बिम्ब को भूमि पर देखे तो छः मास जीवित रहता है। इस प्रकार अंगुलि प्रश्न द्वारा मृत्यु समय को ज्ञात करने की विधि के उपरान्त अलक्त प्रश्न की विधि बतलाई है कि चौरस पृथ्वी को एक वर्ण की गाय के गोबर से लीपकर उस स्थान पर "ओं ह्रीं अर्हं णमो अरहंताणं ह्रीं अवतर अवतर स्वाहा" इस मन्त्र को १०८ बार जपना चाहिए। फिर कांसे के बर्तन में अलक्त को भर कर सौ बार मन्त्र से मंत्रित कर उक्त पृथ्वी पर उस बर्तन को रख देना चाहिए। पश्चात रोगी के हाथों को दूध से धोकर दोनों हाथों पर मन्त्र पढ़ते हुए दिन मास और वर्ष की कल्पना करनी चाहिए पुनः सौ बार उक्त मन्त्र को पढ़ कर अलक्त से रोगी के हाथों को धोना चाहिए। इस क्रिया के अनन्तर हाथों के संधिस्थान में जितने बिन्दु काले रंग के दिखलाई पड़े उतने दिन, मास और वर्ष की आयु समझनी चाहिए। लगभग यही विधि गोरोचन प्रश्न की भी बतलाई है।

प्रश्नाकार विधि का कथन करते हुए लिखा है कि जिस रोगी के सम्बन्ध में प्रश्न करना हो वह "ॐ ह्रीं वद वद वाग्वादिनी सत्यं ह्रीं स्वाहा" इस मंत्र का जापकर प्रश्न करे। उत्तर देनेवाला प्रश्नवाक्य के सभी व्यञ्जनों को दुगुना और मात्राओं को चौगुना कर जोड़ दे। इस योगफल में स्वरों की संख्या से भाग देने पर सम शेष आये तो रोगी का जीवन और विषम शेष आने पर रोगी की मृत्यु समझनी चाहिये। अक्षर प्रश्न के वर्णन में ध्वज, धूम्र, खर, गज, वृष, सिंह, श्वान और वायस इन आठ आयों के अक्षर क्रमानुसार आयु का निश्चय किया गया है। शब्द प्रश्न में शब्दोच्चारण, दर्शन आदि के शकुनों द्वारा अरिष्टों का कथन किया गया है। इस प्रकरण में शब्द श्रवण के दो भेद बतलाये हैं—देवकथित शब्द और प्राकृतिक शब्द। देवकथित शब्द मन्त्राराधना द्वारा सुने जाते हैं और प्राकृतिक में पशु, पक्षी, मनुष्य आदि के शब्द श्रवण द्वारा फल का कथन किया गया है। शब्द प्रश्न का वर्णन बहुत विस्तार से है।

होराप्रश्न इसका एक महत्वपूर्ण अंश है, इसमें मंत्राराधना के पश्चात् तीन रेखाएं खींचने के अनन्तर आठ तिरछी और खड़ी

रेखाएं खींचकर आठ आर्यों को रखने की विधि है तथा इन आर्यों के वेध द्वारा शुभाशुभ फल का सुन्दर निरूपण किया है। शनिचक्र, नरचक्र इत्यादि चक्रों द्वारा भी मरण समय का निर्धारण किया गया है। विभिन्न नक्षत्रों में रोग उत्पन्न होने से कितने दिनों तक बीमारी रहती है और रोगी को कितने दिनों तक कष्ट उठाना पड़ता है, आदि का कथन है। लग्न प्रश्न में प्रश्न कालीन लग्न निकालकर द्वादश भावों में रहनेवाले ग्रहों के सम्बन्ध से फल का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार 'रिष्टसमुच्चय' पर एक विहंगम दृष्टि डालने से उसके विषय का पता लगता है। इस ग्रन्थ में रचयिता ने जैन मान्यता का ही अनुसरण किया है, जैनेतर का नहीं। यद्यपि अपने अध्ययन का अंश आरण्यक, अद्भुतसागर, चरक, सुश्रुत प्रभृति जैनेतर ग्रंथों को भी दुर्गदेव ने बनाया है, किन्तु मूलतः जैन परंपरा का ही अनुसरण किया है। गोमूत्र, गोदुग्ध द्वारा अंगशुद्धि का विधान लौकिक दृष्टि से किया है। ओघनिर्युक्ति, उपमिति भवप्रपञ्चिका, संवेगरंगशाला, केवलज्ञानहोरा, योगशास्त्र आदि जैन ग्रंथों की परम्परागत अनेक बातें रिष्टसमुच्चय में संकलित की गई हैं, पर यह संकलन ज्यों का त्यों नहीं है, बल्कि रचयिता ने अपने में पचाकर उसे एक नवीनरूप प्रदान किया है, जिससे वह संकलन-कर्त्ता न होकर मौलिक ग्रन्थकार की कोटि में परिगणित किये जाते हैं।

आचार्य दुर्गदेव और उनके कार्य

रिष्टसमुच्चय के कर्त्ता आचार्य दुर्गदेव के सम्बन्ध में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है, केवल इस ग्रन्थ के अन्त में जो गुरु परम्परा दी गई है, उसी पर से निर्णय करना पड़ता है। जैन साहित्य में तीन दुर्गदेव के नाम मिलते हैं। प्रथम दुर्गदेव का उल्लेख मेघविजय के वर्षप्रबोध में मिलता है, इनके द्वारा निर्मित षष्ठिसंवत्सरी नामक ग्रन्थ बतलाया है। उद्धरण निम्न प्रकार है—

अथ जैनमते दुर्गदेवः स्वकृतषष्ठिसंवत्सरग्रन्थे पुनरेवमाह—

ॐ नमः परमात्मानं वन्दित्वा श्रीजिनेश्वरम्।

केवलज्ञानमास्थाय दुर्गदेवेन भाष्यते ॥
पार्थ उवाच—भगवन् दुर्गदेवेश ! देवानामधिप ! प्रभो !!
भगवन् कथ्यतां सत्यं संवत्सरफलाफलम् ॥
दुर्गदेव उवाच—शृणु पार्थ ! यथावृत्तं भविष्यन्ति तथाद्भुतम् ।
दुर्भिक्षं च सुभिक्षं च राजपीडा भयानि च ॥
एतद् योऽत्र न जानाति तस्य जन्म निरर्थकम् ।
तेन सर्वं प्रवक्ष्यामि विस्तरेण शुभाशुभम् ॥

× × × × × × × × ×

भणियं दुग्गदेवेण जो जाणइ वियक्खणो ।
सो सव्वत्थ वि पुज्जो णिच्छयओ लद्धलच्छी य ॥

दूसरे दुर्गसिंह 'कातन्त्रवृत्ति' के रचयिता हैं तथा इस नाम के एक आचार्य का उद्धरण आरम्भ सिद्धि नामक ग्रन्थ की टीका में श्री हेमहंसगणि ने निम्न प्रकार उपस्थित किया है—

दुर्गसिंह—"मुण्डयितारः श्राविष्ठायिनो भवन्ति वधूमूढास्" इति ।

उपर्युक्त दोनों दुर्गदेवों पर विचार करने से मालूम होता है कि वे दोनों ज्योतिष विषय के ज्ञाता थे, परन्तु रिष्टसमुच्चय के कर्त्ता ये नहीं हैं । क्योंकि रिष्ट समुच्चय की रचनाशैली बिल्कुल भिन्न है गुरुपरंपरा भी इस बात को व्यक्त करती है कि आचार्य दुर्गदेव दिगम्बर परम्परा के हैं । जैन साहित्य संशोधक में प्रकाशित बृहट्टिप्पनिका नामक प्राचीन जैन ग्रन्थसूची में मरण करण्डिका और मन्त्रमहोदधि के कर्त्ता दुर्गदेव को दिगम्बर आम्नाय का आचार्य माना है । रिष्टसमुच्चय की प्रशस्ति से मालूम होता है कि इनके गुरु का नाम संयमदेव था । संयमदेव भी संयमसेन के शिष्य थे तथा संयमसेन के गुरु नाम माधवचन्द्र था ।

'दि० जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' नामक पुस्तक में माधवचन्द्र नामके दो व्यक्ति आये हैं । एक तो प्रसिद्ध त्रिलोकसार, क्षपणकसार, लब्धिसार आदि ग्रन्थों के टीकाकार और दूसरे पद्मावतीपुरवार जाति के विद्वान् हैं । मेरा अपना विचार है कि संयमसेन प्रसिद्ध माधवचन्द्र त्रैवेद्य के शिष्य होंगे । क्योंकि इस

परम्परा के सभी आचार्य गणित, ज्योतिष आदि लोकोपयोगी विषयों के ज्ञाता हुए हैं। अतएव दुर्गदेव भी इन्हीं माधवचन्द्र की शिष्य परम्परा में हुए होंगे।

दुर्गदेव ने इस ग्रन्थ की रचना लक्ष्मीनिवास राजा के राज्य में कुम्भनगर नामक पहाड़ी नगर के शांतिनाथ चैत्यालय में की है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि यह कुम्भनगर भरतपुर के निकट कुम्हर, कुम्मेर अथवा कुम्मेरी के नाम से प्रसिद्ध स्थान ही है। महामहोपाध्याय स्व० डा० गौरीशंकर हीराचन्द भी इस बात को मानते हैं कि लक्ष्मीनिवास कोई साधारण सरदार रहा होगा तथा कुम्भनगर भरतपुर के निकट वाला कुम्मेरी, कुम्मेर या कुम्हर ही है। क्योंकि इस ग्रन्थ की रचना शौरसैनी प्राकृत में हुई है, अतः यह स्थान भी शौरसेन देश के निकट ही होना चाहिए। कुछ लोग कुम्भनगर कुम्भलगढ़ को मानते हैं, पर उनका यह मानना ठीक नहीं जंचता है, क्योंकि यह गढ़ तो दुर्गदेव के जीवन के बहुत पीछे बना है।

कुम्भ राणा द्वारा विनिर्मित मसिन्दा किले का कुम्भ विहार भी यह नहीं हो सकता है, क्योंकि इतिहास द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती है। अतएव रिष्टसमुच्चय का रचना स्थान शौरसेन देश के भीतर भरतपुर के निकट आज का कुम्हर या कुम्मेर है। दुर्गदेव के समय में यह नगर किसी पहाड़ी के निकट बसा हुआ होगा, जहां आचार्य ने शान्तिनाथ जिनालय में इसकी रचना की होगी। यह नगर उस समय रमणीक और भव्य रहा होगा। किसी वंशावली में लक्ष्मी निवास का नाम नहीं मिलता है, अतः हो सकता है कि वह एक छोटा सरदार जाट या जदन राजपूत रहा होगा। यह स्मरण रखने लायक है कि भरतपुर के आधुनिक शासक भी जाट हैं, जो कि अपने को मदनपाल का वंशज कहते हैं। इतिहास मदनलाल को जदन राजपूत बतलाता है, वह टहनपाल के, जो ग्यारहवीं शताब्दी में बयाना के शासक थे, तृतीय पुत्र थे। अतः इससे भी कुम्भनगर भरतपुर के निकट वाला कुम्हर ही सिद्ध होता है।

रिष्टसमुच्चय का रचनाकाल—६० वीं+ गाथा में बताया

+संवच्छर इगसहसे बोलीणे णवयसीइ संजुत्ते।
सावणसुक्कयारसि दियहम्मि (य) मूलरिक्खंमि ॥

गया है कि संवत् १०८६ श्रावण शुक्ला एकादशी, मूलनक्षत्र में इस ग्रन्थ की रचना की गई है। यहां पर संवत् शब्द सामान्य आया है, इसे विक्रम संवत् लिया जाय या शक संवत् यह एक विचारणीय प्रश्न है। ज्योतिष के हिसाब से गणना करने पर शक सं. १०८६ में श्रावण शुक्ला एकादशी को मूल नक्षत्र पड़ता है तथा विक्रम सं. १०८६ में श्रावण शुक्ला एकादशी को प्रातःकाल सूर्योदय में ३ घटी अर्थात् एक घन्टा बारह मिनट तक ज्येष्ठा नक्षत्र पड़ता है, पश्चात मूल नक्षत्र आता है। निष्कर्ष यह है कि शक संवत मानने पर श्रावण शुक्ला एकादशी को मूल नक्षत्र दिन भर रहता है और विक्रम संवत मानने पर सूर्योदय के एक घन्टा बारह मिनट बाद मूल नक्षत्र आता है, अतएव कौनसा संवत लेना चाहिए। शायद कुछ लोग कहेंगे कि शक संवत लेने से दिन भर मूल नक्षत्र रहता है, ग्रन्थ कर्त्ता ने किसी भी समय इस ग्रंथ का निर्माण इस नक्षत्र में किया होगा, अतएव शक संवत ही लेना चाहिये। परन्तु शक संवत मानने में तीन दोष आते हैं—पहला दोष तो यह है कि शक संवत में अमान्त मास गणना ली जाती है, अतः शक संवत इसे नहीं माना जा सकता। दूसरा दोष यह आता है कि उत्तर भारत में विक्रम संवत का प्रचार था तथा दक्षिण भारत में शक संवत का, यदि शक संवत लेते हैं तो ग्रन्थकार दक्षिण के निवासी आते हैं। पर बात ऐसी नहीं है। तीसरी बात यह है जहाँ-जहां शक संवत का उल्लेख मिलता है, वहां-वहां शक शब्द प्रयोग अवश्य मिलता है। सामान्य संवत शब्द विक्रम संवत के लिए ही चाहिए। यह २१ जुलाई शुक्रवार ईस्वी सन १०३२ में पड़ता है अतएव रिष्टसमुच्चय की रचना विक्रम संवत १०८६ श्रावण शुक्ला एकादशी शुक्रवार को सूर्योदय के १ घन्टा १२ मिनट के बाद किसी भी समय में पूर्ण हुई है। विक्रम संवत का प्रयोग कुम्भनगर को भरतपुर के निकट सिद्ध करने में सबल प्रमाण है।

दुर्गदेव की अन्य रचनाएँ—यों तो इनके रिष्टसमुच्चय के अलावा अर्घकांड, मन्त्रमहोदधि और मरणकण्डिका ये तीन ग्रन्थ बताये जाते हैं, परंतु मरणकण्डिका और रिष्टसमुच्चय में थोड़ासा ही फर्क है। इसमें रिष्टसमुच्चय के ३-१५ गाथाएं नहीं हैं। मरणकण्डिका में कुल १४६ गाथाएं हैं जो रिष्टसमुच्चय की

१६२ गाथाओं से मिलती हैं। रिष्टसमुच्चय में १६३ से आगे और बढ़ाकर २६१ गाथाएं करदी गई हैं। इस मरणकण्डिका की भाषा भी शौरसेनी प्राकृत है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मरणकण्डिका का निर्माण किसी अन्य ने किया है, दुर्गदेव ने इस ग्रंथ का विस्तार कर रिष्टसमुच्चय की रचना की है। पर मेरा मत इसके बिलकुल विपरीत है, कोई ग्रन्थकार भाव को तो ग्रहण कर सकता है पर अन्य शब्दों को यथावत् नहीं ग्रहण कर सकता अतएव दुर्गदेव ने पहले मरणकण्डिका की रचना की होगी, किन्तु बाद को उसे संक्षिप्त जानकर उसी में वृद्धि कर एक नवीन ग्रन्थ रच दिया होगा। तथा संक्षिप्त पहले ग्रंथ को जैसा का तैसा उसी नाम से छोड़ दिया होगा।

अर्घकाण्ड+ — इसमें १४६ गाथाएं हैं और दस अध्याय हैं। इसकी रचना शौरसेनी प्राकृत में है। यह तेजी-मंदी ज्ञात करने का अपूर्व ग्रन्थ है। ग्रह और नक्षत्रों की विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार खाद्य पदार्थ, सोना, चांदी, लोहा, ताम्बा, हीरा, मोती, पशु एवं अन्य धन-धान्यादि पदार्थों की घटती बढ़ती कीमतों का प्रतिपादन किया गया है। सुकाल, दुष्काल का कथन भी संक्षेप में किया है। ज्योतिष चक्र के गमनागमनानुसार वृष्टि, अतिवृष्टि और वृष्टि अभाव का निरूपण भी किया गया है। साठ सम्वत्सरों के फलाफल तथा किस संवत्सर में किस प्रकार की वर्षा और धान्य की उत्पत्ति होती है, इसका संक्षेप में सुन्दर वर्णन किया गया है। ग्रंथ छोटा होते हुए भी बड़े काम का है, इसमें प्रत्येक वस्तु की तेजी-मन्दी ग्रहों की चाल पर से निकाली है। संहिता संबंधी कतिपय बातें भी इसमें संकलित हैं, ग्रहचार प्रकरण में गुरु और शुक्र की गति के हिसाब से देश और समाज की परिस्थिति का ज्ञान किया गया है। शनि और मंगल के निमित्त और चार पर से लोहा एवं तांबे की घटाबढ़ी का जिक्र किया गया है।

+नमिऊण वड्ढमाणं संयमदेवं नरेन्दथुअपायं। वोच्छामि अग्घकंडं भवियाण हियं पयत्तेण ॥ चिरगुरुपरंपराए कमागया एत्थ सयलसमत्थं। नाऊण अग्घ लोए सिरिदुग्गएवेण ॥.

मन्त्रमहोदधि—यह मन्त्र शास्त्र संबन्धी ग्रन्थ है। इसकी भाषा प्राकृत है। रिष्टसमुच्चय में आये हुए मन्त्रों से पता चलता है कि ये आचार्य मन्त्र शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। मन्त्रों में वैदिक धर्म और जैन धर्म इन दोनों की कतिपय बातें आई हैं, जिससे मालूम होता है कि मन्त्र शास्त्र में सम्प्रदाय विभिन्नता नहीं ली जाती थी। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि वैदिक धर्म के प्रभाव के कारण ही जैन धर्म में इनका समावेश किया गया होगा। क्योंकि दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में जैन धर्म को नास्तिक कहकर विधर्मी श्रद्धालुओं की श्रद्धा को दूर कर रहे थे। अतः भट्टारकों ने वैदिक धर्म की देखा देखी मन्त्र-तन्त्रवाद को जैन धर्म में स्थान दिया।

ग्रन्थकर्त्ता के जीवन की छाप ग्रन्थ में रहती है, इस नियम के अनुसार रिष्टसमुच्चय से दुर्गदेव के जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ अवगत किया जा सकता है। ग्रन्थ में प्रतिपादित विषयों के देखने से मालूम होता है कि इनका अध्ययन बहुत गहरा था, तर्कणा शक्ति भी अच्छी थी। इनके गुरु संयमदेव भी तर्क शास्त्र और धर्म शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। कोष संकलन का प्रशंसनीय ज्ञान इन्हें था। यह केवल उत्कृष्ट विद्वान ही नहीं थे बल्कि अच्छे राजनीतिज्ञ भी थे। वाद विवाद कला में पूर्ण थे। ऐसे गुणवान् गुरु के शिष्य होने के कारण दुर्गदेव में भी उक्त सभी गुण थे। इनकी मेधा बड़ी विलक्षण थी, किंवदंती है कि इन्होंने रिष्टसमुच्चय की रचना तीन दिन में की थी। वाद-विवाद कला का परिज्ञान भी अपने गुरु से इन्होंने प्राप्त किया था।

इनके जीवन पर दृष्टिपात करने से मालूम होता है कि यह दिगंबर मुनि नहीं थे और न यह गृहस्थ ही थे अतः या तो यह भट्टारक रहे होंगे अथवा वर्णी या ऐलक या क्षुल्लक रहे होंगे। बहुत संभव है कि यह भट्टारक होंगे, क्योंकि ज्योतिष, मन्त्र, जादू टोना आदि लोकोपयोगी विषयों के यह मर्मज्ञ विद्वान थे। इन्हें अपने शास्त्र ज्ञान के ऊपर गर्व था, इसीलिये लिखा है कि जब तक सूर्य, चन्द्र, सुमेरु पर्वत इस पृथ्वीतल पर रहेंगे तब तक यह शास्त्र इस भूमि पर रहेगा। इन्होंने ने अपना यह कथन अत्यन्त विश्वास

के साथ रखा है, जिससे इनके ज्ञान की गहराई का कुछ आभास मिल जाता है। 'देशजयी' विशेषण भी इस बात का द्योतक प्रतीत होता है कि दुर्गदेव अपने समय के विद्वान भट्टारक थे। उन्होंने अपने लिए 'निःशेषबुद्धागम', 'वागीश्वरापत्रक', 'ज्ञानाम्बुधौतामति' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे इनके अगाध पाण्डित्य की एक साधारणसी झलक मिलजाती है। अतएव संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि दुर्गदेव देशसंयमी ज्योतिष, मंत्र, तर्क, नीति आदि विभिन्न शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। यह दिगम्बर जैन आम्नाय के मानने वाले थे।

संसार में ऐसा कोई भी क्षण व्यतीत नहीं होता है, जिसमें कोई घटना घटती न हो, इन सभी छोटी या बड़ी घटनाओं का कुछ अपना अर्थ और महत्व होता है। मानव का मस्तिष्क भी कुछ ऐसा बना है कि वह हर समय घटित होने वाली घटनाओं के प्रभाव को जानना चाहता है। कारण सभी घटनाएं भलाई या बुराई की द्योतक होती हैं। अतएव मानव मन उन घटनाओं के रहस्यों को ज्ञात कर अनिष्टदायक फलों से बचने का प्रयत्न करता है। विशेषज्ञ इसीलिये इन घटनाओं के संबन्ध में नियम निर्धारित करते हैं जिससे मनुष्य अपनी भलाई कर सके और बुराई से अपने को बचा सके। जैनाचार्यों ने भी ज्योतिष के विभिन्न अंगों में रिष्ट ज्ञान को स्थान दिया है। रिष्ट की परिभाषा साधारणतया यही है कि ऐसे प्राकृतिक, शारीरिक चिन्ह जिनसे मृत्यु के समय की सूचना मिलती हो रिष्ट कहलाते हैं। जैन मान्यता में रिष्टों को इस लिये महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है कि रिष्टों द्वारा आयु का निश्चय कर काय और कषाय को कृश करते हुए सल्लेखना धारण कर आत्म-कल्याण करना परम कल्याणकारी माना गया है। अतएव धर्म शास्त्र के समान निमित्त शास्त्र का प्रचार भी जैन मान्यता में बहुत प्राचीन काल से था। जैन ज्योतिष के बीज आगम ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं तथा आगमों में भी शुभाशुभ शकुन बतलाए गये हैं जिनसे प्राणियों की इष्टानिष्ट घटनाओं का पता लगता है। भद्रबाहु विरचित ओघनिर्युक्ति में घोंघा की आवाज तथा अन्य विशेष प्रकार की ध्वनियों से शुभाशुभ का निर्णय किया है। शृंखलाबद्ध जैन ज्योतिष में निमित्तज्ञानपर कई सुन्दर रचनाएं

भी हैं। आयज्ञानतिलक, आयसद्भाव, चन्द्रोन्मीलन प्रश्न आदि प्राचीन ग्रंथों में भी निमित्त और प्रश्न शास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें बतलाई गई हैं। लोकविजय यन्त्र में यन्त्र द्वारा ही समस्त देशों और गांवों के शुभाशुभ फल का निरूपण किया है। कर्पूरचक्र में भी अनेक फलाफल निमित्तों के द्वारा कहे गये हैं। स्वप्न का प्रकरण प्राचीन जैन परंपरा में मिलता है, प्रत्येक भगवान की माता को सोलह स्वप्न आते हैं तथा उनका फल उत्तम पुत्र की प्राप्ति बताया गया है। इसी प्रकार महाराज चन्द्रगुप्त को भी सोलह भयंकर स्वप्न दिखलाई पडे जिनका फल दुर्भिक्ष एवं प्रजा के लिए कष्ट था। जैन पौराणिक मान्यता के सिवा ज्योतिष और सिद्धांत के ग्रन्थों में भी निमित्त संबंधी अनेक बातें आई हैं। शकुन विषय पर जैनाचार्यों ने स्वतंत्र भी कई रचनाएं की हैं। शकुनसारोद्धार शकुन के संबंध में एक मौलिक रचना है। दिगम्बर भट्टारकों ने भी इस विषय पर कई ग्रन्थ लिखे हैं, जैन मान्यता में जितने ज्योतिर्विद् हुए उन्होंने सामुद्रिक प्रश्न और शकुन विषय पर अनेक मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं। इस मान्यता ने प्रारंभ से ही गणित ज्योतिष पर जोर न देकर फलित ज्योतिष की आवश्यक और उपयोगी बातों का निरूपण किया है।

अरिष्ट या रिष्ट दो प्रकार के होते हैं-व्यक्तिगत और साधारण। व्यक्तिगत रिष्टों से अच्छे और बुरे शकुन भाग्य तथा दुर्भाग्य आदि की बातें जानी हैं किन्तु सर्वसाधारण रिष्टों से किसी राष्ट्र की भावी विपत्तियां, क्रांति, परिवर्तन, दुर्भिक्ष, संक्रामकरोग, युद्धप्रभृति भविष्य की बातें ज्ञात की जाती हैं। संसार में जब कुछ उलट फेर होता है तो कुछ विचित्र घटनाएँ घटती हैं तथा उनके चिन्ह पहले ही प्रकट हो जाते हैं। भूकम्प के पहले चिड़ियों कि भयानक आवाज तथा पशुओं की चिल्लाहट होती है। चन्द्र और सूर्य ग्रहण की विशेष विशेष परिस्थिति अपने विशेष २ फलों को प्रकट करती हैं। आकाश में जब कोई अद्भुत चिन्ह या दृश्य दिखलाई पड़ते हैं, उस समय भी आने वाली राष्ट्रीय विपत्ति की सूचना मिलती है। हमारे प्राचीन साहित्य में ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख है, जिनसे विशेषज्ञों ने राष्ट्रीय विपत्ति का निर्णय किया था। सूर्य ग्रहण कम पड़ते हैं

तथा अधिकांश सूर्य ग्रहण खण्ड ग्रहण ही होते हैं, सर्वग्रास ग्रहण कम ही होते हैं, सर्वग्रास सूर्य ग्रहण भूखण्ड के जिस प्रदेश में होता है, वहां के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी फल होता है अर्थात् यह इस बात की सूचना देता है कि किसी बड़े नेता या महापुरुष की मृत्यु होगी। एक महीने में दो ग्रहणों का होना भी राष्ट्र के लिये विपत्ति का सूचक है। महाभारत के समय में सूर्य और चन्द्रग्रहण दोनों एक ही महीने में पड़े थे। सन् १६४१ में पुच्छलतारा का उदय हुआ था, जो रूस-जर्मन के संघर्ष का द्योतक तथा विश्व की अशांति का सूचक था। प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से पता लगता है कि महाभारत के समय में भी पुच्छलतारे का उदय हुआ था। जिस प्रदेश में इस तारे का दर्शन होता है, उसके लिए अशांति और संघर्ष की सूचना मिलती है।

व्यक्तिगत रिष्ट व्यक्ति के लिये आने वाले सुख, दुख, हानि, लाभ, जय, पराजय के सूचक होते हैं। जब किसी व्यक्ति की अंगुलियां एकाएक फट जाती हैं, उसकी आंखों से लगातार पानी गिरता है, अनिष्ट वस्तुओं के दर्शन स्वप्न में होते हैं तो उसके लिये विपत्ति की सूचना समझनी चाहिए। अकस्मात् प्रसन्नता के लक्षणों का प्रकट होना हाथ और पैरों का चिकना और सुडौल होना, तथा स्वप्न में फल, पुष्प, इत्र प्रभृति सुगन्धित पदार्थों के दर्शन होना व्यक्ति के लिये शुभ सूचक माना गया है रिष्टों का विचार केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं किया है, प्रत्युत समस्त देशवासी इनका व्यवहार करते हैं। ग्रीस वाले आज से सहस्त्रों वर्ष पहले शकुन और अपशकुन का विचार करते थे। देश में किसी भी प्रकार की अद्भुत बात के प्रकट होने पर राष्ट्र के लिये उसे शुभ या अशुभ समझा जाता था। ग्रीक इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिनमें बताया गया है कि भूकम्प और ग्रहण पेलोपोनेसियन लड़ाई के पहले हुए थे। इसके सिवा एक्सरसेस ग्रीस से होकर अपनी सेना ले जा रहा था, तब उसे हार का अनागत कथन पहले ही ज्ञात हो गया था। ग्रीक लोग विचित्र बातों को यथा घोड़ी से खरगोश का जन्म होना, स्त्री के सांप का जन्म होना, मुरझाये फूलों का सम्मुख आना प्रभृति बातें युद्ध में

पराजय की सूचक मानते थे। इनके साहित्य में शकुन और अपशकुन के संबंध में कई सुन्दर रचनाएँ हैं। फलित ज्योतिष के के सम्बन्ध में भी ग्रीकों ने राशि और ग्रहों के सम्बन्ध में आज से दो सहस्र वर्ष पहले ही अच्छा विचार किया था। भारतीय फलित ज्योतिष में ग्रीक ज्योतिष से बराबर आदान प्रदान हुआ है। ग्रह योग, ग्रहों का क्षेत्र अन्य सम्बन्ध आदि बातें ग्रीकों की महत्व पूर्ण हैं। जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति पर से गर्भावस्था का विचार भी सांगोपाङ्ग ग्रीकों ने किया है।

रोमन—ग्रीकों का प्रभाव रोमन सभ्यता पर पूरा पड़ा है। इन्होंने भी अपने शकुन शास्त्र में ग्रीकों की तरह प्रकृति परिवर्तन, विशिष्ट-विशिष्ट ताराओं का उदय, ताराओं का टूटना चन्द्रमा का परिवर्तित अस्वाभाविक रूप दिखलाई पड़ना, तारों का लाल वर्ण के होकर सूर्य के चारों ओर एकत्रित हो जाना, आग की बड़ी-बड़ी चिनगारियों का आकाश में फैल जाना, इत्यादि विचित्र बातों को देश के लिये हानिकारक बतलाया है। रोम के ज्योतिषियों ने जितना ग्रीस से सीखा, उससे कहीं अधिक भारतवर्ष से। यद्यपि वराह मिहर की पञ्चसिद्धान्तिका में रोम और पौलस्त्य नाम के सिद्धान्त आये हैं, जिनसे पता चलता है कि भारतवर्ष में भी रोम सिद्धान्त का प्रचार था। तथापि रोम के कई छात्र भारतवर्ष में आये थे और वर्षों यहां के आचार्यों के पास रहकर ज्योतिष, आयुर्वेद आदि लोकोपयोगी शास्त्रों का अध्ययन करते रहे थे। रोम ज्योतिष में एक विशेषता यह है कि वहां के फलित ज्योतिष में गणित क्रिया के अभाव में केवल प्रकृति परिवर्तन या आकाश की स्थिति के अवलोकन से ही फल का निरूपण किया जाता है। शकुन और अपशकुन का विषय भी इसीमें शामिल है। रोम के इतिहास में भी ऐसी अनेक घटनाओं का निरूपण है कि वहां शकुन और अपशकुन का फल राष्ट्र को भोगना पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रिष्टसमुच्चय में प्रति दिन रिष्ट का विषय मानव समाज के लिये नितान्त उपयोगी है। यदि रिष्ट का ज्ञान यथार्थ रूप में हो तो प्रत्येक राष्ट्र खतरे से अपनी रक्षा कर सकता है। यदि व्यक्ति पहले से अपनी मृत्यु या विपत्ति को

जान जाय तो वह नाना प्रकार के खतरों से अपनी रक्षा कर सकता है अथवा आत्मसाधना कर अपना कल्याण कर सकता है।

आचार्य दुर्गदेव ने भव्यजीवों के कल्याण के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना की है। जो मुमुक्षु हैं, वे मृत्यु से डरते नहीं हैं, बल्कि वीरता पूर्वक उसका आलिंगन करते हैं। जैन शास्त्रों में समाधिमरण की जो बड़ी भारी महिमा बताई गई है, उसकी सिद्धि में रिष्ट समुच्चय से बड़ी भारी सहायता मिल सकती है। अतएव जो पाठक ज्योतिष से प्रेम नहीं रखते हैं, उन्हें भी इससे लाभ उठाना चाहिए। जिन शकुन और चिन्हों का वर्णन इसमें किया है, वे सब यथार्थ घटते हैं। क्योंकि ज्योतिष शास्त्र केवल श्रद्धा की चीज नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष परीक्षा की वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति इसके शकुनों की परीक्षा कर सकता है।

आभार प्रदर्शन —

"रिष्ट समुच्चय" को हिन्दी अनुवाद और विवेचन सहित प्रकाश में लाने का सारा श्रेय श्री जवरचन्द फूलचन्द जैन ग्रन्थ माला इन्दौर के मन्त्री मित्रवर संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न को है। गतवर्ष जब सागर में दि० जैन विद्वत्परिषद् का शिक्षणशिविर खुला था, उस समय मैंने आपसे इस ग्रन्थ के प्रकाशन के बारे में जिक्र किया था। इन्दौर जाकर इस ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति आपने भेज दी तथा प्रूफ संशोधनादि समस्त कार्य करने का भार आपने ही संभाला है। उसके फलस्वरूप यह रचना पाठकों के समक्ष है।

इसके अनुवाद की प्रेरणा वीर सेवा मन्दिर सरसावा के सुयोग्य अन्वेषक विद्वान श्री. पं. दरबारीलालजी न्यायाचार्य तथा श्री पं. परमानन्दजी शास्त्री द्वारा मुझे मिली। आप महानुभावों के समय समय पर पत्र भी मिलते रहे कि इसे जल्द पूरा कर प्रकाशित कराइये अतएव उपर्युक्त दोनों विद्वानों का भी उपकृत हूं। इनके श्री. प्रिय चन्द्रसेन बी. ए. श्री चन्द्रमुखीदेवी न्यायतीर्थ और श्रीमती सौ. सुशीलादेवी को भी नहीं भुलाया जा सकता है, जिन्होंने परिशिष्ट तैयार करने में पूरी सहायता दी है। विवेचन तैयार करने में सहायता

प्रदान करने वाले मित्रवर श्री पं. जगन्नाथजी तिवारी और श्रद्धेय प्रो० गो० खुशाल जैन, एम. ए., साहित्याचार्य काशी विद्यापीठ का विशेष कृतज्ञ हूं। आप दोनों महानुभावों से सदा मुझे परामर्श मिलता रहा है।

इस ग्रन्थ का अनुवाद सिन्धी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'रिष्टसमुच्चय' की प्रति से किया है। भूमिका लिखने में अ. स. गोपाणी एम. ए.पी. एच. डी. के. इन्ट्रोडक्सन से पर्याप्त सहायता मिली है, अतः आपका भी आभारी हूं।

जैन सिद्धान्त भवन आरा
१०-५-४८

नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य
साहित्यरत्न

विषयानुक्रमणिका

संकेत-पूर्ति-सची

संकेत	पूर्ति
१ सा. ३-१८.	सागार धर्मामृत अध्याय ३; श्लो. १८
२ क. २-५०	कल्याण कारक अध्याय २ श्लोक ५०
३ भा. चि.	भावप्रकाश चिकित्सा प्रकरण
४ भा. न. प्र.	भावप्रकाश.........प्रकरण
५ यो. सू.	योगसूत्र
६ आ. सि.	आरंभ सिद्धि
७ अ. सा.	अद्‌भुत सागर
८ ज. पा.	जातक पारिजात
९ जा. त.	जातकतत्व
१० श हो,	शम्भु होरा प्रकाश
११ त्रिलोक प्र.	त्रिलोक प्रकाश
१२ सं. रं.	संवेगरंगशाला
१३ चरक. रि.	चरक रिष्टाध्याय
१४ यो. र.	योगरत्नाकर
१५ अ. त.	अद्‌भुत तरंगिणी
१६ अद्‌भु. सा.	अद्‌भुत सागर
१७ ना. सं.	नारदसंहिता
१८ बृ. पा.	बृहद पाराशरी
१९ च. इ. स्था.	चरक इन्द्रिय स्थान
२० च. पृ.	चरक पृष्ठ
२१ अ. आ.	अत्रेय आरण्यक
२२ यो शा.	योग शास्त्र
२३ धर्म. सि.	धर्म सिन्धु
२४ शि. पा.	शिवपार्वती पुराण
२५ अ. चू. सा.	अर्हच्चूड़ामणिसार
२६ न. च.	नरपतिजय चर्या
२७ अ. ति. प्र.	आयज्ञान तिलक प्राकृत
२८ अ. स.	आयसद्भाव प्रकरण

२६	न. ज.	नरपतिजय चर्या (?)
३०	के. त. सं.	केरलप्रश्न तत्व संग्रह
३१	ज्यो. सा.	ज्योतिष सार
३२	दि. शु.	दिनशुद्धिदीपिका
३३	ध. टी. जि.	धवला टीका जिल्द
३४	प्र. भू.	प्रश्नभूषण
३५	व. श.	वसन्तराज शकुन
३६	व. र.	वसन्तरत्नाकर

गाथानुक्रमणिका

रिष्टसमुच्चय

पणमंतसुरासुरमउलिरयणवरकिरणकंतिविच्छुरिअं ।
वीरजिणपायजुअलं नमिऊण भणामि रिट्ठाइं ॥१॥

प्रणमत्सुरासुरमौलिरत्नवरकिरणकांतिविच्छुरितम् ।
वीरजिनपादयुगलं नत्वा भणामि रिष्टानि ॥१॥

अर्थ—नमस्कार करते हुए देव-दानवों के मुकुट स्थित अमूल्य रत्नों की किरण ज्योति से दीप्तिमान श्री वीरप्रभु के चरणयुगल को प्रणाम कर मैं (आचार्य दुर्गदेव) मरण कालिक अरिष्टों का वर्णन करता हूं।

विवेचन—आचार्य ग्रंथारम्भ करते समय अपने इष्ट देव को नमस्कार रूप मंगलाचरण करते हैं। प्राचीन भारतीय आस्तिक परम्परा में किसी कार्य्य को प्रारम्भ करने के पूर्व मंगलाचरण करना शिष्टता का द्योतक माना जाता था। न्याय शास्त्र में मंगलाचरण के निर्विघ्न-शास्त्र-परिसमाप्ति, शिष्टाचार-परिपालन, नास्तिकता परिहार, कृतज्ञता प्रकाशन और शिष्य-शिक्षा ये पांच हेतु बताये गये हैं। जैन परम्परा में प्रधानरूप से आत्मशुद्धि के लिए स्तवन किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थकर्त्ता निर्विघ्न शास्त्र-समाप्ति एवं आत्मशुद्धि के निमित्त श्री भगवान महावीर स्वामी के चरण कमलों को नमस्कार कर अरिष्टों का कथन करते हैं।

यदि मनुष्य अपनी मृत्यु के पूर्व अरिष्टों द्वारा अपने मरण को ज्ञात करले तो वह आत्मकल्याण में विशेषरूप से प्रवृत्त हो सकता है। क्योंकि जो माया-मोह उसे चिरकाल जीने की इच्छा से लिप्त रखते थे, वे सहज में ही तोड़ जा सकते हैं। संसार और जीवन की वास्तविक स्थिति का पता लग जाने पर वह सुकुमाल मुनि के समान आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो सकता है। इसलिये यह ग्रन्थ लोकोपकारक होने के साथ साथ आत्मोपकारक भी है। गृहस्थावस्था में आरम्भ परिग्रह लिप्त मानव के धर्म साधन का एक मात्र ध्येय अन्तिम समय में कषाय और काय का अच्छी तरह दमन कर सल्लेखना व्रत ग्रहण करना है। यदि मनुष्य अपनी आयु को निमित्तों द्वारा अवगत करले तो फिर सल्लेखना (समाधिमरण) करने में वह पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। जैन ज्योतिष शास्त्र में इसलिये ग्रहवेध परिपाटी पर विशेष ध्यान न देकर व्यञ्जन, अंग, स्वर, भौम, छिन्न, अन्तरिक्ष, लक्षण और स्वप्न इन आठ प्रकार के निमित्तों पर विशेष जोर दिया गया है। इन निमित्तों से भविष्य में होने वाले दुःख सुख, जीवन-मरण आदि अनेक मानव-जीवन के रहस्यों का उद्घाटन हो जाता है। वर्तमान के मनोवैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बाह्य संकेतों को पढ़कर मनुष्य की अन्तर्निहित भावनाएँ, जिनका जीवन की बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्ध रहता है, अभिव्यक्त हो जाती हैं। ये भावनाएं ही सुख-दुःख एवं जीवन मरण रूप रहती हैं। अतएव यह निश्चित है कि निमित्तों द्वारा भावी इष्टानिष्ट प्रकट हो जाने से व्यक्ति के जीवन में जागरूकता आती है, वह संसार की स्थिति का साक्षात्कार कर लेता है। इसलिये जैनाचार्य प्रस्तुत प्रकरण में अरिष्टों का विवेचन करेंगे।

मनुष्य शरीर की दुर्लभता का कथन

संसारंमि भमंतो जीवो बहुभेयभिण्णजोणीसु।
दुक्खेण नवरि पावइ सुहमणुअत्तं न संदेहो ॥२॥

संसारे भ्रमज्जीवो बहुभेदभिन्न योनिषु।
दुःखेन ननु प्राप्नोति शुभमनुजत्वं न सन्देहः ॥२॥

अर्थ--इसमें सन्देह नहीं कि यह आत्मा संसार में अनेक कष्टों को सहन करते हुए नाना योनियों में भ्रमण कर इस श्रेष्ठ मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है अर्थात् चारों गतियों में से केवल मनुष्य गति ही एक ऐसी है जिसमें यह जीव अनादि कालीन कर्म बन्धनों को नष्ट कर अनन्त सुख रूप निर्वाण को प्राप्त करता है।

अनित्य संसार में धर्म की नित्यता का कथन

पत्तंमि अ मणुअत्ते पिम्मं लच्छी वि जीविअं अथिरं।
धम्मो जिणिंददिट्ठो होइ थिरो निव्विअप्पेण ॥३॥

प्राप्ते च मनुजत्वे प्रेम लक्ष्मीरपि जीवितमस्थिरम्।
धर्मो जिनेन्द्रदिष्टो भवति स्थिरो निर्विकल्पेन ॥३॥

अर्थ—(शुभ कर्मोदय से) मनुष्य गति की प्राप्ति होने पर भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रेम, लक्ष्मी एवं जीवन, चञ्चल अर्थात् नाशवान है। संसार में केवल जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित वीतरागमयी धर्म ही निश्चय से स्थिर अर्थात् नित्य है।

विवेचन—उपर्युक्त दूसरी और तीसरी गाथा में ग्रन्थकार ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य गति सौभाग्य से प्राप्त होती है। इसे पाकर सांसारिक कामिनी और कञ्चन जैसी मोहक वस्तुओं में नहीं लगाना चाहिये, प्रत्युत आत्मकल्याण कारी धर्म को नित्य समझ कर इसी का सेवन करना चाहिये।

इन दोनों गाथाओं का वास्तविक तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित अरिष्टों से भावी शुभाशुभों का ज्ञानकर जीवन और लक्ष्मी की चंचलता से पूर्णतया परिचित होकर धर्म साधन की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। जैनाचार्यों ने ज्योतिष शास्त्र का निर्माण इसी हेतु से किया है कि इस शास्त्र द्वारा अपने भविष्य से अवगत प्राणी पुरुषार्थ करके अपना कल्याण करे। जैन मान्यता की दृष्टि से यह शास्त्र भावी शुभाशुभ फलों का द्योतक है, परंतु वे शुभाशुभ फल अवश्य ही घटित होंगे, ऐसा इस शास्त्र का दावा नहीं है। प्रत्येक आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह अपने अद्भुत कार्यों द्वारा असमय में ही कर्मों की निर्जरा कर उसके सहज स्वभाव द्वारा मिलने

वाले फल का त्याग कर सकता है। इसलिये ज्योतिष शास्त्र भविष्य फल प्रतिपादक होने के साथ साथ कर्त्तव्य की ओर सावधान करने वाला भी है। उपर्युक्त गाथाओं में जीवन एवं धन की अस्थिरता का कथन करते हुए कर्तव्य की ओर संकेत किया गया है।

व्यसनों की अनिवार्यता का निश्चय

पत्ते जिणिंदधम्मे मणुओ इह होइ वसणअभिभूओ।
बहुविहपमायमत्तो कसाइओ चउकसाएहिं ॥ ४ ॥

प्राप्ते जिनेन्द्रधर्मे मनुज इह भवति व्यसनाभिभूतः।
बहुविध प्रमादमत्तः कषायितश्चतुः कषायैः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म के प्राप्त होने पर भी मनुष्य नाना प्रकार के प्रमाद और चार प्रकार की-अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन क्रोध, मान, माया एवं लाभ रूप कषायों के वशीभूत हो व्यसनों में फंस जाता है।

विवेचन—मनुष्य सहज ही होने वाली आहार, निद्रा और मैथुन की प्रवृत्ति में फँस जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने मानव के चित्तविकारों का सूक्ष्म निरीक्षण कर यह बताया है कि मानव मन की भीतरी तह में युक्त वासनाओं का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। जब इस अस्तित्व पर बाहरी घात, प्रतिघात होते हैं तो बाहरी साधनों के कारण वासनाएं सद् असद् रूप में परिणत हो प्रकट हो जाती हैं। जो सुज्ञ प्राणी हैं वे बाह्य साधनों का अनुकूल रूप से व्यवहार कर कामुक छुपी हुई वासनाओं को सच्चरित्रता के ढांचे में ढालते हुए आत्मग्लानि को महत्वाकांक्षा के रूप में बदल देते हैं। फलतः उनके मन में किसी न किसी आदर्श की कल्पना अवश्य आती है, यह आदर्श उन्हें वर्तमान अवस्था से आगे ले जाता है और वर्तमान अवस्थाओं की अपूर्णताओं और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कराने का साहस प्रदान करता है। विकसित जीवन का एक नमूना उनके सामने उपस्थित होने लगता है, कामुक वासनाएं जो अधः पतन का प्रमुख कारण

थीं वे ही उनके जीवन को उन्नत बनाने साधन हो जाती हैं। यदि मनुष्य अपने जीवन की प्रारम्भिक गलतियों का अन्वेषण करले और परिपक्व होने से पहले ही उनसे बचने का प्रयत्न करे तो वह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के दोषों से बच जाय। कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि आत्मविश्वास और धैर्य के कारण मनुष्य सहजजात प्रवृत्तियों पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। मनुष्य धर्म एवं कर्त्तव्य से सामाजिक भावना के अभाव में च्युत हो जाता है, क्योंकि जीवन की अधिकांश समस्याएँ सामाजिक होती हैं। जिस व्यक्ति में समाज भावना पर्याप्त मात्रा में नहीं होती, वह उसके सामने हार मान लेता है और जीवन की समस्याओं के प्रति ऐसा दृष्टिकोण बना लेता है जो उसे अनुपयोगी जीवन की ओर ले जाता है, जसे उन्माद, जुआखोरी, व्यभिचार और शराबखोरी आदि। आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में इसी मनोविज्ञान को दर्शाया है। प्रमाद शब्द से सहजजात कामुक वासनाओं की ओर संकेत है और कषाय शब्द से सामाजिक भावना को व्यक्त किया है। सारांश यह है कि सामाजिक भाव और आत्म विश्वास के अभाव में व्यक्ति सहजजात प्रवृत्तियों के जाल में फंस जाता है।

व्यसनों के नाम

जूअ-महु-मज्ज-मंसं वेसा-पारद्धि-चोर-परयारं।
एदाइँ ताइँ लोए वसणाइं जिणिंददिट्ठाइं॥ ५॥

द्यूत-मधु-मद्य-मांसानि-वेश्या-पापर्द्धि-चोर-परदाराः।
एतानि तानि लोके व्यसनानि जिनेन्द्रदिष्टानि॥ ५॥

अर्थ—(१) जुआखेलना, (२) मधु-शहद खाना, मद्य-शराब सेवन करना, (३) मांस खाना, (४) वेश्या सेवन करना (५) शिकार खेलना (६) चोरी करना एवं (७) परस्त्री सेवन करना ये सात जिनेन्द्र भगवान ने व्यसन* बतलाये हैं। यहां जैनाचार्य ने मधु

---

* जाग्रत्तीव्रकषायकर्कशमनस्कारार्पितैर्दुष्कृतैः।
चैतन्यं तिरयत्तमस्तरदपि द्यूतादि यच्छ्रेयसः।
पुंसो व्यस्यति तद्विदो व्यसनमित्याख्यान्त्यतस्तद्व्रतः। —सा० ३, १८

और मद्य सेवन को एक व्यसन में परिगणित किया है।

विवेचन—इस संसार में आसक्ति की उपर्युक्त सात वस्तुएं ही हैं। जो व्यक्ति अपने जीवन के दृष्टिकोण को केवल बहिर्मुखी रखता है। वह इन सात व्यसनों में फंसे बिना नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्ति की सामाजिक-भावना भी धीरे धीरे नष्ट हो जाती है, उसका स्वार्थ एक संकुचित दायरे में बद्ध हो जाता है। जैनाचार्यों ने इसीलिए इन बहिः प्रवृत्तियों का नाम व्यसन रखा है कि ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य की केन्द्रापसारी दृष्टि का अवरोध करती हैं।

रोगों की अनिवार्यता

धम्मंमि य अणुरत्तो वसणेहि विवज्जिओ धुवं जीवो।
णाणारोयाकिण्णो हवेइ इह किं वियप्पेण ॥ ६ ॥

धर्मे चानुरक्तो व्यसनैर्विवर्जितो ध्रुवं जीवः।
नानारोगाकीर्णः भवतीह किं विकल्पेन ॥ ६ ॥

अर्थ—इसमें कौनसा रहस्य है कि वस्तुतः धर्म में अनुरक्त और जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, वेश्या गमन करना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना इन सात व्यसनों से रहित होने पर भी जीव नाना प्रकार के रोगों से आक्रान्त रहता है।

रोगों की संख्या

रोयाणं कोडीओ हवंति पंचेव लक्ख अडसट्ठी।
नवनवइ सहस्साइं पंच सया तह य चुलसी अ ॥ ७ ॥

रोगाणां कोट्यो भवंति पंचैव लक्षाष्टषष्टिः।
नवनवति सहस्राणि पञ्चशतास्तथा चतुरशीतिश्च ॥ ७ ॥

अर्थ—पांच करोड़, अड़सठ लाख, निन्यानवे हजार पांच सौ चौरासी प्रकार के रोग होते हैं।

विवेचन—जैनाचार्यों ने प्रधान रूप से दो प्रकार के रोग बतलाये हैं-एक पारमार्थिक और दूसरे व्यावहारिक। ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय

इन आठ कर्म रूप महा व्याधि को पारमार्थिक रोग और अग्नि, धातु आदि के विकृत होने को व्यावहारिक रोग कहा है। ऊपर जो ५,६८,६६,५८४ भेदों का निरूपण किया है, वे व्यावहारिक रोग है। रोगों की उत्पत्ति का अन्तरंग कारण असाता वेदनीय कर्म का उदय और बहिरंग कारण वात, पित्त एवं कफ आदि की विषमता को बतलाया है। इसी तरह रोग के शांत होने में मुख्य कारण असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा, साता वेदनीय का उदय एवं धर्माचरण आदि हैं। बाह्य कारण रोग दूर करने वाली औषधि, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता है। प्रस्तुत गाथा में आचार्य ने संसार की चञ्चलता का निरूपण करने के लिए मनुष्य के व्यावहारिक रोगों की संख्या बतलाई है।

व्यसनों के कारण धर्म–विमुखता का कथन

एवं विहरोगेहिं य अभिभूदो तो न चिन्तए धम्मं।
परलोअसाहणट्ठं इंदिअविसएहिं अभिभूदो ॥ ८ ॥

एवंविधरोगैरभिभूतस्ततो न चिन्तयति धर्मम्।
परलोकसाधनार्थमिन्द्रियविषयैरभिभूतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस प्रकार ५,६८,६६,५८४ रोगों से आक्रान्त और इन्द्रियसुखों से अभिभूत मनुष्य परलोक साधन के लिए धर्म चिन्तवन नहीं करता है।

विवेचन—मानव सहज प्रवृत्तियों में संलग्न रहने के कारण अपने आत्म विकास की ओर दृष्टिपात करने में असमर्थ रहता है। वह सतत काम और अर्थ की सिद्धि को ढूढने के लिए कस्तूरी की सौरभ से मुग्ध हरिण की तरह माया और मोह के जंगल में मानसिक एवं शारीरिक चक्कर लगाया करता है। उसका अज्ञान जन्य क्षेत्र विस्तृत होकर, ज्ञान चेतना के मार्ग को रुद्ध कर देता है। जिससे चेतोव्यापार और इन्द्रिय व्यापार दोनों ही मिथ्यात्व विपर्यय, अनध्यवसाय और अविरति के रूप में परिणत हो जाते हैं। यदि व्यक्ति ज्ञान के द्वारा वासनाएं क्षीण करदे तो उसकी भोग की आवश्यकताएं भी कम हो जायंगी, चेतो व्यापार भी उसके दूसरे प्रकार के होने लगेंगे। उसका ज्ञान इस अवस्था में सम्यक्

रूप में परिणत हो जायगा और जो चित्त संसार का कारण था वही मोक्ष का साधन बन जायगा। किन्तु कर्मों के दृढ़ संस्कार के कारण यह जीव सहज जात इन्द्रियों की कामैषणा, आहारैषणा की ओर झुक जाता है। आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में इसी बात को बतलाया है कि यह जीव इन्द्रिय सुख में संलग्न रहने के कारण आत्म कल्याण-धर्म साधन की ओर प्रवृत्त नहीं होता है।

इन्द्रियां और उन के विषय

चक्खू सोदं घाणं जीहा फासं च इंदिआ पंच।
रूवं सद्दं गंधं रस-फासे ताण विसए य ॥ ९ ॥

चक्षुः श्रोत्रं घ्राणं जिह्वा स्पर्शश्चेन्द्रियाणि पंच।
रूपं शब्दो गन्धो रस-स्पर्शौ तेषां विषयाश्च ॥

अर्थ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इंद्रियां हैं और इनके विषय क्रमशः स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द हैं।

मृत्यु की अनिवार्यता और उसके कारण

अन्नं च जम्मपुव्वं दिट्ठं मरणं असेस जन्तूणं।
विस-विसहर-सत्थ-ग्गी-जल भिगुवायेहि रोएहिं ॥१०॥

अन्यश्च जन्मपूर्वं दृष्टं मरणमशेष जन्तूनाम्।
विष-विषधर-शस्त्र-अग्नि-जल-भृगुपातै रोगैः ॥ १० ॥

अर्थ—मरण के उपरान्त सभी जीवों का पुनर्जन्म होता है और मरण* विष, सर्प, शस्त्र, अग्नि, जल, उच्च स्थान से पतन एवं रोगों के द्वारा होता है।

विवेचन—जीव अपने आयुकाल में सहस्रों अनुभूतियों को संचित करता है। प्रत्येक ज्ञान पर्याय बदलती रहती है, पर उसका प्रभाव रह जाता है, क्योंकि ज्ञान गुण नित्य है, द्रव्यदृष्टि से उसका

---

*मनोवचःकायबलेन्द्रियैस्सह प्रतीतनिश्वासनिजायुषान्वितः।
दशैव ते प्राणगणाः प्रकीर्तितास्ततो वियोगः खलु देहिनो वधः ॥
—क. २. ५०.

कभी विनाश नहीं होता है। अपने कार्यों के कारण जीव परिस्थिति वश नाना प्रकार के कार्यरूप पुद्‌गल परमाणुओं को ग्रहण करता है तथा उतने ही कर्म परमाणुओं की निर्जरा भी करता है। यह कर्म ग्रहण और त्याग का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है। किसी एक शरीर में जीवकर्म भोग को विशेष कारण के बिना पूरा नहीं कर पाता है। इसलिये जीव एक शरीर के बेकाम हो जाने पर नये शरीर में जाता है। इस नवीन शरीर में भी वह पुराने संस्कारों का भण्डार साथ लाता है। आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में इसी हेतु से मरण के अनन्तर पुनर्जन्म की व्यवस्था बतलाई। सम्पूर्ण प्राणियों का मरण भी विष खाने से, सर्प के काटने से, शस्त्र-घात से, अग्नि में जल जाने या झुलस जाने से, जल में डूब जाने, ऊंचे स्थान से गिरने एवं नाना प्रकार के रोगों के कारण होता है।

सन्निपात का लक्षण

वाऊ पित्तं सिंभं ताण जुदी होइ सन्निवाओ आ।
जीवस्स निव्विअप्पं जीहाए खिप्पए तेहिं ॥११॥

वायुः पित्तं श्लेष्मा तेषां युतिर्भवति सन्निपातश्च।
जीवस्यापि निर्विकल्पं जिह्वया क्षिप्यते तैः ॥ ११ ॥

अर्थ—वात, पित्त एवं कफ इन तीनों के सम्मिश्रण को सन्निपात* कहते हैं। इनके द्वारा जीव की जीवन-शक्ति निश्चितरूप से विशृंखलित हो जाती है।

---

* त्रिदोषजनकैर्वातः पित्तं श्लेष्माऽऽमगेहगाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं रसगा ज्वरकारिणः॥
—भ. चि. श्लो. ४२६

यस्ताम्यति स्वपिति शीतलगात्रयष्टिरंतर्विदाहसहितः स्मरणादपेतः।
रक्तेक्षणो हृषितरोमचयस्सशूलस्तं वर्द्धयेद्भिषगिहज्वरलक्षणज्ञः॥
—क. ६. ६१

२० प्रकार के कफ, ४० प्रकार के पित और ८० प्रकार की वायु के बिगड़ जाने से सन्निपात होता है।

सल्लेखना की महानता

दुल्लहम्मि मणुअलोए लद्धे धम्मे अहिंसलक्खट्ठे ।
दु (दो.) विहसंलेहणाए विरला जीवा पवत्तंति ॥१२॥

दुर्लभे मनुजलोके लब्धे धर्मे चाहिंसालक्ष्यार्थे ।
द्विविधसंलेखनायां विरला जीवाः प्रवर्तन्ते ॥ १२ ॥

अर्थ—इस संसार में बहुत कम व्यक्ति सल्लेखना को धारण करते हैं, जो दो प्रकार की है। इसके द्वारा जीव दुष्प्राप्य मनुष्य जीवन तथा अहिंसा धर्म को प्राप्त कर लेते हैं।

सल्लेखना के भेद

अब्भितर-बाहिरिया हवेइ संलेहणा पयत्तेण ।
अब्भितरा कसाए सरीरविसए हु बाहिरिया ॥१३॥

अभ्यन्तर-बाह्या भवति संलेखना प्रयत्नेन ।
अभ्यन्तरा कषाये शरीर विषये खलु बाह्या ॥ १३ ॥

अर्थ—सल्लेखना दो प्रकार की होती है-आन्तरिक और बाह्य। कषायों को कम करना कषाय विषयक और शरीर को कृश करना शरीर विषयक सल्लेखना होती है।

विवेचन—निमित्तों के द्वारा मरण काल अवगत कर काय-कषाय को कृश करते हुए आत्मचिन्तन पूर्वक शांति से शरीर त्याग करना सल्लेखना या समाधिमरण है। सल्लेखना में हिंसा के कारणभूत कषाय भावों का त्याग किया जाता है, अतः इसके द्वारा अहिंसा धर्म की सिद्धि होती है। जैन दर्शन में सल्लेखना की बड़ी भारी महिमा बताई गई है, यह एक प्रकार की योग क्रिया है, जिसके द्वारा मरण समय में आत्मा शुद्ध की जाती है। जिस प्रकार मानव जीवन को सफल एवं उत्तम बनाने के लिये व्रत, नियम एवं संयम की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सल्लेखना द्वारा अन्तिम समय में व्रत एवं संयम को सुरक्षित रखने और परलोक को सुखमय बनाने के लिये समाधिमरण की आवश्यकता होती है। जैन मान्यता में मरण काल के परिणाम और भावनाओं को बड़ा

महत्व दिया गया है, यदि इस समय परिणाम विशुद्ध हुए संसार से ममता दूर हो गई तो वह व्यक्ति अपनी आत्मा का कल्याण कर लेता है। परिणामों के उतार-चढ़ाव के कारण मरण के पांच भेद बताये गये हैं,—(१) पंडित पंडित मरण--मरण समय में आत्म परिणामों का इतना विशुद्ध होना जिससे समस्त कर्म-जन्म-जन्मांतर के संस्कार नष्ट हो जाएँ और फिर जन्म धारण न करना पड़े। यह मरण उन्हीं व्यक्तियों का हो सकता है जिन्होंने अपनी प्रबल तपस्या के द्वारा जीवन काल में ही घातिया कर्मों को नष्ट कर जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लिया है। (२) पंडित मरण-प्रारंभ से संयमित जीवन होते हुए मरण समय में कषायों की इतनी हीनता होना जिससे जल्दी ही संसार छूट सके। यह मरण योगी, मुनि, तपस्वी आदि महापुरुषों को प्राप्त होता है। (३) बाल पंडित मरण—प्रारंभ से जीवन में पूर्ण संयम के न रहने पर भी मरण काल में संयम धारण कर संसार से मोह, ममता त्याग मरण करना। इस मरण से आत्मा इतनी विशुद्ध हो जाती है कि जीव पर लोक में नाना प्रकार के सुख प्राप्त करता है (४) बाल मरण—इसमें प्रारंभ से जीवन में संयम के न रहने पर भी नियमित जीवन व्यतीत करने वाले अंत समय में कषाय और माया ममता को त्याग कर मरण करते हैं। यह बाल मरण करनेवाले के परिणाम अंत समय में जितने शुद्ध रहेंगे, उसकी आत्मा का उतना ही कल्याण होगा। (५) बालबाल मरण-प्रारंभ से अनियमित जीवन रखने वालों का, जो मरते समय रो-रो कलप-कलप कर मरण करते हैं, होता है। यह मरण अत्यन्त बुरा है, इससे संसार परिभ्रमण अधिक बढ़ता है। संयमित व्यतीत करने वाले भी यदि अपने अन्त समय को बिगाड़ दें तो उसका सारा किया कराया चौपट हो जाता है।

सल्लेखना धारण करते समय शुद्ध मन पूर्वक मित्रों से प्रेम, शत्रुओं से वैर, स्त्री-पुत्रादिक से ममता त्याग कर सब तरह के आरम्भ, परिग्रह त्याग करना चाहिए। शरीर से ममत्व घटाने के लिए क्रम से पहले आहार त्याग करके दुग्धपान का अभ्यास करे। पश्चात् दुग्धपान का त्याग कर छाछ का अभ्यास डाले पीछे

छाछ का भी त्याग कर गर्म जल ग्रहण करे। जब देखे कि आयु के दो चार पहर या एकाध दिन शेष रह गया है तब शक्त्यनुसार जल का भी त्याग कर उपवास करे और समस्त वस्त्रादिक परिग्रह का त्याग कर एक कुशासन पर बैठ जाय और यदि बैठने की शक्ति नहीं हो तो लेट कर संसार की असारता, आत्मस्वरूप और शरीर के रूप का विचार करे। इस तरह संस्कार की अस्थिरता और दुःखमयता का विचार करते करते आत्मरूप में लीन होकर शरीर का त्याग करे। सल्लेखना धारण करने में आत्म घात का दोष नहीं लगता है, क्योंकि आत्म घात कषायावेश के कारण होता है। लेकिन सल्लेखना में कषायों का त्याग किया जाता है।

आचार्य ने प्रस्तुत गाथा में अरिष्टों द्वारा आयु का परिज्ञान कर सल्लेखना करने का संकेत किया है तथा उसका महत्त्व भी बतलाया है।

रिष्टदर्शन का पात्र

इदि सल्लिहिद सरीरो भविओ जो अणसणेण वरमरणं।
इच्छइ सो इह भालइ इमाइं रिट्ठाइं जंतेण ॥ १४ ॥

इति संलिखित शरीरो भव्यो यो ऽनशनेन वरमरणं।
इच्छति स इह भालयत इमानि रिष्टानि यत्नेन ॥ १४ ॥

अर्थ--जो भव्य पुरुष उपर्युक्त विधि द्वारा सल्लेखना करता हुआ अनशन-आहार को क्रमशः कम करके पूर्ण त्याग द्वारा श्रेष्ठ मृत्यु को ग्रहण करना चाहता है. वह उचित ध्यान देने पर अरिष्टों का दिग्दर्शन करता है।

आराहणापडायं जो गिण्हइ परिसहे य जिणिऊण।
संसारम्मि अ ठिच्चा वोच्छे हं तस्स रिट्ठाइं ॥ १५ ॥

आराधना पताकां गृहणाति परिषहांश्च जित्वा।
संसारे च स्थित्वा वक्ष्ये ऽहं तस्य रिष्टानि ॥ १५ ॥

अर्थ—मैं उस व्यक्ति के अरिष्टों का वर्णन करता हूं, जो संसार में रहते हुए परिषहों को जीतकर आराधना रूपी पताका-

सल्लेखना को ग्रहण करता है।

विवेचन—आचार्य दुर्गदेव इस गाथा में बतलाते हैं कि साधारण व्यक्ति सामान्य घटनाओं के महत्व को नहीं समझ सकता है, लेकिन जिसकी आत्मा विशुद्ध है वह अपने चारों ओर के वातावरण से इष्टानिष्ट का संकेत प्राप्त करता है। इन वातावरण जन्य अरिष्टों का उपयोग सर्व साधारण व्यक्ति नहीं कर पाते हैं, लेकिन परिग्रह विजयी साधक-सल्लेखना धारण करनेवाले अरिष्टों के द्वारा अपनी मृत्यु का निश्चय कर अच्छी तरह काय और कषायों को कृशकर आत्मा का कल्याण कर लेते हैं। परंतु साधारण व्यक्ति अरिष्टों के द्वारा मृत्यु का निश्चय कर भी आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त नहीं होते हैं। जीने की इच्छा उन्हें अन्त समय तक सल्लेखना से विमुख रखती है।

पुव्वायरिय कमागय लद्धूणं दुग्गएव विवुहेण।
वरमरण कंडियाए रिट्ठगणं भासिअं सुणह ॥ १६ ॥

पूर्वाचार्य क्रमायतं लब्ध्वा दुर्गमेव विबुधेन।
वरमरण कंडिकायां रिष्टगणं भाषितं शृणुत ॥ १६ ॥

अर्थ—प्राचीन आचार्यों की परम्परा को प्राप्तकर दुर्गदेव मरणकरंडिका नामक ग्रन्थ में अरिष्टों का वर्णन करते हैं, ध्यान से सुनो ॥

रिष्टों के भेद

पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं होइ तं पि तिविअप्पं।
जीवस्स मरणयाले रिट्ठं नत्थि त्ति संदेहो ॥ १७ ॥

पिण्डस्थं च पदस्थं रूपस्थं भवति तदपि त्रिविकल्पं।
जीवस्य मरणकाले रिष्टं* नास्तीति सन्देहः ॥ १७ ॥

* रिष्टैर्विना न मरणं भवतीह जन्तोः स्थान व्यतिक्रमणतोऽतिसुसूक्ष्मतो वा।
कृच्छ्राण्यपि प्रथितभूतभवद्भविष्यद्रूपाणि यत्नविधिनात्र भिषक्प्रपश्येत् ॥
रिष्टान्यपि प्रकृतिदेहनिजस्वभावच्छायाकृति प्रवरलक्षणवैपरीत्यम्।

अर्थ—इसमें सन्देह नहीं कि मरण समय में पिण्डस्थ-शारीरिक, पदस्थ-चन्द्रादि आकाशीय ग्रहों के विकृतरूप में दर्शन और रूपस्थ-निजच्छाया, परच्छाया आदि का अंगविहीन दर्शन करना, इन तीन प्रकार के अरिष्टों का आविर्भाव होता है।

विवेचन—मृत्यु के पूर्व प्रकट होनेवाले लक्षणों को अरिष्ट कहते हैं। ज्योतिषशास्त्रमें जातक के जन्म विशेष के किसी निश्चित समय में जन्म होने-पाप, क्रूर ग्रहों के समय में जन्म होकर लग्न में उसी ग्रह का वेध होने से अरिष्ट माना गया है। प्रधान रूप से इस शास्त्र में तीन प्रकार के अरिष्ट बताये गये हैं—योगज, नियत और अनियत। नियत अरिष्ट के अन्तर्गत गण्ड नक्षत्रारिष्ट, गण्ड-तिथि-रिष्ट आदि हैं। योगज रिष्ट का विषय बहुत विस्तृत है, इसमें लग्न राशि और ग्रहों के सम्बन्ध से विभिन्न प्रकार के अरिष्ट बनते हैं। अनियत अरिष्ट लग्नाधिपति और अन्य ग्रहों के सम्बन्ध से होता है।

आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थारिष्ट, वेधारिष्ट और कीटारिष्ट ये तीन प्रधान भेद बतलाये गये हैं। स्वस्थारिष्ट के भोजनारिष्ट, छायाद्यरिष्ट, दर्शनेन्द्रियाद्यरिष्ट, श्रवणेन्द्रियाद्यरिष्ट और रसनेन्द्रिया-द्यरिष्ट ये पांच भेद बताये हैं। प्रथम भोजनारिष्ट में रोग के बिना ही हीन वर्णता, दुर्मनस्कता, और भोजन में अनिच्छा होती है। दूसरे छायाद्यरिष्ट में अपने शरीर की दो छायाएँ या छिद्रयुक्त अंग-विहीन छाया दिखलाई पड़ती है। तीसरे चौथे और पांचवें अरिष्ट में स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र ये इन्द्रियां विकृत हो जाती हैं और इनसे रक्त स्राव होने लगता है।

पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिश्च रक्तरूपाणां तोयेनिमज्जनमयथातुरभवहेतुः ॥

—क. १.१०.११

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते।
तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चापि तदुच्यते ॥

—भा. व. प्र. १०

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥२२॥
त्रिविधमरिष्टं-आध्यात्मिकं, आधिभौतिकं, आधिदैविकञ्चेति। तत्राध्यात्मिकं

वेधारिष्ट की उत्पत्ति का कारण शरद् ऋतु में धूप में रहना और वर्षा ऋतु में बारिश के जल से अधिक भींगना बताया गया है। कीटारिष्ट पेट में कीड़े हो जाने से उत्पन्न होता है। इसलिये आयुर्वेद में रिष्टों या अरिष्टों को बड़ा महत्व दिया गया है। चिकित्सक के लिये रिष्ट ज्ञान का प्रतिपादन करते हुए सुश्रुत में बताया है कि शरीर के जो अंग स्वभावतः जिसप्रकार के रहते हैं उनके अन्यथा होने से व्यक्ति की मृत्यु का निश्चय करना चाहिए। शुक्लवर्ण की कृष्णता, कृष्णवर्ण की शुक्लता, रक्त, वीर्य आदि धातुओं का विकृत वर्ण होना एवं व्यक्ति के स्वभाव में सहसा एक विचित्रपने का प्रकट होना रिष्ट द्योतक है।

दर्शन और योग शास्त्र* में आध्यात्मिक, आधिभौतिक और

*घोषं स्वदेहे पिहितकर्णो न शृणोति, ज्योतिर्वा नेत्रेऽवष्टब्धे न पश्यति, तथाऽऽधिभौतिकं यमपुरुषान् पश्यति, पितॄनतीतानकस्मात्पश्यति। तथाधिदैविकं स्वर्गमकस्मात्सिद्धान् वा पश्यति। विपरीतं वा सर्वमिति। अनेन वा जानात्यपरान्तं-मुपस्थितमिति॥ व्यास भाष्यः

प्रासङ्गिकमाह--अरिष्टेभ्योवा अरिवत्त्रासयन्तीत्यरिष्टानि त्रिविधानि मरण-चिन्हानि। विपरीतं वा सर्वं माहेन्द्रजालादिव्यतिरेकेण ग्रामनगरादि स्वर्गमभिमन्यते, मनुष्यलोकमिति॥ वाचस्पतिः

अरिष्टेभ्योवा। अरिष्टानि त्रिविधानि--आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविक-भेदेन। तथाऽऽध्यात्मिकानि पिहितकर्मणः कोष्ठ्यस्यवायोर्घोषं न शृणोतीत्येवमा-दीनि, अधिभौतिकान्यकस्माद्विकृतपुरुषदर्शनादीनि आधिदैविकान्यकाण्ड एव द्रष्टुमशक्य स्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि। तेभ्यः शरीरवियोगकालं जानाति॥ भोजदेवः
--यो. सू. ३. २२

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत्। तच्च रिष्टं समासेन सुश्रु०॥ प्रकृतेर्विकृतिर्नृणां बुद्धीन्द्रियशरीरजा। अकस्माद् दृश्यते येषां तेषां मरणमादिशेत्॥
--ज्योतिः पराशरविष्णुधर्मोत्तरपुराण

मरणं चापि तन्नास्ति यन्न रिष्टपुरस्सरम्। तच्च रिष्टं द्विविधं नियतमनियतं च। तत्र कालमृत्युसूचकं नियतम्। गणितागतायुःसमाप्त्यामरणं कालमृत्युस्तत्र प्रतीकाराभावः॥ —अ. सा. पृ. ५१६

मृत्युसूचकनिमित्तं अरिष्टम् क्रूर ग्रहदशांतर्दशादिमरणकालमृत्युः॥ —जा. पा. ४, १-२ टी०, स. चि. अ., जा. त. पृ. ३६-४५, श. हो. पृ. और त्रिलोक प्र. पृ. ११६-१२४

आधिदैविक ये तीन प्रकार के अरिष्ट बताये गये हैं। आध्यात्मिक में कानों को अंगुली लगाकर बन्द कर देने पर आभ्यन्तर से यन्त्र की आवाज सुनाई नहीं पड़ती है। आधिभौतिक में स्वयं अपना शरीर विकृत दिखलाई पड़ता है और आधिदैविक में स्वर्गीय आकाश-मण्डलीय दिव्य पदार्थों का दर्शन एवं वस्तुओं के अभाव में उनका सद्भाव दिखलाई पड़ता है।

निमित्तशास्त्र—जिसके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ है, उसमें वायु मंडल में विभिन्न प्रकार के चिह्न प्रकट होते हैं जिनसे आगामी शुभाशुभ की सूचना मिलती है, अरिष्ट बताया है। यों तो यह शास्त्र ज्योतिष का एक अंग है, पर इसका विकास स्वतन्त्र हुआ है। मध्यकाल में इसीलिए यह स्वतन्त्र रूप धारण कर अपनी चरम विकसित अवस्था को प्राप्त हुआ है। इस शास्त्र में प्रश्नाक्षर, प्रश्न लग्न एवं स्वरविज्ञान द्वारा रिष्टों का वर्णन किया गया है।

आचार्य ने प्रस्तुत गाथा में पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ इन तीन प्रकार के रिष्टों के नाम बतलाये हैं। आगे इन रिष्टों के लक्षण और फल बतलायेंगे।

पिण्डस्थ रिष्ट का लक्षण

जं च सरीरे रिट्ठं उप्पज्जइ तं हवेइ पिण्डत्थं।
तं चिअ अणेअभेअं णायव्वं सत्थदिट्ठीए ॥ १८ ॥

यच्च शरीरे रिष्टमुत्पद्यते तद्भवति पिण्डस्थम्।
तदेवानेकभेदं ज्ञातव्यं शास्त्रदृष्ट्या ॥ १८ ॥

अर्थ—शरीर में उत्पन्न होने वाले रिष्ट को पिण्डस्थ रिष्ट कहते हैं इस पिण्डस्थ रिष्ट के शास्त्र दृष्टि से अनेक भेद हैं।

पिण्डस्थ रिष्ट के पहचानने के चिह्न

जइ किण्हं करजुअलं सुकुमालं पिय हवेइ अइकढिणं।
फुट्टंति अंगुलिओ ता रिट्ठं तस्स जाणेह ॥ १९ ॥

यदि कृष्णं करयुगलं सुकुमारमपि च भवत्यतिकठिनं।
स्फुटन्त्यंगुल्यस्ततो रिष्टं तस्य जानीत ॥ १९ ॥

अर्थ—यदि दोनों हाथ काले हो जायँ, सुकुमार-कोमल हाथ कठोर हो जायँ और हाथों या पैरों की अंगुलियां फट जायँ तो पिण्डस्थ रिष्ट समझना चाहिए।

विवेचन—उपर्युक्त गाथा में आचार्य ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि बिना किसी विशेष रोग के कोमल हाथ कठोर और काले हो जायँ तथा बिना रोग विशेष के अंगुलियां फट जाय तो पिण्डस्थ रिष्ट समझना चाहिए। यहां केवल हाथों के सहसा विकृत होने को अरिष्ट नहीं कहा गया है प्रत्युत सभी इन्द्रियों के अकारण विकृत हो जाने को रिष्ट बताया है।

नेत्र विकार से आयु का निश्चय

थद्धं लोअणजुअलं विवण्णतणू वि कट्ठ (य) समसरिसं।
पस्सिज्जइ भालयलं सत्त दिणाइं उ सो जियइ ॥२०॥

स्तब्धं लोचनयुगलं विवर्णतनुरपि काष्ठकसमसदृशम्।
प्रस्विद्यति भालतलं सप्त दिनानि तु स जीवति ॥२०॥

अर्थ—जिसकी आँखें× स्थिर हो जायँ-पुतलियां इधर-उधर न चलें, शरीर कांतिहीन काष्ठवत् हो जाय और ललाट में पसीना आवे. वह केवल सात दिन जीवित रहता है।

मउलियवयणं वियसइ निमेसरहियाइँ हुंति नयणाइं।
नहरोमाइँ सडंदि य सो जियइ दिणाइँ सत्तेव ॥२१॥

×अवघट्टनं नेत्रस्य बिना रोगं यदा भवेत्।
एकस्य यदि वा दृश्येत् स्थानभ्रंशो द्वितीयके ॥
नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः।
नासा वक्रा च भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ॥
नेत्रे च वर्तुलीभूते कर्णौ भ्रष्टौ स्वदेशतः।
वक्रा नासा भवेद्यस्य सप्तरात्रं स जीवति ॥

—अ. स'. ५३५-५३८

अनिमिसं अविलंबी चक्खुरसावो य लंबगो सासो।
जइ ता कमेण दस सत्त वासरन्ते धुव मरणं ॥ —सं. रं. गा २२२

मुकुलितवदनं विकसति निमेषरहितानि भवंति नयनानि ।
नखरोमाणि शटन्ति च स जीवति दिनानि सप्तैव ॥२१॥

अर्थ—यदि बन्द मुख एकाएक खुल जाय, आंखों की पलकें न गिरें-एक टक दृष्टि हो जाय तथा नख, दांत सड़ जायँ या गिर जायँ तो वह व्यक्ति केवल सात दिन जीवित रहेगा।

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त दोनों गाथाओं में शारीरिक विकार द्वारा सात दिन की आयु का निरूपण किया है। ग्रंथान्तरों में शरीर जन्य रिष्टों से सात दिन की आयु का कथन करते हुए बताया है कि जिस व्यक्ति की भौंहें टेढी हो जायँ, आंख की पुतली एकदम भीतर घुस जाय, मुंह सफेद और विकृत हो जाय, दांत टुकड़े-टुकड़े होकर गिरने लगे तथा उनमें से दुर्गन्ध आने लगे तो उसकी आयु सात दिन जाननी चाहिये। कल्याणकारक और सुश्रुत में इन्द्रिय जन्य अरिष्टों का प्रतिपादन करते हुए बताया है कि जिस व्यक्ति की रसना इंद्रिय रसों के स्वाद को ग्रहण नहीं करती है, अकारण ही शिर कम्पता है और मस्तक में एक प्रकार की विचित्र सनसनाहट मालूम होती है, शब्दों का उच्चारण यथार्थ नहीं होता है, उस व्यक्ति की सात दिन की आयु समझनी चाहिये।

शारीरिक रिष्टों द्वारा एक मास की आयु का ज्ञान

थगथगइ कम्महीणो थूलो दु किसो किसो हवइ थूलो ।
सुवइ कयसीसहत्थो मासिक्कं सो फुडं जियइ ॥२२॥

थगथगायते कर्महीनः स्थूलस्तु कृशः कृशस्तु भवति स्थूलः ।
स्वपिति कृतशीर्षहस्तो मासैकं स स्फुटं जीवति ॥२२॥

अर्थ—जो कर्महीन-गतायु व्यक्ति स्थिर रहने पर भी कांपता रहे एकाएक मोटे से पतला और पतले से मोटा हो जाय एवं जो अपना हाथ सिर पर रखकर सोए, वह निश्चित रूपसे एक* मास जीवित रहता है।

---

*यस्य गोमयचूर्णाभं तूर्णं मूर्धनि जायते ।
सस्नेहं न भवेत् तत्र मासान्तं तस्य जीवनं ॥ —चरक, रि. अध्याय
यदालकादर्शनचन्द्रभास्कर प्रदीप्ततेजस्सुनरो न पश्यति ।

करबंधं कारिज्जइ कंठस्सुवरम्मि अंगुलिचएण ।
न हु एइ गाढबंधं तस्साउ हवेइ मासिक्कं ॥२३॥

करबन्धः कार्यते कण्ठस्योपर्यंगुलिचयेन ।
न खल्वेति गाढबन्धं तस्यायुर्भवति मासिकम् ॥२३॥

अर्थ—गाढ़ बन्धन करने के लिये जिसकी अंगुलियां गले में डाली जायँ, पर अंगुलियों से दृढ़ बन्धन नहीं हो सके तो ऐसे व्यक्ति की आयु एक महीना अवशेष रहती है।

विवेचन—शरीर एवं इन्द्रियों की वास्तविक प्रकृति से बिल्कुल विपरीत जितने लक्षण प्रकट हों, वे सब एक महीने की आयु व्यक्त करते हैं। ग्रन्थान्तरों में एक मास की अवशेष आयु का बोध करने के लिये विभिन्न प्रकार के रिष्टों का कथन किया गया है। कल्याण कारक में बताया गया है कि जो व्यक्ति अपनी आंखों से अन्य व्यक्ति के कुटिल केशों, सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश को स्पष्ट रूपसे नहीं देख सके तथा जिसकी जिह्वा इन्द्रिय टेढ़ी हो जाय, वह एक मास जीवित रहता है। अद्भुतसागर में काया-रिष्टों का निरूपण करते हुए बताया है कि अकस्मात् लिंग इंद्रिय और रसना इंद्रिय का काला पड़ जाना अथवा विकृत अवस्था को प्राप्त हो जाना एक माह की आयु का सूचक है।

तीस दिन की आयु के द्योतक अरिष्ट

कडु-तित्तं च कसायं अंबं मदुरं तहेव लवणं च ।
भुंजंतो न हु जाणइ तीस दिणाइं च तस्साऊ ॥ २४ ॥

समक्ष्य मात्रे प्रतिबिम्बमन्यथा विलोकयेद्वा स च मासमात्रतः ॥—क. पृ. ७०८

शुष्कास्यः श्यामकोष्ठो ऽप्यसितरदततिः शीतनासाप्रदेशः ।
शोणाक्षश्चैकनेत्रो लुलितकरपदः श्रोत्रपातित्वयुक्तः ।
शीतश्वासो ऽथ चोष्णश्वसनसमुदयः शीतगात्रप्रकम्पः ।
सोद्वेगो निष्प्रपंचः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥
यो. र. पृ. ६, अ. त. पृ. ३८-३९, अद्भु. सा. पृ. ५२५, ना. सं. पृ. ४१, वृ. पा. तथा सं. रै. म. द्रा.

कटुतिक्तं च कशायम्लं मधुरं तथैव लवणं च ।
भुंजन्न खलु जानाति त्रिन्शद्दिनानि च तस्यायुः ॥ २४ ॥

अर्थ—भोजन के समय जिस व्यक्ति को कडुवे, तीखे, कषायले, खट्टे, मीठे और खारे रसों का स्वाद न आवे उसकी तीस दिन (एक महीना) की आयु रहती है।

विवेचन—आचार्य ने रसनेन्द्रिय की शिथिलता को एक मास की आयु का द्योतक बतलाया है। ज्योतिषशास्त्र में शारीरिक रिष्टों के अधिक से अधिक मृत्यु के छः मास पहले होने का उल्लेख मिलता है। इससे पूर्व में शारीरिक रिष्ट प्रकट नहीं होते हैं। रूपस्थ और पदस्थ रिष्टों से आयु के दो वर्ष शेष रह जाने पर ही मृत्यु की सूचना मिल जाती है। इसीलिये आचार्य इस प्रकरण में एक मास की आयु को ज्ञात करने के चिन्हों को बतला रहे हैं। बृहद् पराशर होरा में कालारिष्टों का निरूपण करते हुए ग्रह स्थिति से आयु का सुन्दर निरूपण किया गया है।

मृत जीव की परीक्षा

न हु जाणइ णियअंगं उड्ढादिट्ठी ज्झडप्पपरिहीणा ।
कर-चरणचल्लणासो गयजीवं तं विआणेह ॥ २५ ॥

न खलु जानाति निजाङ्गमूर्ध्वा दृष्टिः स्पन्दन परिहीनः ।
करचरणचलननाशो मृतजीवं तं विजानीत ॥ २५ ॥

अर्थ—यदि अंगों में अनुभव शक्ति न हो, आंखें ऊपर की ओर झुकी हों, स्थिर हो, हाथ, पैर नहीं चलते हों तो उस व्यक्ति को मृत समझना चाहिये।

निकट मृत्यु के चिन्ह

वयणेण पडइ रुहिरं वयणेण अ णिग्गमेइ अइसासो ।
विस्सामेण विहीणो जाणह मच्चुं लहुं तस्स ॥ २६ ॥

वदनेन पतति रुधिरं वदनेन च निर्गच्छत्यतिश्वासः ।
विश्रामेण विहीनो जानीत मृत्युं लघुं तस्य ॥ २६ ॥

अर्थ—यदि मुख से खून निकलता हो, मुख से ही तेजी से

श्वास निकलती हो और खूब छटापटा रहा हो तो मृत्यु निकट समझनी चाहिये ॥

विवेचन—निकट मृत्यु ज्ञान को अवगत करने के अनेक शारीरिक चिन्ह होते हैं। किसी-किसी आचार्य ने चेष्टा का रुकना, *स्मृति, धृति, मेधा आदि का नष्ट होना, अंगों में बीभत्स आकारों का प्रकट होना, जिह्वा का काला हो जाना, वाणी का अवरुद्ध हो जाना, नख और दांतों का काला हो जाना, आंखों का बैठ जाना, उत्सुकता, पराक्रम, तेज और कांति का क्षीण हो जाना एवं धातु और उपधातुओं का क्षीण हो जाना निकट मृत्यु के कारण बताये हैं।

एक मास अवशेष आयु के चिन्ह

अहर-नहा तह दसणा कण्हा जइ हुंति कारणविहीणा।
मासाब्भंतर आउं निद्दिट्ठं तस्स सत्थम्मि ॥ २७ ॥

अधर-नखास्तथा दशनाः कृष्णा यदि भवन्ति कारणविहीनाः।
मासाभ्यन्तरमायुर्निर्दिष्टं तस्य शास्त्रे ॥ २७ ॥

अर्थ—आचार्य यहाँ बतलाते हैं कि पूर्व शास्त्रों में बताया गया है कि बिना किसी कारण के यदि नख ओठ और दाँत काले पड़ जायँ तो एक मास की आयु अवशिष्ट समझनी चाहिए।

---

*प्राणाः समुपरुध्यन्ते विज्ञानमुपरुध्यते।
वमन्ति बलमङ्गानि चेष्टा व्युपरमन्ति च ॥
इन्द्रियाणि विनश्यन्ति खिलीभवति वेदना।
औत्सुक्यं भजते सत्वं चेतोभीराविशत्यपि ॥
स्मृतिस्त्यजति मेधा च ह्रीश्रियौ चापसर्पतः।
उपप्लवन्ते पाप्मानः ओजस्तेजश्च नश्यति ॥
शीलं व्यावर्ततेऽत्यर्थं शक्तिश्च परिवर्तते।
विक्रियन्ते प्रतिच्छायाच्छायाश्च विकृतिं गताः ॥
शुक्रं प्रच्यवते स्थानादुन्मार्गं भजतेऽनिलः।
क्षयं मांसानि गच्छन्ति गच्छत्यसृगपि क्षयम् ॥ इत्यादि
—च. इ. स्था. श्लो. ४५-४६

निकट मृत्यु ज्ञात करने के अन्य चिन्ह

मुह-जीहं चिअ किण्हं गीवा लहु पडइ कारणं णात्थि।
रुमइ हिअइ सासो लहु मच्चू तस्स जाणेह ॥ २८ ॥

मुख-जिह्व एव कृष्णे ग्रीवा लघु पतति कारणं नास्ति।
रुणाद्धि हृदये श्वासो लघुं मृत्युं तस्य जानीत ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि किसी व्यक्ति का मुख और जीभ काली पड़ जायँ, गर्दन बिना किसी कारण के झुक जाय तथा बार-बार सांस रुकने लगे तो उसका शीघ्र मरण समझना चाहिए।

विवेचन—उष्ण* वस्तु शीत प्रतीत हो और शीत वस्तु उष्ण प्रतीत हो, कोमल वस्तु कठोर और कठोर वस्तु कोमल प्रतीत हो, सुगन्धित वस्तु दुर्गन्ध युक्त और दुर्गन्धित वस्तु सुगन्ध युक्त प्रतीत हो एवं कृष्ण वस्तु शुक्ल और शुक्ल वस्तु कृष्ण प्रति भासित हो तो उस व्यक्ति का निकट मरण जानना चाहिये

मृत्यु होने के पूर्व शरीर की स्थिति कायम रखने वाले परमाणुओं में इस प्रकार का विपर्यास आ जाता है जिससे उसकी इंद्रिय शक्ति क्षीण हो जाती है और शारीरिक संघठित परमाणु विघटित होने की ओर अग्रसर हो जाते हैं। यह विघटन की प्रक्रिया जब तक नहीं होती है, तभी तक जीवन शक्ति वर्तमान रहती है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मृत्यु होने के पूर्व से ही जीवन शक्ति सम्पन्न रखने वाले परमाणु अपनी असली स्थिति को छोड़ना शुरू कर देते हैं। धीरे-धीरे

---

*उष्णाञ्शीतान् खराञ्छ्लक्ष्णान् मृदूनपि च दारुणान्।
स्पृष्ट्वा स्पृश्यांस्ततोऽन्यत्वं मुमूर्षुरतेषु मन्यते ॥
अन्तरेण तपस्तीव्रं योगं वा विधि पूर्वकम्।
इंद्रियैरधिकं पश्यन् पञ्चत्वमधिगच्छति ॥
इंद्रियाणामृते दृष्टेरिन्द्रियार्थान् न पश्यति।
विपर्ययेण यो विद्यात् तं विद्याद्विगतायुषम् ॥
स्वस्थाः प्रज्ञाविपर्यासैरिन्द्रियार्थेषु वैकृतम्।
पश्यन्ति ये सुबहुशस्तेषां मरणमादिशेत् ॥ च. इ. स्था. श्लो. २२-२५

जीवन शक्ति के ह्रास होने पर परमाणुओं का समुदाय विकीर्ण हो जाता है और चेतन आत्मा अन्यत्र चला जाता है।

सात दिन की अवशेष आयु के चिन्ह

कर-चरण अंगुलीणं संधिपएसा [य] णेह फुट्टंति।
न सुणेइ कण्णघोसं तस्साऊ सत्त दिअहाइं॥ २९॥

कर-चरणांगुलीनां सन्धिप्रदेशाश्च नैव स्फुटन्ति।
न शृणोति कर्णघोषं तस्यायुः सप्त दिवसान्॥ २९॥

अर्थ—जिसके हाथ और पैर की अंगुलियों की जोड़ें न कड़कें और जो कानों के भीतर होने वाली आवाज को नहीं सुन सके उसकी सात दिन की आयु होती है।

विवेचन—जब शरीर* अकस्मात् ही निर्बल या काला पड़ जाय, सर्वसाधारण के समान रहने वाला मुखमण्डल कमल के समान गोल और मनोहर हो जाय एवं कपोल में इन्द्रगोप के समान चिन्ह प्रकट हों तो सात दिन की आयु समझनी चाहिए।

रोगी× के शिर के बाल खींचने पर उसे दर्द नहीं मालूम हो तो उसकी ६ दिन की आयु अवशेष जाननी चाहिये। अद्भुत तरंगिणी में इसी चिन्ह को सात दिन की आयुका कारण भी बतलाया है। इस चिन्ह में वैज्ञानिक हेतु यह दिया गया है कि बालों का सम्बन्ध मस्तिष्क के उन ज्ञान तन्तुओं से है जो संवेदन उत्पन्न करते हैं संवेदन उत्पन्न करने की योग्यता का विघटन मृत्यु के एक सप्ताह पहले से आरम्भ हो जाता है। शरीर शास्त्र के विशेषज्ञों

---

*यदान्त्यचिन्होत्थबलोऽसितो भवेद्यदारविंदं समवक्त्रमण्डलम्।
यदा कपोले बलकेन्द्रगोपकस्स एव जीवेदिह सप्तरात्रिकम्॥—क. पृ. ७०६

×आयम्योत्पाटितान् केशान् यो नरो नावबुध्यते।
अनातुरो वा रोगी षड्रात्रं नातिवर्तते॥
अनातुरः रोगी आड्रात्रं वापि यो नरः आयम्य बलादाकृष्य उत्पाटितान् केशान् न अवबुध्यते तद्वेदनां न वेत्ति स षड्रात्रं नातिवर्तते॥—च.पृ.११६२
अनिमित्तं अविसंवी चक्खुसावो य लंबगो सासो।
जइ ता कमेण दस सत्त वासरंते धुवं मरणं॥ —सं. रं. गा. २२२

का कथन है कि शरीर में दो प्रकार के मुख्यतः परमाणु होते हैं एक वे हैं जिनसे संवेदनशीलता में गति प्राप्त होती है और दूसरे वे परमाणु हैं जो स्वयं संवेदन रूप में परिणत होते हैं। प्रथम प्रकार के परमाणु मृत्यु के कई महीने पहले से ही विघटित होने लगते हैं, पर द्वितीय प्रकार के परमाणु मृत्यु के कुछ ही दिन पहिले विघटित होना आरंभ होते हैं। आचार्य ने उक्त गाथा में इन्हीं संवेदन-शील परमाणुओं के विघटित होने का संकेत किया है।

एक मास अवशेष आयुवाले के चिन्ह

जीहग्गे अइकसिणं अण्णं तं होइ जस्स गुरुतिलयं।
मासिकं तस्साऊ निद्दिट्ठं सत्थइत्तेहिं ॥ ३० ॥

जिह्वाग्रमतिकृष्णं खंडितं तद्भवति यस्य गुरुतिलकं।
मासिकं तस्यायुर्निर्दिष्टं शास्त्रविद्भिः ॥ ३० ॥

अर्थ—अरिष्ट शास्त्र के मर्मज्ञों का कथन है कि जिसकी जीभ की नोंक [अग्रभाग) बिलकुल काली हो जाय और ललाट पर की बड़ी रेखाएँ मिट जायँ वह एक मास जीवित रहता है।

तीस दिन अवशिष्ट आयुवाले के चिन्ह

कर-चरणेसु अ तोयं दिण्णं परिसुसइ जस्स निब्भंतं।
सो जीवइ दिअहतयं इइ कहिअं पुव्वसूरीहिं ॥३१॥

कर-चरणेषु च तोयं दत्तं परिशुष्यति यस्य निर्भ्रान्तं।
स जीवति दिवसत्रयमिति कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिसके हाथ और पैरों पर जल रखने से सूख जाय वह निस्सन्देह तीन दिन जीवित रहता है, ऐसा पूर्वाचार्यो का कथन है।

विवेचन—ग्रंथान्तरों में त्रैराशिकमरण चिन्हों का कथन करते हुए बतलाया है कि वात के प्रकोप से जब शरीर में सुई चुभाने जैसी भयंकर पीड़ा हो, मर्मस्थानों में भी अत्यन्त पीड़ा हो भयकंर और दुष्ट बिच्छू से कटे हुए मनुष्य के समान अत्यधिक

वेदना से प्रतिक्षण व्याकुलित हो तो समझना चाहिये कि वह तीन दिन* तक जीवित रहेगा।

शरीर-विज्ञान वेत्ताओं का कथन है कि मरण के पहिले तीन दिन से ही शरीर में परमाणुओं की रासायनिक विश्लेषण क्रिया आरंभ हो जाती है. जिससे शरीर को स्थिर रखने वाले वायु और कफ दोनों असमावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। शारीरिक विज्ञान के अनुसार त्रिदोष में तीनों दोषों के विकृत होने पर भी वायु और कफ में पहले विकार आता है, और इन दोनों की विकृति इतने असमान रूप से होती है जिससे पित्त दोष इन्हीं के अन्तर्गत आ जाता है। फलतः तीन दिन पहले से शरीर-स्थिति को संपन्न करने वाले घटक रूप परमाणु वायु की तीव्रता से आचार्य प्रतिपादित चिन्हों को प्रकट कर देते हैं।

निकट मृत्यु प्रकट करने वाले अन्य चिंह

वयणम्मि नासिआए तहगुज्के जस्स सीयलो पवणो।
तस्स लहु होइ मरणं पुव्वायरियेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३२ ॥

वदने नासिकायां तथा गुह्ये यस्य शीतलः पवनः।
तस्य लघु भवति मरणं पूर्वाचार्यैर्निर्दिष्टम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्वाचार्यों के द्वारा यह भी कहा गया है कि जिसके मुख, नाक तथा गुप्त-इन्द्रिय से शीतल वायु निकले वह शीघ्र ही मरता है।

विवेचन—आधुनिक शरीर विज्ञान भी बतलाता है कि मृत्यु के पूर्व कुछ दिनों से ही बाह्य करण-इन्द्रियां, जिनसे संवेदन होता है, मांस पेशियां जिनसे गति या संचालन होता और संवेदन सूत्र जो इन दोनों के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हैं, विशृंखलित हो जाते हैं। इस विशृंखलित अवस्था का नाम ही शारीरिक मरण चिन्ह या रिष्ट है। गतिवाहक सूत्र और संवेदन वाहक सूत्र की शिथिलता ही मृत्यु का कारण है। इस सूत्र की शिथिलता से मुख

* तुदं शरीरे प्रतिपीड्यत्यप्यनूनमर्माणि मारुतो यदा।
तथोग्रदुर्लक्षिकविद्धवत्स्सैदव दुःखी त्रिदिनं स जीवति॥ क. पृ. ७०६

और नाक से शीतल वायु निकलती है, इसीलिये आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में विज्ञान-सम्मत उक्त मरण चिन्हों का निरूपण किया है।

पंद्रह दिन की आयु व्यक्त करने वाले शारीरिक रिष्ट

देहं तेयविहीणं निस्सरमाणो हु उट्ठए सासो।
पंचदस तस्स दियहे णिद्दिट्ठं जीविअं इत्थ ॥ ३३ ॥

देहस्तेजविहीनः निस्सरन् खलूत्तिष्ठति श्वासः।
पंचदश तस्य दिवसान्निर्दिष्टं जीवितमत्र ॥ ३३ ॥

अर्थ—यह कहा जाता है कि यदि शरीर कांतिहीन हो और बाहर निकलने में श्वास तेज हो तो वह इस संसार में १५ दिन तक जीवित रहता है।

विवेचन—जिस× मनुष्य का रूप दूसरों की दृष्टि में नहीं आता हो एवं जिसे तेज सुगन्ध या दुर्गन्ध का अनुभव नहीं होता हो वह १५ दिन जीवित रहता है।

जिसका* स्नान करने के अनन्तर वक्षःस्थल पहले सूखता है और समस्त शरीर गीला रहता है वह व्यक्ति सिर्फ १५ दिन जीवित रहता है।

आयु के सात दिन अवशिष्ट रहने के शारीरिक चिन्ह।

अनिमित्तं जलविंदु नयणेसु पडंति जस्स अणवरयं।
देसणा हवंति कण्हा सो जीवइ सत्त दिअहाइं ॥२४॥

अनिमित्तं जलबिन्दवो नयनेभ्यः पतन्ति यस्यानवरतम्।
दशना भवन्ति कृष्णाः स जीवति सप्त दिवसान् ॥२४॥

× यदा परस्मिन्निह दृष्टिमण्डले स्वयं स्वरूपं न च पश्यति स्फुटम्।
प्रदीप्तगन्धं च न वेत्ति यस्तन त्रिपंचरात्रेषु नरो न विद्यते ॥—क. पृ. ७०४

* यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वम् शुष्यत्युरो भृशम्।
आर्द्रेषु सर्वगात्रेषु सोऽर्धमास न जीवति ॥—च. पृ. १४१३
स्नातानुलिप्तं यच्चापि भजन्ते नील मक्षिकाः।
दुर्गन्धिर्वाति वाऽकस्मात् तं ब्रुवन्ति गतायुषम् ॥—भ. सा. पृ. ५४६

अर्थ—यदि अकारण ही नेत्रों से अनवरत पानी निकलता रहे और दांत काले पड़ जायें तो सात दिन की आयु अवशिष्ट समझनी चाहिये।

विवेचन—×शरीर विज्ञान-वेत्ताओं का कथन है कि जिस व्यक्ति के दांत विकृत होकर सफेद हड्डी के समान मालूम हों, कुछ द्रव पदार्थ उनमें लिप्त रहे एवं दांत भयानक और विकृत दिखलाई पड़ते हों तो उस व्यक्ति की मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

आयुर्वेद में नेत्र, कान और दांत की परीक्षा के प्रकरण में लिखा है कि अत्यधिक तापमान के अनन्तर ठण्डक लगने से नेत्र से पानी निकलता है। नेत्र इंद्रिय के द्वारा जो प्रकट होते हैं उनका प्रधान कारण शरीर-घटक परमाणुओं का विश्लेषण माना गया है। जब शरीरमें बाह्य विजातीय द्रव्यों का सम्बन्ध हो जाता है तो सबसे पहले उसकी सूचना नेत्रों को मिलती है और वे उस विजातीय द्रव्य को किसी न किसी रूपमें बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन जब नेत्र उस विजातीय द्रव्य को निकालने में असमर्थ हो जाते हैं तो उनसे एकाएक लगातार पानी निकलने लगता है। इस अवस्था को इस प्रकार कहा जा सकता कि जैसे अत्यधिक गर्म वस्तु पर दो चार कण जल पड़ने से एक प्रकार का तेज उत्पन्न होता है—भौतिक विज्ञान की परिभाषा में विद्युत्कणों की लहर वेग पूर्वक उत्पन्न होती है, उसी प्रकार नेत्रों के ऊपर एकाएक पड़ने से निरन्तर जल प्रवाह निकलने लगता है और आगे जाकर यह प्रवाह एक ही भभके में जीवन लीला को समाप्त कर देता है। तात्पर्य यह कि बिना रोग के प्रकट हुए आभ्यन्तर स्थित विजातीय द्रव्यों के अकस्मात् दबाव से आंखों से जल की धारा अनवरत रूपसे प्रवाहित होती है और यह शीघ्र मृत्यु की सूचक है।

आचार्य ने इसी वैज्ञानिक तथ्य का उपर्युक्त गाथा में निरूपण किया है।

× अस्थिश्वेता द्विजा यस्य पुष्पिताः पङ्क संवृताः।
विकृत्या न स रोगांस्तु विहायारोग्यमश्नुते ॥—क. पृ. १२६२

मृत्यु के दो दिन पहले प्रकट होने वाले शारीरिक चिन्ह ।

दिट्ठीए चप्पियाए तारार्बिबं ग जस्स भमडेइ ।

दिणजुअमज्झे मरणं णिद्दिट्ठं तस्स निब्भंतं ॥३५॥

दृष्ट्या आक्रान्तया ताराबिम्बं न यस्य भ्राम्यति ।

दिनयुगमध्ये मरणं निर्दिष्टं तस्य निर्भ्रान्तम् ॥३५॥

अर्थ—यदि नेत्रों के संचालन के साथ पुतलियां नहीं घूमती हों तो निस्सन्देह दो दिन के भीतर मरण होता है ।

विवेचन—ग्रन्थान्तरों में दो दिन की आयु अवशेष रह जाने पर अनेक मरण-चिन्हों को कहा गया है । एक× स्थान पर लिखा है कि ठंडे जल से सिंचन करने पर भी जिसे रोमांच नहीं होता हो और जो अपने शरीर की सर्व क्रियाओं का अनुभव नहीं करता हो, वह दो दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

चरक* में इन्द्रिय की परीक्षा करते हुए लिखा है कि जो अघन आकाश को घनीभूत और कठिन देखता है और घनीभूत पृथ्वी के अघन रूपमें दर्शन करता है । अमूर्त्तिक आकाश मूर्त्तिमान रूपमें दिखलाई पड़ता है, तेजमान अग्नि तेज रहित दिखलाई पड़ती है, स्थिर वस्तु को चंचल और चचल को स्थिर रूपमें देखता है, निरभ्र आकाश को मेघाच्छादित देखता है उसका शीघ्र मरण होता है । जिस व्यक्ति की काली पुतलियां बिना किसी रोग के सहसा सफेद हो जायँ और जो नेत्र संचालन करने पर नेत्रों के भीतर रहने वाले प्रकाशमान तारा का दर्शन न करे तथा जिसकी भीतरी आंखों का आकार मैला और सफेद दिखलाई पड़े उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये ।

× जलेस्सुशीतैर्हिमशीतलोपमैः प्रसिच्यतो यस्य न रोमहर्षः ।
न वेत्ति यस्सर्वं शरीर सत् क्रियां नरो न जीवेद्द्विनात्परं सः ॥–च. पृ ७१०

* घनीभूतमिवाकाशमाकाशमिव मेदनीम् ।
विगीतमुभयं त्वेतत् पश्यन् मरणमृच्छति ॥
यस्यदर्शनमायाति मारुतोऽम्बर गोचरः ।
अग्निर्नायाति वा दीप्तस्तस्यायुः क्षयमादिशेत् ॥
जले सुविमले जालमजालावतते नरः ।
स्थिरे गच्छति वा दृष्ट्वा जीवितात् परिमुच्यते ॥ –च. पृ. १३६४

मृत्यु के चार माह पूर्व होने वाले शारीरिक मरण चिन्ह

धिदिणासो सदिणासो गमणविणासो हवेइ इह जस्स।
अइणिद णिद्दणासो मासचउक्क उ सो जियइ ॥ ३६ ॥

धृतिनाशः स्मृतिनाशो गमनविनाशो भवतीह यस्य।
अतिनिद्रा निद्रानाशो मासचतुष्कं तु स जीवति ॥३६॥

अर्थ—जिस व्यक्ति के धैर्य और स्मृति नष्ट हो जायँ और जो चलनेसे असमर्थ हो जाय, जिसे अत्यन्त नींद आती हो अथवा नींद ही नहीं आती हो तो वह चार मास जीवित रहता है।

विवेचन—वैज्ञानिकों ने धैर्य और स्मृति का वर्णन करते हुए बताया है कि मुख्यतः स्मृतियें दो प्रकार की होती हैं-एक तंतुगत स्मृति-अचेतन और दूसरी चेतन स्मृति। तंतुगत स्मृति उन आच्छादित अन्तः संस्कारों की पुनरुद्भावना है जो संवेदन सूत्र ग्रंथियों में संचित रहते हैं—अन्तः संस्कारों की धारणा के अनुसार जो शारीरिक व्यापार होते हैं उनका भान इस स्मृति में नहीं होता चेतन स्मृति अन्तः संस्कारों का प्रतिबिम्ब पड़ने से उत्पन्न होती है, इसमें प्रथम संस्कारों की धारणाएँ रहती हैं, फिर वे ज्ञानपूर्वक उपस्थित हो जाती हैं। धैर्य के संबंध में भी वैज्ञानिकों ने बताया है कि यह एक अन्तः प्रवृत्ति है, जिसका प्राणी समय २ पर उपयोग करता रहता है। चेतन स्मृति मनुष्यों की मृत्यु के चार माह पहले से नष्ट हो जाती है, इसका प्रधान कारण यह है कि जीवन शक्ति के न्यून हो जाने पर उन्नत मनोव्यापार रुक जाते है। जीवन शक्ति जितनी अधिक उन्नत और विकसित परिणाम में रहेगी, मनुष्य के मनोव्यापार उतने ही अधिक उन्नत कोटि के होंगे। मनुष्य के मस्तिष्क व्यापार और शारीरिक व्यापार जब संतुलित अवस्था में नहीं रहते हैं, उस समय उसकी जीवन शक्ति घट जाती है। मृत्यु चिन्ह प्रधान रूप से शारीरिक और मस्तिष्क संबंधी वेगों की असमता द्योतक ही हैं। शरीर विज्ञान की तह में प्रवेश करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धृति और स्मृति, चेतन अवस्था से जब अचेतन अवस्था को प्राप्त होती हैं, उस समय व्यक्ति के भौतिक शरीर में इस प्रकार की रासायनिक क्रिया होती है जिससे उसकी

जीवन शक्ति का ह्रास होने लगता है और वह धीरे-धीरे मृत्यु के निकट पहुँच आता है। इस अवस्था में व्यक्ति के अन्तःकरण से प्रीति, घृणा, प्रवृत्ति, आदि मनोवेगों की परम्परा विच्छिन्न होने लगती है और उस के संवेदन में भी न्यूनता आने लगती है।

आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में इसी मनोवैज्ञानिक रहस्य को लेकर धृति और स्मृति का नष्ट होना चार माह पूर्व से ही मृत्यु का सूचक बतलाया है। ये दोनों प्रवृत्तियां चेतन-ज्ञान से सम्बद्ध रहती है, अतः इनका अभाव स्पष्ट रूप से चेतना—जीवन शक्ति के अभाव का द्योतक है।

शारीरिक चिन्हों द्वारा एक दिन, तीन दिन और नौ दिन की आयु को ज्ञात करने के नियम

ण हु पिच्छइ णियजीहा एयदिणं होइ तस्स इह आऊ।
नासाए त्तिणि दिअहा णव दिअहा भमुहमज्भेण ॥३७॥

न खलु पश्यति निजजिह्वामेकदिनं भवति तस्येहायुः।
नासया त्रीन् दिवसान्नव दिवसान् भ्रूमध्येन ॥ ३७ ॥

अर्थ—यदि कोई अपनी जिह्वा* न देख सके तो एक दिन, नाक न देख सकने पर तीन दिन और भौंह के मध्य भाग को न देख सकने पर नौ दिन जीवित रहता है।

विवेचन—नवाह्निकादि मरणचिन्हों× का कथन करते हुए आयुर्वेद में भ्रू विकार को नौ दिन की आयु का कारण माना है, यहां भ्रू के मध्य भाग का अदर्शन मृत्यु का चिन्ह नहीं बतलाया है, प्रत्युत भौंहों का टेढ़ा हो जाना या और किसी प्रकार का विकार

---

*जियइ तिदिणं स सव्वं पासति पीयं पयत्थसत्थं जो।
जस्स या कसिणं मिम्ं हवति पुरीसं स लहुमरणो॥
बद्धचक्खुलक्खा निरक्खमाणो वि न यतियं नियइ।
भमुयाण जुयं जो सो नवदिवसब्भंतरे मरइ—"सं. रं. पा. १६८-१६६

×भ्रूयुग्मं नववासरं श्रवणयोः घोषं च सप्ताह्निकम्।
नासा पंचदिनादिभिर्नयनयोर्ज्योतिर्दिनानां त्रयम्॥
जिह्वामेकदिनं विकारतिरसद्याहारातो बुद्धिमां—
रत्यक्त्वा देहमिदं त्यजेत विधिवत् संसारभीरुः पुमान्॥—क. पृ. ७११

उत्पन्न हो जाना मृत्यु चिह्न बतलाया है। कान में समुद्र घोष सदृश आवाज आने पर सात दिन, नाक में विकृति होने पर पांच या चार दिन, आंखों की ज्योति में विकार होने पर तीन दिन और रसना इंद्रिय के विकृत होने पर एक दिन की आयु समझनी चाहिये।

शरीर विज्ञान वेत्ताओं ने इन्द्रियों की परीक्षा से आयु का निश्चय किया है। उनका मत है कि शारीरिक लक्षणों में सबसे पहले स्पर्शन इन्द्रिय जन्य मृत्यु चिह्न प्रकट होते हैं। इन चिन्हों का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि स्पर्शन इन्द्रिय में अनुभव शून्यता के होने पर तीन महीने के भीतर मृत्यु होती है। अन्य इन्द्रियों में मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व शिथिलता आती है। आचार्य ने इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर उपर्युक्त मरण चिन्हों का निश्चय किया है।

सात दिन एवं पांच दिन की आयु को ज्ञात करने के नियम

कण्णाघोसे सत्त यलोयणताराअदं सणे पंच।
दिअहाइँ हवइ आऊ इय भणिअं सत्थइत्तेहिं ॥३८॥
कर्णघोषे सप्त च लोचनताराऽदर्शने पंच।
दिवसान् भवत्यायुरिति भणितं शास्त्रविद्भिः ॥ ३८ ॥

अर्थ—कानों के भीतर होने वाली ध्वनि को न सुनने पर सात दिन और आंखों के तारा-आंखों के भीतर रहने वाले मसूर के समान प्रकाश को, जो नाक के पास के कोनों को दबाने से प्रकट होता है, न देख सकने पर पांच दिन की आयु अवशेष रहती है, ऐसा शास्त्र मर्मज्ञों का कथन है।

सात दिन की अवशेष आयु को व्यक्त करने वाले अन्य चिन्ह

बद्धं चिअ कर जुअलं न हु लग्गइ संपुडेण निब्भंतं।
विहडेइ अइसएणं सत्त दिणाइं उ सो जियइ ॥३९॥
बद्धमेव करयुगलं न खलु लगति सम्पुटेन निर्भ्रान्तम्।
विघटयत्यतिशयेन सप्त दिनानि तु स जीवति ॥ ३९ ॥

अर्थ—यदि हाथ हाथ हथेली को मोड़ने पर इस प्रकार न सट सके, जिससे चुल्लू बन जाय और एक बार ऐसा करने पर अलग करने में देर लगे तो सात दिन की आयु* समझनी चाहिये।

विवेचन—ग्रन्थान्तरों में शारीरिक मरण चिन्हों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि जिस व्यक्ति को अपने पैर नहीं दीखें वह तीन वर्ष, जांघ नहीं दीखे तो दो वर्ष, जानु-घुटना न दीखे तो एक वर्ष, उरु-वक्षस्थल नहीं दीखलाई पडे तो दश महीने, कटि प्रदेश नहीं दीख पडे तो सात महीने, कुक्षि-कोख नहीं दिखलाई पडे तो चार महीने, गर्दन नहीं दीख पडे तो एक महीने, हाथ नहीं दिखलाई पड़े तो पन्द्रह दिन, बाहु-भुजा न दिखलाई पड़े तो आठ दिन, अंश-कंधा नहीं दिखलाई पड़े तो तीन दिन एवं नख और दांतों का विकृत हो जाने से दस दिन की आयु शेष समझनी चाहिये। शरीर-शास्त्र के वेत्ताओं का कथन है कि मृत्यु के कई महीने पहले से ही नाक, कान, जीभ और मुंह विकृत हो जाते हैं। इस अवस्था में वे कुछ दिन पहले से ही मृत्यु के सूचक बन जाते हैं।

मरण के अन्य चिन्हों का प्रतिपादन करते हुए एक× स्थान पर लिखा है कि मनुष्य की दृष्टि में भ्रांति होना, आंखों में अन्धेरा आना, आंखों का स्फुरण और आंसुओं का अधिक रूपमें बहना. ललाट पर पसीना आना, जीवन धारक रक्तवाहिनी और रसवाहिनी

---

*तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकम्। समयोगवाहिनो यदा ह्यस्मिन् शरीरे धातवो वैषम्यमापद्यन्ते तदेदं क्लेशं विनाशं वा प्राप्नोति। —च. पृ १२४८

×पादं जंघा स्वजानूरुकटिकुक्षिगलांस्तलं। हस्तबाह्वांसदन्तोऽगं शिरश्च क्रमतो यदा "न पश्येदात्मनच्छायां क्रमात्तिष्ठेकवत्सरं। मासान्दश तथा सप्त-चतुरेकान्सजीवति" तथा पञ्चाष्टसत्त्रीणि दिनान्येकाधिकान्यपि। जीवेदिति नरो मत्वा त्यजेदात्मपरिग्रहम्॥ —क. पृ. ७१०

*दृग्भ्रांतिस्तिमिरं दृशस्फुरणता स्वेदश्चवक्त्रे भृशं।
स्थैर्यं जीवसिरासु पादकरयोरत्यन्तरोमोद्गमं॥
साक्षाद्भूरिमलप्रवृत्तिरपि तत्तीव्रज्वरः श्वाससं-
रोधश्च प्रभवेन्नरस्य सहसा मृत्यूदसल्लक्षणम्॥—क. पृ. ७११

नाड़ियों में स्थिरता उत्पन्न होना, हाथ और पैरों पर अत्यधिक रूप से रोमों का उत्पन्न होना, मल की अधिक प्रवृत्ति होना, १०७ डिग्री से ऊपर ज्वर का होना, श्वास का रुक आना एवं ललाट का अत्यधिक गर्म और अन्य शरीरावयवों का शीतल होना, आदि चिन्ह शीघ्र ही मृत्यु के सूचक बताए गए हैं

इदि रिट्ठगणं भणियं पिण्डत्थं जिणमयणुसारेण ।
णिसुणिज्ज हु सुपयत्थं कहिज्जमाणं समासेण ॥४०॥

इति रिष्टगणं भणितं पिण्डस्थं जिनमतानुसारेण ।
निश्रूयतां खलु सुपदस्थं कथ्यमानं समासेन ॥ ४० ॥

अर्थ—जिनदेव के उपदेशानुसार निर्णीत पिण्डस्थ-शारीरिक रिष्टों का कथन किया गया है। अब संक्षेप में कथित पदस्थ-बाह्य निमित्तों के द्वारा संकेतित रिष्टों का वर्णन किया जाता है।

पदस्थ रिष्ट का लक्षण

ससि-सूर-दीवयाई अरिट्ठरूवेण पिच्छए जं जं ।
तं उ भणिज्जइ रिट्ठं पयत्थरूवं मुणिंदेहिं ॥ ४१ ॥

शशि-सूर्य-दीपकादीनरिष्टरूपेण पश्यति यं यम् ।
तत्तु भण्यते रिष्टं पदार्थरूपं मुनीन्द्रैः ॥ ४१ ॥

अर्थ—यदि कोई अशुभ लक्षण के रूप में चन्द्रमा, सूर्य, दीपक या अन्य किसी वस्तु को देखता है तो ये सब रिष्ट मुनियों के द्वारा पदस्थ—बाह्य वस्तुओं से संबंधित कहलाते हैं।

विवेचन—आकाशीय दिव्य पदार्थों का शुभाशुभ रूप में दर्शन करना, कुत्ते, बिल्ली, कौआ आदि प्राणियों की इष्टानिष्ट सूचक आवाज का सुनना या उनकी अन्य किसी प्रकार की चेष्टाओं को देखना पदस्थ रिष्ट कहा गया है। पदस्थ रिष्ट में मृत्यु की सूचना दो तीन वर्ष पूर्व भी मिल जाती है। आचार्य ने पदस्थ रिष्टों का आगे संक्षेप में बड़ा सुन्दर कथन किया है।

पुनः पिण्डस्थरिष्ट की परिभाषा

णाणाभेऊविभिन्नं तं पि हवे इत्थ विव्वियप्पेण ।
णाणासत्थमएण भणिज्जमाणं निसामेह ॥ ४२ ॥

नानाभेद विभिन्नं तदपि भवेदत्र निर्विकल्पेन ।

नानाशास्त्रमतेन भण्यमाने निशामयत ॥ ४२ ॥

अर्थ—इसमें संदेह नहीं कि अनेक प्रकार की वस्तुओं के द्वारा इसकी पहिचान हो सकती है। नाना शास्त्रों के द्वारा जिनका वर्णन किया गया है उनका यहां कथन किया जाता है, ध्यान से सुनो।

पदस्थ रिष्टज्ञान करने की विधि

पक्खालिऊण देहं सियवत्थवि लेवणो सियाहरणो ।
पुजिजत्ता जिणनाहं अहिमंतिअ णियमुहं पच्छा ॥४३॥

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं कमले२ विमले२ उदरदेवी इटि मिटि पुलिंहिणी स्वाहा ॥

प्रक्षाल्य देहं सितवस्त्रविलेपनः सिताभरणः ।

पूजयित्वा जिननाथमभिमन्त्र्य निजमुखं पश्चात् ॥ ४३ ॥

अर्थ—स्नान कर, श्वेत वस्त्र धारण कर सुगंधित द्रव्य तथा आभूषणों से अपने को सजाकर एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजाकर "ओं ह्रीं णमो अरिहंताणं कमले २ विमले २ उदरदेवि इटिमिटि पुलिंहिणी स्वाहा।" इस मंत्र का

इअ मंतेण मंतिय णियवयणं एयवीस वाराओ ।
पुण जोएउ पयत्थं रिट्ठं जिणसासणे भणियं ॥४४॥

इति मन्त्रेण मन्त्रयित्वा निजवदनमेकविंशतिवारम् ।

पुनः पश्यतु पदस्थं रिष्टं जिनशासने भणितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इक्कीसवार उच्चारण कर अपने मुख को पवित्र कर जिन-शास्त्रों में वर्णित पिण्डस्थ-बाह्य वस्तु संबन्धी रिष्टों का दर्शन करना चाहिए।

पिण्डस्थ रिष्टों द्वारा एक वर्ष की आयु का निश्चय

एक्को वि जए चंदो बहुविहरूवेहिं जोणियच्छेइ ।
छिद्दोह तस्स आऊ इगवरिसं होइ निब्भन्तं ॥४५॥

एकोऽपि जगति चन्द्रो बहुविधरूपैर्यः पश्यति।
छिद्रौघं तस्यायुरेकवर्षं भवति निर्भ्रान्तं ॥ ४५ ॥

अर्थ–जो कोई संसार में एक× चन्द्रमा को नाना रूपों में तथा छिद्रों से परिपूर्ण देखता है, उसकी आयु निश्चित रूप से एक वर्ष की होती है।

विवेचन—ग्रन्थान्तरों में एक वर्ष की आयु के द्योतक रिष्टों का कथन करते हुए बताया+ है कि जो व्यक्ति अर्द्ध चन्द्रमा को मण्डलाकार देखता हो और जिसको ध्रुवतारा, अरुंधती तारा, आकाश, चन्द्रकिरण एवं दिन में धूप नहीं दिखलाई पड़े, तो वह एक वर्ष जीवित रहता है।

जो* व्यक्ति सप्तर्षि ताराओं का तथा इनके पास में रहने वाले अरुंधती तारा का दर्शन नहीं करता है तथा जिसके द्वारा बलि दिये अन्न को कौआ ग्रहण नहीं करता है, वह एक वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता।

प्रकृति मनुष्य को प्रत्येक इष्टनिष्ट की सूचना देती है। जो सुज्ञ व्यक्ति हैं वे प्रकृति के संकेत को समझ कर सजग हो जाते हैं और जो विषय वासना ग्रस्त हैं, वे उन प्रकृति के रहस्यमय संकेतों को समझने में असमर्थ रहते हैं। ज्योतिष शास्त्र में प्रकृति के अतिरिक्त साधारण प्राणी जैसे कुत्ता, बिल्ली, नेवला, सांप, कबूतर, चींटी कौआ एवं गाय, बैल आदि भी संकेतों के प्रवर्तक माने गये हैं। आकाशीय दिव्य पदार्थों के अतिरिक्त भूमि पर घटित

× एक व दो व तिण्हि व रवि-ससिबिम्बेसु तारएसु वा।
जो पेच्छति छिड्डाइं आणु तदाऊ वरिसमेक्कं ॥ –सं. रि. गा. १८२

+यदर्द्धचन्द्रेऽपि च मंडलप्रभां ध्रुवं च तारामथवाप्यरुंधतीम्।
मरुत्पथं चन्द्रकरं दिवातपं न चैव पश्येदिह सोऽपि वत्सरात् ॥
–क. पृ.

* सप्तर्षीणां समीपस्थां यो न पश्यत्यरुन्धतीम्।
संवत्सरांते जंतुः स संपश्यति महत् तमः ॥
बलिं बलिभुजो यस्य प्रणीतं नोपभुंजते।
लोकांतरगतः पिण्डं भुंक्ते संवत्सरेण सः ॥ –च. पृ. १४०७

होने वाली प्रकृति की लीला भी अरिष्ट द्योतक है। आचार्य ने उपर्युक्त गाथा में चन्द्रमा के विकृत रूप दर्शन को एक वर्ष पूर्व से ही मृत्यु सूचक बताया है। संहिता ग्रंथों में चन्द्रमा का लाल आभायुक्त दर्शन एवं उसका ग्रहण के अभाव में भी ग्रहण जैसे रूप का दर्शन करना एक वर्ष पूर्व से ही मृत्यु की सूचना का कारण माना है।

तह सूरस्स* य बिंबं णिएइ छिद्दं अणेयरूवेहिं ।
तस्स भणिज्जइ आऊ वरिसेगं सत्थइत्तेहिं ॥४६॥

तथा सूर्यस्य च बिम्बं पश्यति छिद्रमनेकरूपैः ।
तस्य भणयत आयुर्वर्षैकं शास्त्रविद्भिः ॥ ४६ ॥

अर्थ—निमित्त शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों का कथन है कि जो व्यक्ति सूर्य बिम्ब को छिद्रपूर्ण और अनेक रूपों में देखता है, वह एक वर्ष जीवित रहता है।

---

*तौ यत्र विहीयेते चन्द्रमा इवादित्यो दृश्यते न रश्मयः प्रादुर्भवन्ति लोहिनी द्यौर्भवति यथा मञ्जिष्ठा व्यस्तः पायुः काककुलायगन्धिकमस्य शिरो वायति संपरेतोऽस्यात्मा न चिरमिव जीविष्यति विद्यात् । स यत्करणीयं मन्येत तत्कुर्वीत यदन्ति यच्च दूरक इति मन्त्रं जपेदादित्प्रयत्नस्य रेतस इत्येका यत्र ब्रह्मा पद्मानेति खलु-द्वयं तमसस्परीत्येका । अथापि यत्र छिद्र इवादित्यो दृश्यते रथनाभिरिवाभिख्यायेत छिद्रां वा छायां पश्येत्तदप्येवमेव विद्यात् ॥ —अ आ पृ. १३५

इन्दुमुष्णं रविं शीतं छिद्रं भूमौ रवावपि ।
जिह्वां श्यामां मुखं कोकनदाभं च यदेक्षते ॥—यो. शा. प. ५ श्लो. १५६
अरुन्धती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥
नासाग्रं भ्रूयुगं जिह्वां मुखं चैव न पश्यति ।
कर्णघोषं न जानाति स गच्छेद्यममन्दिरम् ॥
रात्रौ दाहोऽभितपति दिवा जायते शीतलत्वं,
कण्ठे श्लेष्मा विरसवदनं कुंकुमाकारनेत्रे ।
जिह्वा कृष्णा वहति च सदा स्थूल सूक्ष्मा च नाडी,
तद्भैषज्यं स्मरणमधुना रामरामेति नाम्नः ॥ —यो. र. पृ. ७
अरुन्धतीं ध्रुवं चैव नभो मंदाकिनीं तथा ।
स्वनासाग्रं च चन्द्राङ्कमायुर्हीनो न पश्यति ॥ —धर्म सि. पृ. ३८८

विवेचन—प्राकृतिक ज्योतिष शास्त्र में प्रकृति के चिन्हों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि प्रधान रूप से सूर्य और चन्द्र ये दो ग्रह हैं, इनकी गति और स्थिति का तो प्राणियों के जीवन पर प्रभाव पड़ता ही है पर इनके रूप दर्शन और आकार दर्शन का भी प्रभाव पड़ता है। समस्त प्राणी प्रति दिन इनके अवलोकन से अपने कर्त्तव्य मार्ग को ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक प्राणी के शरीर की बनावट सौर जगत के समान है तथा उसके संचालन के नियम भी सौर जगत के नियमों से मिलते हैं। इसलिए व्यक्ति इनके दर्शन से अपने शरीर की स्थिति के सम्बन्ध में पूर्णज्ञान प्राप्त कर सकता है। तात्पर्य यह है शरीर की आभ्यन्तरिक रचना के विकृत होने पर बाह्य सौर जगत की रचना भी विकृत पड़ती है। वर्तमान में योग शक्ति के न होने के कारण साधारण व्यक्ति आन्तरिक सौर जगत की रचना की विकृत को नहीं देख पाते हैं इसलिए उन्हें बाह्य सौर जगत को विकार युक्त देखने पर आन्तरिक सौर जगत की विकृति का अनुमान कर लेना चाहिए।

निमित्त शास्त्र के धुरन्धर आचार्यों ने अपने दिव्यज्ञान द्वारा आन्तरिक सौर जगत के स्वरूप को पूर्ण ज्ञात कर बाह्य सौर जगत के साथ समानता दिखलाई है। इसीलिए तारा, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र आदि के विकृत दर्शन को मृत्यु का सूचक कहा है।

रवि—चंदं तह तारा विच्छाया बहुविहा य छिद्दा य।
जो णियइ तस्स भणियं वरिसेगं जीवियं इत्थ ॥४७॥

रवि-चन्द्रौ तथा तारा विच्छायान् बहुविधांश्च छिद्रांश्च ।
यः पश्यति तस्य भणितं वर्षैकं जीवितमत्र ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो सूर्य, चन्द्र एवं ताराओं को कान्तिस्वरूप परिवर्तन करते हुए एवं नाना प्रकार से छिद्र पूर्ण देखता है, उसका जीवन एक वर्ष का कहा गया है।

विवेचन—सूर्य, चन्द्र और ताराओं का कान्ति स्वरूप आभ्यन्तरिक सौर जगत के स्वरूप का सांकेतिक है. उसमें परिवर्तन देखने से आन्तरिक शरीर की रचना में रासयनिक विश्लेषण का संकेत प्राप्त होता है। मनुष्य के बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों ही

व्यक्तियों का ज्योतिः—तेजस शरीर के कारण सौर जगत से पर्याप्त सम्बन्ध है। सौर जगत के सात ग्रह मनुष्य के बाह्य आभ्यन्तरिक व्यक्तित्व के विचार, अनुभव किया तथा अन्तःकरण के प्रतीक माने गये आचार्य ने इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर सूर्य, चन्द्र और ताराओं की कांति के परिवर्तनशील दर्शन को मृत्यु का सूचक कहा है। वास्तव में सौर जगत से हमें प्रत्यक्ष रूप में प्रकाश, तेज आदि जीवन शक्ति धारक वस्तुएँ ता मिलती ही हैं, पर इनसे अनेक जीवन के रहस्यों का पता भी लग जाता है। यदि व्यक्ति इन जीवन के रहस्यों का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर ले तो वह अपने भावी जीवन को सुख मय बना सकता है। कुपथ में घसीटने वाले मिथ्याचार और वासनाओं का त्याग कर अपने जीवन को दिव्य साँचे में ढाल सकता है। निमित्त शास्त्र प्रकृति के इन रहस्यमयी ज्ञान-विज्ञानों पर प्रकाश डालता है और पहले से ही प्रकृति परिवर्तन द्वारा कर्त्तव्य की सूचना दे देता है।

पदस्थ रिष्टों द्वारा निकट मृत्यु का ज्ञान

दीवयसिहा हु एगा अणेगरूवा हु जो णियच्छेइ।
तस्स लहु होइ मरणं किं बहुणा इह पलावेण ॥४८॥

दीपकशिखां खल्वेकामनेकरूपां खलु यः पश्यति।
तस्य लघु भवति मरणं किं बहुनेह प्रलापेन ॥४८॥

अर्थ—जो व्यक्ति दीपक के प्रकाश की लौ को अनेक रूपमें देखता है, वह तुरन्त मर जाता है। इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

उत्तमदुमं हि पिच्छइ हिमदड्ढमिवाणलेण वा णूणं।
लहु होइ तस्स मरणं पयंपियं मुणिवरिंदेहिं ॥४९॥

उत्तमद्रुमं हि पश्यति हिमदग्धमिवानलेन वा नूनम्।
लघु भवति तस्य मरणं प्रजल्पितं मुनिवरेन्द्रैः ॥४९॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनियों का कथन है कि जो व्यक्ति अत्यधिक उन्नतवृक्ष-ताड़ वृक्ष को अग्नि या शीत से जलते हुए देखे तो उसकी मृत्यु निकट समय में होती है।

विवेचन—ग्रन्थान्तरों में पदस्थ रिष्टों द्वारा निकट मृत्यु का कथन करते हुए बताया गया है कि जो व्यक्ति* वृक्षों की बड़ी सघन पंक्ति को दूर से छिन्न-भिन्न और विलग देखे, जिसके पैर का चिन्ह कीचड़ या धूल में खंडित दिखलाई पड़े, जिसका कफ जल में फेंकने से डूब जाय, जिसके मुख में तर्जनी, मध्यमा और अनामिका ये तीनों अंगुलियां साथ जोड़कर न समाय, स्नान करने पर जिसके मस्तक से धूम शिखा निकले और जिसके मस्तक पर खाली मुँह वाला पक्षी बैठे वह शीघ्र मरण को प्राप्त होता है। एक स्थान पर पैरों की अंगुलियों के नखों की आभा का नील वर्ण मय होना तथा तद्वत् चन्द्र बिम्ब का अकारण दर्शन करना अरिष्ट सूचक बताया है।

पदस्थ रिष्टों द्वारा तीन मास की आयु के चिन्ह

×सत्त दिणाइँ णियच्छइ रवि-ससि-ताराण जो सुहं बिंबं।
भममाणं तस्साऊ होइ तिमासं न सन्देहः ॥५०॥

सप्त दिनानि पश्यति रवि-शशि-ताराणां यः शुभं बिम्बम्।
भ्रमन्तं तस्यायुर्भवति त्रीन् मासान् न सन्देहः ॥५०॥

---

*छायां विधोर्न ध्रुवमृक्षमालामालोकयेयो न च मात्रचक्रम्।
खंडम्पदं यस्य च कर्दमादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुम्बी॥
उरः पुरः शुष्यति यस्य चार्द्रं न मान्ति तिस्रोऽङ्गुलयश्च वक्त्रे।
स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रिक्तमुखः खगो वा॥
नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वा बुभुक्षोपि धृतिं विधत्ते।
निश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीः कृशः स्थवीयानपि योऽप्यकस्मात्॥
—वि. वा. वृ. पृ. ६७

×विच्छाए पेच्छंतो रवि-ससि-तारागणो जियइ वरिसं।
अह सव्वहा न पच्छेति अच्छइ छम्मासमेव जइ॥
तह रवि-ससिबिंबाणं भूमहणं पास इ अकम्हा।
जो निस्संसयं वियाणसु बारस दिवसाणि तस्साउ॥
जो पुण दो रविबिम्बे पासइ नासइ स मासतियगेण।
रविबिम्बमंतरच्छिद्दे पेच्छति भमिरं मइ तहुंना॥—सं. रे. गा. १६३-१६५

अर्थ—यदि सात दिनों तक रवि, शशि एवं ताराओं के बिम्बों को नाचता हुआ देखे तो निस्संदेह उसका जीवन केवल तीन मास का होता है।

विवेचन—ग्रंथान्तरों में इसी प्रकार के अन्य रिष्टों का कथन करते हुए बताया गया है कि जो तीन दिन तक सच्छिद्र चन्द्रमा को आकाश मण्डल में देखता है तथा रवि मण्डल का रात्रि में दर्शन करता है और जिसे उल्का एवं इन्द्र धनुष का रात्रिमें दर्शन होता है वह तीन महीने संसार में जीवित रहता है। यदि आकाश से टूटते हुए तारे रात में दिखलाई पड़ें तथा रात को आकाश में एक विचित्र कम्पन मालूम पड़े तो तीन महीने की अवशिष्ट आयु समझनी चाहिये। रात को अकारण चन्द्रमण्डल म्लान और दिन को अकारण ही रवि मण्डल म्लान दिखलाई पड़े तो तीन मास की शेष आयु जाननी चाहिये। यदि दिन में सहसा रवि मण्डल कृष्ण वर्ण और रात में इसी प्रकार चन्द्र मण्डल रक्त वर्ण दिखलाई पड़े तो तीनमास की आयु समझनी चाहिये। चन्द्रमा और रवि से रिष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिये स्नान आदि करके पहले कहे मंत्र का २१ बार जाप करके तब रिष्ट दर्शन करना चाहिये। साधारणतया व्यक्ति में रिष्ट दर्शन की योग्यता नहीं रहती है जिससे वह अपने शुभाशुभ, इष्टानिष्ट को ज्ञात करने में असमर्थ रहता है जिन व्यक्तियों में योग शक्ति होती है या जिनकी आत्मा विशेष पवित्र होती है वे चन्द्र और रवि के दर्शन द्वारा सहज में आयु ज्ञात कर लेते हैं। इसी कारण आचार्य ने इस प्रस्तुत प्रकरण के पूर्व में ही रिष्ट दर्शन की विधि बतलाई है।

ज्योतिष शास्त्र में रवि और चन्द्रमा ही प्रधान रूप से समस्त सुख दुखों को अभिव्यक्त करने वाले माने गये हैं। उनकी गति, स्थिति, उच्च, नीच, वक्री, मार्गी आदि के द्वारा तो आयु का निर्णय किया ही जाता है, पर इनके अवलोकन से भी आयु का निश्चय किया जा सकता है। आचार्य ने प्रस्तुत गाथा में सूर्य-चन्द्र अवलोकन के ही कुछ नियम बतलाये हैं।

सूर्य, चन्द्र, दर्शन द्वारा चार दिन एवं घटिका शेष आयु के ज्ञात करने के चिन्ह

रवि-चंदाणं पिच्छइ चऊसु विदिसासु बिंबाइं।
चउघाडिआ चउदिणाइँ चउदिसँ तह य चउछिद्दं ॥५१॥

रवि-चन्द्रयोः पश्यति चतसृषु विदिक्षु चत्वारि बिम्बानि।
चतस्रो घटिकाश्चत्वारि दिनानि चतसृषु दिक्षु तथा च चत्वारि छिद्राणि ॥५१॥

अर्थ—जो सूर्य या चन्द्रमा के चार बिम्बों को चारों विदिशाओं के कोणों पर देखे वह चार घटिका—एक घंटा छत्तीस मिनिट जीवित रहेगा और जो दोनों के चार टुकड़े चारों दिशाओं में देखे वह चार दिन जीवित रहेगा।

विवेचन—इसी प्रकार के अरिष्टों का वर्णन अन्यत्र भी लिखा मिलता है कि दिशाओं में सूर्य के अनेक सछिद्र टुकड़े दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति चार मास या चार पक्ष में मृत्यु को प्राप्त होता है चन्द्रमा के आठ टुकड़े-चार चारों दिशाओं में और चार विदिशा के चारों कोणों में दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति आठ दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है।

इन रिष्टों के अतिरिक्त जो ×मनुष्य सदा दक्षिण दिशा के आकाश में मेघ का अस्तित्व न होने पर भी बिजली की प्रभा के साथ प्रचण्ड और चञ्चल आकाश को देखता है वह मनुष्य चार महीने में मरण को प्राप्त हो जाता है।

छः मास, दो मास, एक मास और पन्द्रह दिन के आयु-द्योतक-चिन्ह

मज्झम्मि तहा छिड्डं मासेक्कं छत्ति तह य जुगलं च।
जह कमसो सो जीवइ दह दिअहाइं पव्वोदव्वा (य पव्वं वा) ॥५२॥

मध्ये तथा छिद्रं मासैकं षडिनि तथा च युगलं च।
यथाक्रमशः स जीवति दश दिवसांश्च पर्व वा ॥५२॥

×यदभ्रहीनेऽपि वियत्यनूनसद्विलोलविद्युत्प्रभया प्रपश्यति।
यमस्य दिग्भागगतं निरंतरं प्रयात्यसौ मासचतुष्टयाद्दिवम्॥

—क पृ. ७०८

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति सूर्य और चन्द्र के चारों दिशा के टुकड़ों में छिद्र दर्शन करे तो वह क्रमशः एक मास, छः मास, दो मास और दस या पन्द्रह दिन जीवित रहता है। पूर्व दिशा में सूर्य या चन्द्रमा के टुकड़े में छिद्र देखने से एक मास आयु; पश्चिम दिशा में सूर्य या चन्द्रमा के टुकड़े में छिद्र देखने से छः मास आयु, उत्तर दिशा में सूर्य या चन्द्रमा के टुकड़े में छिद्र दर्शन करने से दस या पन्द्रह दिन की आयु समझनी चाहिए।

विवेचन—शरीर शास्त्र के विशेषज्ञों ने मन की रचना का स्वरूप बतलाते हुए मनोवृत्ति के प्रमाणवृत्ति, विपर्ययवृत्ति, निद्रावृत्ति और स्मृतिवृत्ति ये पांच भेद बतलाये हैं। जागरूक प्राणियों में प्राण-वृत्ति, विकल्पवृत्ति और स्मृतिवृत्ति ये तीन प्रधान रूपसे पाई जाती हैं निद्रावृत्ति और विपर्ययवृत्ति का सद्भाव रहता तो सभी संज्ञी-मन सहित प्राणियोंमेंहै, पर इसका प्रयोग प्रमादी जीवों के होता है। जो जीव विशेष ज्ञानवान हैं या चरित्र शुद्धि के कारण जिनकी आत्मा पवित्र हो गई है, वे मन के धैर्य, उपपत्ति, स्मरण, भ्रांन्ति, कल्पना, मनोरथ वृत्ति, क्षमा, सत्-असत् एवं स्थिरता इन नौ गुणों में से उपपत्ति और स्मरण गुण का विशेष रूप से प्रयोग करते हैं। इस गुण के प्रयोग में इतना वैशिष्ट्य रहता है कि वह जीव मृत्यु के पूर्व से ही बाह्य निमित्तों को देखने लगता है। जिस व्यक्ति के मन का उपपत्ति गुण जितना प्रकट रूप में रहेगा, वह उतने ही स्पष्ट रूप में रिष्टों का दर्शन करेगा। जैन आयुर्वेद शास्त्र के ग्रहचिकित्सा और कालारिष्ट प्रकरणों में स्पष्ट रूप से उपपत्ति गुण द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के टुकड़ों के दर्शन का उल्लेख है। सर्व साधारण को मृत्यु के पूर्व चारों दिशाओं में चन्द्रमा या सूर्य के सछिद्र टुकड़े नहीं दिखलाई पड़ते हैं। किन्तु पूर्व जन्म के शुभोदय या इस भव के शुभकार्यों द्वारा जिन व्यक्तियों में प्रमाण मनोवृत्ति वर्तमान है और जो उपपत्ति गुण का प्रयोग करना जानते हैं, वे मृत्यु के कई वर्ष पहले से ही रिष्टों का दर्शन करने लगते हैं।

शारीरिक शैथिल्य से उत्पन्न होने वाले रिष्टों का दर्शन तो सभी प्राणी करते हैं, क्योंकि ये रिष्ट आँख, नाक, कान मुँह, नाभि मलद्वार मूत्रेन्द्रिय और हाथ या पैर की बड़ी अगुलियों द्वारा प्रकट

होते हैं। शरीर शास्त्र में इसका प्रधान कारण यह बताया गया है कि मनुष्य के प्राण इन्हीं स्थानों से निकलते हैं। इसलिये इन्हीं स्थानों में रिष्ट प्रकट होते हैं। लेकिन जिन रिष्टों का सम्बन्ध बाह्य पदार्थों से है वे मनकी सहायता से इंद्रियों द्वारा अवगत किये जाते हैं। जिन व्यक्तियों की मानसिक शक्ति विश्लेषणात्मक नहीं होगी, वे बाह्य रिष्टों का दर्शन नहीं कर सकते हैं। बाह्य रिष्टों के मन के सम्बन्ध के कारण आयुर्वेद के कालारिष्ट प्रकरण में प्रधान दो भेद बताये हैं। एक वे रिष्ट हैं जिन्हें व्यक्ति मनकी विकल्पवृत्ति द्वारा विश्लेषण कर अवगत करता है और दूसरे वे हैं जो पहले प्रमाण वृत्ति और स्मृतिवृत्ति की प्रयोग शाला में प्रविष्ट हो रासायनिक क्रिया द्वारा इन्द्रिय ग्राह्य होते हैं। ये मन की क्रियाएं इतनी तेजी से होती हैं कि प्राणी को अनुभव नहीं हो पाता है।

आचार्य ने प्रस्तुत गाथा में जिन मरणचिन्हों का उल्लेख किया है वे दूसरी कोटि के हैं।

बारह दिन की आयु द्योतक रिष्ट

बहुछिड्डं निवडंतं रवि-ससि-बिंबं निअच्छए जो हु।
भूमीए तस्साऊ बारस दियहाइ णिद्दिट्ठो ॥५३॥

बहुछिद्रं निपतन्तं रवि-शशिबिम्बं पश्यति यः खलु।
भूम्यां तस्यायुर्द्वादश दिवसान्निर्दिष्टम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति रवि और चन्द्रमा के बिम्बों को अनेक छिद्रों से पूर्ण या गिरते हुए देखे तो उसकी आयु पृथ्वी पर १२ दिन की कही गई है।

विवेचन—इसी प्रकार के अन्य रिष्टों का वर्णन अन्यत्र भी मिलता है। संवेगरंगशाला× नामक ग्रन्थ में बताया गया है कि

×तह रवि-ससि बिंबाणं भूपडणं पासे ड अब्भम्हा।
जो निस्संसयं वियाणसु बारस दिवसाणि तस्याउ ॥
जो पुण दो रविबिम्बे पासइ नासइ स मासतियगेण।
रविबिंबमंतरिच्छे पेच्छति भमिरं अह लहुं ता ॥
अंजणपुंजयगासं बिंबं मयलंछणस्स रविणो य।
जो पेच्छइ सो गच्छइ जमाणणं बारसदिणंतो ॥
—सं रं. गा. १६४, १६५, १६६

जो व्यक्ति सूर्य बिम्ब में काले चिन्हों के समुदाय दर्शन करे तथा जिसे सूर्य बिम्ब में चन्द्र बिम्ब के समान कलंक दिखलाई पड़े वह १२ दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अद्भुतसागर में इसी प्रकार के मरण-चिन्हों का कथन करते हुए बताया है कि जिसे ताराओं में नीले धब्बे दिखलाई पड़े तथा सूर्य बिम्ब नाचता हुआ पृथ्वी पर गिरता दृष्टिगोचर हो वह १२ दिन जीवित रहता है। अद्भुततरंगिणी में १२ दिन के रिष्टों का निरूपण करते हुए लिखा है कि जिस व्यक्ति को इन्द्र धनुष टूटता सा दिखलाई पड़े और शुक्र ग्रह का तेज फीका दिखलाई पड़े तथा अरुन्धती तारा काला और नील वर्ण का दिखलाई पड़े, वह इस पृथ्वी पर १२ दिन जीवित रहता है।

आयुर्वेद में इसी प्रकार+ १२ दिन के मरण चिन्हों का निरूपण करते हुए बताया है कि जब मनुष्य अकारण ही अपने शरीर में मुर्दे की गन्ध अनुभव करे, अकारण ही शरीर में पीड़ा बतलाता हो, जाग्रते हुए भी स्वप्न युक्त-मनुष्य के समान दिखलाई पड़ता हो, अपने बालों को विपरीत रूपमें-कुटिल केशों को सरल रूपमें और सरल केशों को कुटिल रूप में, काले बालों को सफेद रूप में और सफेद बालों को काले रूप में देखता हो, तो उस समय उसकी आयु १२ दिन की समझनी चाहिये।

चार दिन की अवशेष आयु के रिष्ट

ताराओ रवि-चंदं नीलं पिच्छेइ जो हु तस्साऊ।
दियहचउक्कं दिट्ठो इय भणिअं मुणिवरिंदेहि ॥५४॥

+ यदा शरीरं शवगन्धतां वदेदकारणादेव वदन्ति वेदना।
प्रबुद्ध वा स्वप्नतयैव यो नरः स जीवति द्वादशरात्रमेव ॥
—क. पृ. ७०६

व्याकृतानि विवर्णानि विसंख्योपगतानि च।
विनिमित्तानि पश्यन्ति रूपाण्यायुःक्षये नराः ॥
यश्च पश्यत्यदृश्यान्वै दृश्यान्यश्च न पश्यति ॥ इत्यादि,
—च. सं. अ. ४, श्लो. १४-२०

तारा रवि-चन्द्रौ नीलौ पश्यति यः खलु तस्यायुः ।
दिवसचतुष्कं दिष्टमिति भणितं मुनिवरेन्द्रैः ॥५४॥

अर्थ—यदि सूर्य, चन्द्रमा और तारा बिम्ब नीले दिखलाई पड़ें तो मुनियों के द्वारा उसका जीवन चार दिन का कहा गया है।

छः दिन की अवशेष आयु के रिष्ट

धूमायंतं पिच्छइ रवि-ससि बिंबं च अहव पजलंतं ।
सो छह दिणाइ जीवइ जल-रुहिरं चिऊ पमुच्चंतं ॥५५॥

धूमायन्तं पश्यति रवि-शशिबिम्बं चाथवा प्रज्वलन्तम् ।
स षड्दिनानि जीवति जल-रुधिर एव प्रमुञ्चन्तम् ॥५५॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति सूर्य और चन्द्र बिम्ब में से धुँआ निकलता हुआ देखे, सूर्य और चन्द्र बिम्ब को जलते हुए देखे अथवा सूर्य और चन्द्र बिम्ब में से जल या रूप निकलते हुए देखे तो वह छः दिन जीवित रहता है।

छः मास की आयु द्योतक पदस्थ रिष्ट

चंद (ससि) सूराण (णं) पिच्छइ कज्जलरेह व्व मज्झदेसंमि ।
सो जीवइ छम्मासं सिट्ठं सत्थाणुसारेण ॥ ५६ ॥

शशिसूर्ययोः पश्यति कज्जलरेखामिव मध्येदेशे ।
स जीवति षण्मासान्निर्दिष्टं शास्त्रानुसारेण ॥५६॥

अर्थ—प्राचीन शास्त्रों में बताया गया है कि जिसे सूर्य और चन्द्रमा के मध्य भाग में काले रंग या सुरमई रंग की रेखा दिखलाई पड़े वह छः मास जीवित रहता है।

विवेचन—इसी भाव के रिष्टों के समान अन्य ग्रन्थों में रिष्टों का निरूपण करते हुए बताया है कि चन्द्र बिम्ब में लाल रंग के धब्बे और सूर्य बिम्ब में काले रंग के धब्बे दिखलाई पड़ें तो वह व्यक्ति छः महीने के भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। एक स्थान पर सूर्य बिम्ब को लोहित वर्ण और चन्द्रबिम्ब को हरित वर्ण का दिखलाई पड़ना भी रिष्ट बताया है, इस रिष्ट दर्शन से छः मास या नौ मास के भीतर मृत्यु का होना बतलाया गया है।

भिन्नं सरेहि पिच्छइ रवि-ससि बिंबं च अहव खंडं च।
तस्स छम्मासं आऊ इअ सिट्ठं पुव्वपुरिसेहिं ॥५७॥

भिन्नं शरैः पश्यति रवि-शशि बिम्बं चाथवा खण्डं च।
तस्य षण्मासानायुरिति शिष्टं पूर्वपुरुषैः ॥ ५७ ॥

अर्थ--पूर्वाचार्यों का कथन है कि जो व्यक्ति सूर्य या चन्द्रमा के बिम्ब को बाणों से विद्ध देखे या उनका कोई अंश देखे तो वह छह महीने जीवित रहता है-उसकी छः महीने की आयु शेष रहती है।

विवेचन—ज्योतिष शास्त्र में सूर्य दर्शन और चन्द्र दर्शन के अन्य रिष्टों का कथन करते हुए बतलाया है कि जो ×व्यक्ति सूर्य को किरण रहित देखता है तथा चन्द्रमा की किरणों का भी दर्शन नहीं करता है, वह छः महीने जीवित रहता है। जिन्हें आकाश *मण्डल का सम्यक परिचय है, वे यदि चन्द्रमा को मंगल और गुरु के मध्य में देखें तथा आज्वल्यमान शुक्र ग्रह गुरु के सामानान्तर दिखलाई पडे और मीन राशि का स्थिति चञ्चल मालूम हो तो छः मास की शेष आयु समझनी चाहिए।

सूर्य रोहिणी नक्षत्र के पास उस समय दिखलाई पड़े जिस समय उसकी स्थिति आश्लेषा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में हो और चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में रहते हुए भी मघा में दिखलाई पडे तो पांच मास की आयु अवशेष समझनी चाहिए। यदि चन्द्रमा सच्छिद्र सूर्य मण्डल के चारों ओर घूमता हुआ दृष्टिगोचर हो और सूर्य तीरों के द्वारा बेधा गया सा दिखलाई पड़े तो उस व्यक्ति की तीन महीने से लेकर छः मास के बीच में मृत्यु होती है। 'त्रैलोक्यप्रदीप, में ग्रह स्थिति द्वारा सूर्य और चन्द्र के रिष्टों का निरूपण करते हुए बताया है कि जिस समय व्यक्ति की दृष्टि लम्बरूप में पृथ्वी पर

×पश्येद्रश्मि विनिर्मुक्तं सूर्यमिन्दुमलांछनम्। तारामंजनकल्पां तु शुष्के वाऽप्योष्ठतालुके "भूमिच्छिद्रं रविच्छिद्रं अकस्माद्यः प्रपश्यति। यस्यैतल्लक्षणं तस्य षण्मासान् मरणम् दिशेत् ॥ अ. सा. पृ. ५२१

*अ. तं. पृ. ४४--४७ तथा सं. र अरिष्टद्वार प्र.

नहीं पड़े और चन्द्रमा के ऊपर सीधी दृष्टि रेखा रूप में नहीं पड़े उस समय रिष्ट योग होता है। इस योग से तीन महीने के भीतर मृत्यु होती है। जैन निमित्त शास्त्र में सूर्य का आयाताकार में दर्शन होना और चन्द्रमा का नाना अनिश्चित आकारों में दिखलाई पड़ना छः महीने से पूर्व प्रकट होने वाले मरण चिन्हों में परिगणित किया गया है।

निकट मरण द्योतक चिन्ह

पभणेइ निसा दिग्रहं दिग्रहं रयणी हु जो पयंपेइ।
तस्स लहुहोइ मरणं किं बहुणा इय वियप्पेहिं ॥५८॥

प्रभवति निशां दिवसं दिवसं रजनीं खलु यः प्रजल्पति।
तस्य लघु भवति मरणं किं बहुनेति विकल्पैः ॥ ५८ ॥

अर्थ—यदि किसी व्यक्ति को दिन की रात और रात का दिन दिखलाई पड़े और वह वैसा ही कहे भी तो, उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये, इसमें संदेह करने का स्थान ही कहां है?

विवेचन—शरीर शास्त्र का कथन है कि जब तक मन और इन्द्रियां अपनी अपनी नियत स्थिति में रहती हैं तब तक व्यक्ति का मस्तिष्क समुचित कार्य करता है, लेकिन जिस समय इंद्रियों के संचालित करने वाले परमाणु विघटित होने लगते हैं उस समय मस्तिष्क शक्ति में निर्बलता आ जाती है और व्यक्ति अपने ज्ञान का विकृत रूप देखने लगता है। इस विकृति का विश्लेषण करते हुए मानसिक अवस्था के क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पांच भेद बतलाये हैं। जब तक शरीर और मन स्वस्थ और शुद्ध हैं तब तक व्यक्ति के मन की क्षिप्तावस्था या एकाग्रावस्था रहती है। अभ्यासवश स्वस्थ और सदाचारी व्यक्ति एकाग्रावस्था की पराकाष्ठा को प्राप्त कर निरुद्धावस्था को प्राप्त करता है। साधारण कोटि के जीवों की मूढ़ या क्षिप्तावस्था ही रहती हैं। लेकिन जिस समय मरण निकट आ जाता है उस समय साधारण कोटि के व्यक्ति की इंद्रिय शक्ति के क्षीण हो जाने के कारण विक्षिप्त मानसिक अवस्था प्रकट हो जाती है और व्यक्ति को संसार के पदार्थ

भ्रमरूप में दिखलाई पड़ने लगते हैं। जो व्यक्ति विशेष ज्ञानवान् और चारित्रवान् हैं उन्हें इस प्रकार के भ्रम द्योतक रिष्ट नहीं मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उनकी इन्द्रियों की शक्ति अन्त समय तक यथार्थरूप में वर्तमान रहती है, इसलिये दिन की रात और रात का दिन दिखलाई पड़ना यह रिष्ट सर्वसाधारण जीवों की अपेक्षा से कहा है। और यह रिष्ट इतना प्रबल है कि इसके दिखलाई पड़ते ही दो-चार दिन के भीतर मृत्यु हो जाती है। इसका मुख्य कारण यही है कि मस्तिष्क में केन्द्रीभूत ज्ञान तन्तुओं के विघटित या शिथिल हो जाने पर इस शरीर में आत्मा की स्थिति कायम रहना उपयुक्त नहीं होता है। क्योंकि शरीर मंदिर का सबसे प्रधान और उपयोगी भाग मस्तिष्क ही है, अतः इसके विकृत होने पर इस शरीर की स्थिति संभव नहीं।

आयुर्वेद के शारीर स्थान में शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट और उसकी स्थिति का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि आंख, कान और नाक ये तीन ऐसे अंग हैं जिनके जर्जरित होने पर शरीर-स्थिति का कायम रहना संभव नहीं। रात का दिन और दिन की रात यह स्थिति इन अंगों के जर्जरित होने पर ही दिखलाई पड़ती है। आचार्य ने प्रस्तुत गाथा में इसी तत्व को लेकर एक सुन्दर रिष्ट का निरूपण किया है।

तत्क्षण के मृत्यु चिन्ह

दिव्वसिही पजलन्तो न मुणइ पभणेइ सीयलो एसो।
सो मरइ तंमि काले जइ रक्खइ तियसणाहो वि ५९॥

दिव्यशिखिनं प्रज्वलन्तं न जानाति प्रभणति शीतल एषः
स म्रियते तस्मिन् काले यदि रक्षति त्रिदशनाथोऽपि ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो चमकते हुए सूर्य का अनुभव नहीं करता, बल्कि उलटा उसे ठंडा बतलाता है, वह इन्द्र के द्वारा रक्षा किये जाने पर भी उसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

सात दिन की आयु के द्योतक चिन्ह

कुच्चस्सुवरिम्मि जले दीयंतं दिणतयं च परिसुसइ ।
सो जीवइ सत्तदिणं किण्हे सुक्कम्मि विवरीए ॥ ६० ॥

कूर्चस्योपरि जले दीयमानं दिनत्रयं च परिशुष्यति ।
स जीवति सप्त दिनानि कृष्णे शुक्ले विपरीतम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जिसकी मूंछों पर पानी रखने से तीन दिन के अन्त तक सूख जाता है वह सात दिन जीवित रहता है, यह रिष्ट प्रक्रिया कृष्ण पक्ष की है। शुक्ल पक्ष में इससे विपरीत अर्थात् तीन दिन तक पानी के नहीं सूखने पर सात दिन की आयु समझनी चाहिये।

विवेचन—इस गाथा में 'दिणतयं' के स्थान पर 'दिणंतयं' ऐसा भी पाठान्तर मिलता है। इस पाठान्तर को मान लेने पर इसका अर्थ इस प्रकार होगा कि जिसकी मूंछों पर पानी रखने से सायङ्काल तक सूख जाता है वह सात दिन तक जीवित रहता है, लेकिन यह प्रक्रिया सिर्फ दिन में आयु परीक्षण के लिये है। रात में आयु परीक्षण के लिये इसके विपरीत—मूंछों पर रात के आरंभ से ही पानी रखने पर प्रातःकाल तक न सूखे तो सात दिन की आयु समझनी चाहिये। ऊपर वाले अर्थ की अपेक्षा नीचे वाला यह अर्थ अधिक संगत मालूम पड़ता है। क्योंकि आयु परीक्षण के लिये तीन दिनतक मूंछों पर पानी रखना अस्वाभाविक-सा मालूम पड़ता है। रिष्टों के प्रतिपादक अन्य ग्रन्थों में भी उपर्युक्त आशय के रिष्ट का कथन मिलता है। आयुर्वेद में रोगी की असाध्य अवस्था में इस ढंग से आयु परीक्षा करने की प्रक्रिया बतलाई गई है। वहां नख, लिंग और मूंछों पर पानी रखने का विधान है। एक स्थान पर कृष्ण और शुक्ल पक्ष की अपेक्षा से विभिन्न प्रकार से जल के छींटे देकर उनके सूखने और न सूखने से आयु का निर्णय किया गया है।

भरिऊण तंदुलाणं रज्झइ कूरं (य) अंजली तस्स ।
ऊणो अहि आपुण्णं जइ भत्तो होइ लहु मच्चू ॥ ६१ ॥

भृत्वा तण्डुलानां रध्यते क्रूरं चांजलिं तस्य ।
ऊनोऽधिकपूर्णो यदि भक्तो भवति लघु मृत्युः ॥ ६१ ॥

अर्थ—एक अञ्जली—चाँवल लेकर भात बनाया जाय, यदि पक जाने के अनन्तर भात उस अञ्जली परिणाम से कम या अधिक हो तो उसकी निकट मृत्यु समझनी चाहिए।

भोअण-सयण-गेहे व हड्डं मिल्हंति जस्स रिट्ठाऊ।
धावन्ति हु गहिएणं कुणंति गेहं व लहु मच्चू ॥६२॥

भोजन-शयन-गृहेषु वास्थि मुञ्चन्ति यस्य रिष्टायुः ।
धावन्ति खलु गृहीतेन कुर्वन्ति गेहं वा लघु मृत्युः ॥६२॥

अर्थ—यदि किसी के रसोई घर या शयन गृह में हड्डी रखी हो या हड्डी लेकर कोई भागता हुआ दृष्टि गोचर हो तो वह व्यक्ति या उसके परिवार का कोई अन्य व्यक्ति अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है।

एक मास की आयु अवगत करने के रिष्ट

अहिमंतिऊण सुत्तं चलणं मविऊण तेण संझाए।
पुणरवि पहायमविए ऊणे सुत्तम्मि जियइ मासिक्कं ॥६३॥

अभिमन्त्र्य सूत्रं चरणं मापयित्वा तेन सन्ध्यायाम् ।
पुनरपि प्रभातमापित ऊने सूत्रे जीवति मासैकम् ॥६३॥

अर्थ—मन्त्र ओं ह्रीं णमो अरहंताणं कमले-कमले विमले विमले उदरदेवि इटिमिटि पुलिन्दिनि स्वाहा, से सूत को मंत्रित कर उससे सायङ्काल में अपने सिर से लेकर पैर तक नापा जाय और प्रातःकाल पुनः उसी सूत से सिर से पैर तक नापा जाय, यदि प्रातःकाल नापने पर सूत छोटा हो तो वह व्यक्ति एक मास जीवित रहता है।

विवेचन—निमित्त शास्त्र में शेष आयु के परीक्षण के लिए अनेक नियम बतलाये हैं। जो व्यक्ति स्वस्थ हो उसकी आयु की परीक्षा भी निम्न लिखित नियमों द्वारा की जा सकती है। मंगलवार या

शनिवार को तीन पाव जौ लेकर जब व्यक्ति सोने लगे उस समय उपर्युक्त मंत्र का १०१ बार जप करके उस जौ को ७ बार उस व्यक्ति के ऊपर घुमावे और उसे २१ बार मंत्रित किये जल में भीगने के लिए छोड़ दे। प्रातःकाल यदि जौ का रंग पीला हो तो दो मासकी आयु, हरा हो तो एकमास की आयु, काला हो तो १५ दिन की आयु और लाल हो तो ७ दिन की आयु समझनी चाहिए। यदि जौ का रंग जैसे का तैसा रहे तो अकाल मृत्यु का अभाव समझना चाहिए।

रोगी की आयु परीक्षा के नियमों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि जो व्यक्ति आकाश में नाचते हुए तारों को टूटते हुए देखे, मेघ रहित निरभ्र आकाश में मेघों का दर्शन करे, शून्य दिशाओं में चमकती हुई तलवारों का दर्शन करे, जिसे अपने आसपास भयानक वातावरण दिखलाई पड़े, सुगन्धित पदार्थ दुर्गन्धित मालूम पड़े, पृथ्वी डोलती हुई मालूम हो और शैय्या, आसन तथा अपने बालों में अग्नि लगी हुई दिखलाई पड़े अथवा सिर्फ धुंआ ही निकलता हुआ दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है। अद्भुतसागर में विभिन्न प्रकार के अद्भुतों का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि प्रकृति का विकृत होना जिस रोगी को मालूम पड़े वह अधिक दिन जीवित नहीं रहता है।

निकट मृत्यु द्योतक अन्य चिन्ह

असिय-सिय-रत्त-पीया दसणा अन्नस्स अप्पणो अहवा।
पेच्छइ दप्पणयंमि य लहुमरणं तस्स निद्दिट्ठं ॥६४॥

असित-सित-रक्त-पीतान् दशनानन्यस्यात्मनोऽथवा ।
पश्यति दर्पणे च लघुमरणं तस्य निर्दिष्टम् ॥६४॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति दर्पण में अपने या अन्य व्यक्ति के दांतों को काला, सफेद, लाल या पीले रंग का देखे तो उसकी निकट मृत्यु समझनी चाहिए।

विवेचन—दांतों के रंग द्वारा अन्यत्र *आयु परीक्षा करने के नियमों का वर्णन करते हुए बताया है कि दांत खुरदरे और भयंकर आकार के दिखलाई पड़ें और जीभ सफेद भारी या काले रंग की दिखलाई पड़े अथवा जीभ में कांटे मालूम हों तो वह व्यक्ति निकट समय में ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जिस व्यक्ति के ओठ काले पड़ जायं और नीचे का ओठ अकारण ही ऊपर के ओठ से भारी मालूम पड़े तथा मुंह सफेद रंग का दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जिस मनुष्य के ऊपर के दांत अकारण ही नीले वर्ण के हो जायँ तथा नीचे के ओठ का लाल भाग सफेद या नीला पड़ जाय तो निकट समय में ही उसकी मृत्यु समझनी चाहिये। दर्पण में अपने मुंह को देखने पर मुँह टेढ़ा और विभिन्न वर्णों का दिखलाई पड़े तथा नाक मोटी और टेढ़ी मालूम पड़े तो निकट समय में ही मृत्यु समझनी चाहिये।

निकट मृत्यु द्योतक अन्य चिन्हों का निरूपण

बी आए ससिबिंबं णिअइ तिसंगं च सिंगपरिहीणं।
उवरम्मि धूमछायं अहखंडं सो न जीवेइ ॥६५॥

द्वितीयायां शशिबिम्बं पश्यति त्रिशृङ्गं च शृङ्गपरिहीनम्।
उपरि धूमच्छायामहर्खण्डं स न जीवति ॥ ६५ ॥

अर्थ—शुक्लपक्ष की द्वितीया को यदि कोई चन्द्रमा के बिम्ब तीन कोण के साथ या बिना कोण के देखे या धूमिल दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति दिन के कुछ ही अंश तक जीवित रहता है।

विवेचन—निमित्त शास्त्र में इसी प्रकार के रिष्टों का कथन करते हुए बताया गया है कि जो व्यक्ति ×प्रतिपदा के चन्द्रमा को

---

* दंताः स्शर्कराः श्यावास्ताम्राः पुष्पितपंकिलाः। सहसैव पतेयुर्वा जिह्वा जिह्वा विसर्पिणी ॥ श्वेता शुष्कगुरुः श्यावा लिप्ता सुप्ता सकंटका। शिरः शिरोधरा बोढुं पृष्ठं वा भारमात्मनः ॥—अ. ६० पृ. २१३

×शृङ्गेणैकेनेन्दुं विलीनमथवा ऽप्यव.ङ्मुखमशृङ्गम्।
सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वा यो जीविताद्भ्रस्येत् ॥

एकशृङ्गमशृङ्गं वा विशीर्णं पूर्णमेव च प्रतिपदुदितं चन्द्रं यः पश्यति स नश्यति ॥ मृण्मयीमिव यः पश्री कृष्णाम्बरसमावृताम्। आदित्यमीक्षते श्वभ्रं चन्द्रं

एक शृंग वाला देखे, चन्द्रमा के उदित रहने पर भी उसका दर्शन न कर सके और जो तपाये हुए सोने के समान वर्णवाला चन्द्रमा को देखे उसकी शीघ्र मृत्यु होती है। अमावस्या और पूर्णिमा के बिना भी जो सूर्य या चन्द्रमा ग्रहण को देखे वह स्वस्थ अथवा रुग्ण होने पर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जिसे रात में सूर्य बिम्ब के दर्शन हों और दिन में अग्नि निस्तेज मालूम पड़े वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति सूर्य बिम्ब को अर्ध चन्द्राकार देखता है चन्द्रमा के शृंगों के समानत्व का जिसे दर्शन नहीं होता है तथा जो सूर्य बिम्ब में काले वर्ण के धब्बों या छिद्रों का दर्शन करता है, वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जिस मनुष्य को इन्द्र धनुष जल में दिखलाई पड़े और जो इन्द्र धनुष को विकृत वर्ण का देखे वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है। चन्द्र बिम्ब और सूर्य बिम्ब को जो आकाश से गिरते हुए देखे और दोनों में परस्पर युद्ध होते हुए देखे तो उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिए।

एक मास की अवशेष आयु के रिष्ट

अहव मयंकविहीणं मलिणं चंदं च पुरिससारिच्छं।
सो जिअइ मासमेगं इय दिट्ठं पुव्वसूरीहिं ॥६६॥

अथवा मृगाङ्कविहीनं मलिनं चन्द्रं च पुरुषसादृश्यम्।
स जीवति मासमेकं इति दिष्टं पूर्वसूरिभिः ॥ ६६ ॥

अर्थ—प्राचीन आचार्यों के द्वारा कहा गया है कि यदि कोई चन्द्रमा को मृगचिन्ह से रहित, धूमिल और पुरुषाकार में देखे तो वह एक मास जीवित रहता है।

वा स न जीवति ॥ अपर्वणि यदा पश्येत् सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहम्। व्याधितोऽव्याधितो वाऽपि तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ नक्तं सूर्यमहश्चन्द्रमनग्नौ धूममुत्थितम्। अग्निं वा वा निष्प्रभं दृष्ट्वा रात्रौ मरणमादिशेत् ॥ व्याकृतीनि विवर्णानि विसंख्य पगतानि च। विनिमित्तानि पश्यन्ति रूपाण्यायुः क्षये नराः ॥ शक्र चापं जले दृष्ट्वा गगने वा द्विजोत्तम। अविद्यमाने वर्षेऽस्मिन् तृतीये म्रियते ध्रुवम् ॥ —म. सा. पृ. ४२२-२३

विवेचन—आचार्य ने पदस्थ रिष्टों का निरूपण प्रधानतः चन्द्र बिम्ब और सूर्य बिम्ब के दर्शन द्वारा किया है। इसका मुख्य हेतु यह है कि चन्द्ररश्मियों और सूर्य रश्मियों का संबंध नेत्र इन्द्रिय की रश्मियों से है। शरीर शास्त्रियों ने आंखों की बनावट का कथन करते हुए बताया है कि आंखें वास्तव में दो कैमरा जैसी हैं, जिसमें से प्रत्येक में एक लेन्स, एक अन्धेरी कोठरी और एक संवेदन शील पर्दा होता है। यदि इन केमरों में मांस की ऐसी समुचित व्यवस्था न हो कि जो क्षणभर में ही लेन्स को समीप या दूर की दृष्टि के लिए ठीक कर सकें तो केमरे सम्यक् चित्र नहीं उतार सकेंगे। यदि नेत्र गोलकों को इधर उधर घुमाने वाली मांस पेशियां न होतीं तो इन यन्त्रों के होते हुए भी सिर को इधर-उधर घुमाकर भी कुछ नहीं देख सकते तथा इन पेशियों की कलों को चलाने वाले स्नायु चालक यन्त्रों के बिगड़ जाते या कमजोर हो जाने पर पदार्थों का विपर्य ज्ञान होता है। तात्पर्य यह है कि नेत्रों के पर्दों पर बाहर के चित्र तो अंकित होते हैं किन्तु मस्तिष्क स्थित दृष्टिकेन्द्र तक उनकी सूचना नहीं पहुंच पाती है अथवा सूचना नाडी के विकृत होजाने से उन चित्रों की विपर्य सूचना मिलती है। चन्द्रमा और सूर्य बिम्ब के जो स्वाभाविक गुण, रूप, स्वभाव और कार्य बतलाये है, उनका विकृत भाव सूचना नाडियो की विकृति या शक्तिहीनता के कारण ही हता है। जब तक नेत्रों के लेन्स, अन्धेरी कोठरी और संवेदनशील पर्दा ये तीनों ठीक रहते हैं और सूचना नाडी विकृत नहीं होती तब तक शरीर की स्थिति कायम रहती है, लेकिन जब सूचना नाडी कमजोर होने लगती है, तो आयु का क्षीण होना प्रारंभ हो जाता है। पदस्थ जितने भी रिष्ट कहे गये हैं उन सबमें सूचना नाडी की शक्ति के ह्रास का तारतम्य बताया गया है। वर्तमान शरीरविज्ञान में भी आयुपरीक्षण की अनेक विधियां प्रचलित हैं पर उन सब विधियों का उद्देश्य मस्तिष्क, सुषुम्ना और उनसे निकलनेवाले स्नायु सूत्रों की शक्ति की परीक्षा करना ही है। जब तक व्यक्ति की सुषुम्ना, मस्तिष्क और सूचना वाहक स्नायुसूत्र बलिष्ठ रहते हैं तब तक उसकी जीवन शक्ति कायम रहती है। पर इन तीनों की शक्ति के ह्रास में मृत्यु अवश्यंभावी होती है। आचार्य ने प्रस्तुत गाथा में इसी वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा उपयुक्त रिष्ट का कथन किया है।

पदस्थ रिष्टों का उपसंहार और रूपस्थ रिष्टों के वर्णन की प्रतिज्ञा

एवं विहं तु भणियं रिट्ठं पुव्वागमाणुसारेण ।
सुपयत्थं तिसुणिज्जउ इण्हिं रूवत्थवररिट्ठं ॥ ६७ ॥

एवंविधं तु भणितं रिष्टं पूर्वागमानुसारेण ।
सुपदस्थं निश्रूयतामिदानीं रूपस्थवररिष्टं ॥ ६७ ॥

अर्थ—पदस्थ रिष्टों का बाह्य वस्तु संबंधी शकुन सूचक घटनाओं का प्राचीन आगम ग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार कथन किया गया, अब रूपस्थरूप सम्बंधी रिष्टों का वर्णन सुनिये।

रूपस्थ रिष्टों का लक्षण

दीसेइ जत्थ रूवं रूवत्थं तं तु भण्णए रिट्ठं ।
तं पि हु अणेयभेयं कहिज्जमाणं निसामेह ॥ ६८ ॥

दृश्यते यत्र रूपं रूपस्थं तत्तु भण्यते रिष्टं ॥
तदपि खल्वनेकभेदं कथ्यमानं निशाम्यत ॥ ६८ ॥

अर्थ—जहां रूप दिखलाया जाय वहां रूपस्थ रिष्ट कहा जाता है यह रूपस्थ रिष्ट अनेक प्रकार का होता है, इसका अब कथन किया जा रहा है ध्यान देकर सुनिये।

रूपस्थ रिष्ट के भेद

छायापुरिसं सुपिणं पच्चक्खं तह य लिंगणिद्दिट्ठं ।
पण्हगयं पुणभणियं रिट्ठं रिट्ठागमण्णेहिं ॥ ६९ ॥

छायापुरुषः स्वप्नः प्रत्यक्षं तथा च लिंगनिर्दिष्टम् ।
प्रश्नगतं पुर्नभणितं रिष्टं रिष्टागमज्ञैः ॥ ६९ ॥

अर्थ—छायापुरुष, स्वप्नदर्शन, प्रत्यक्ष, अनुमानजन्य, और प्रश्न के द्वारा रिष्ट हो उसे रिष्टविज्ञानवेत्ता रिष्ट ही कहते हैं।

रूपस्थ रिष्ट को देखने की विधि

पक्खालिऊण देहं सिअवच्छादीहि भूसिओ सम्मं ।
एगंतम्मि णियच्छउ छाया मंतेवि णियअंगं ॥ ७० ॥

प्रक्षाल्य देहं सितवस्त्रादिभिर्भूषितः सम्यक् ।
एकान्ते पश्यतु छायां मन्त्रयित्वा निजांगम् ॥ ७० ॥

अर्थ—स्नान कर स्वच्छ और सफेद वस्त्रों से सुसज्जित हो अपने शरीर को निम्न मंत्र से मंत्रित कर एकान्त स्थान में अपनी छाया का दर्शन करे।

ॐ ह्रीं रक्ते २ रक्तप्रिये सिंहमस्तकसमारूढे कूष्मांडी देवि मम शरीरे अवतर अवतर छायां सत्यां कुरु २ ह्रीं स्वाहा ॥

इय मंतिअ सव्वंगो मंती जोएउ तत्थवरछाया ।
सुहदियहे दुव्वण्हे जलहर-पवणेण परिहीणो ॥ ७१ ॥

इति मन्त्रयित्वा सर्वाङ्गं मन्त्री पश्यतु तत्र वरच्छायां ।
शुभ दिवसे पूर्वाह्णे जलधर-पवनेन परिहीनः ॥ ७१ ॥

अर्थ—"ओं ह्रीं रक्ते-रक्ते रक्तप्रिये सिंहमस्तकसमारूढे कूष्माडी देवि मम शरीरे अवतर २ छायां सत्यां कुरु कुरु ह्रीं स्वाहा" इस मंत्र से अपने शरीर को मंत्रित कर शुभ दिन—सोमवार, बुधवार, गुरुवार, और शुक्रवार के पूर्वान्ह-दोपहर के पहले के समय में वायु और मेघ रहित आकाश के होने पर

समसुद्धभूमिएसे जल-तुस-अंगार-चम्मपरिहीणे ।
इअरच्छायारहिए तिअरणसुद्धीए जोएह ॥ ७२ ॥

समशुद्धभूमिदेशे जल-तुष-अंगार-धर्म परिहीने ।
इतरच्छायारहिते त्रिकरणशुद्ध्या पश्यत ॥ ७२ ॥

अर्थ-मन, वचन, और काय की शुद्धता के साथ समतल और पवित्र जल, भूसा, कोयला, चमड़ा या अन्य किसी प्रकार की छाया से रहित भूपृष्ठ पर छाया का दर्शन करे।

छाया के भेद

णियछाया परछाया छायापुरिसं च तिविहछाया वि ।
णायव्वा सा पयडा जहागमं णिव्वियप्पेण ॥ ७३ ॥

निजच्छाया परच्छाया छायापुरुषश्च त्रिविधच्छायाऽपि ।
ज्ञातव्या सा प्रकटा यथागमं निर्विकल्पेन ॥ ७३ ॥

अर्थ-- निश्चय ही पूर्व शास्त्रों के अनुसार छाया तीन प्रकार की मानी गई है। एक अपनी छाया, दूसरी अन्य की छाया और तीसरी छाया-पुरुष की छाया।

निजच्छाया का लक्षण

जा नरशरीर छाया जोइज्जइ तत्थ इयविहाणेण ।
सा भणिया णियछाया णियमा सत्थत्थ दरिसीहिं ॥७४॥

या नरशरीरच्छाया दृश्यते तत्रेदंविधानेन ।
सा भणिता निजच्छाया नियमेन शास्त्रार्थदर्शिभिः ॥ ७४ ॥

अर्थ--शास्त्र के यथार्थ अर्थ को जानने वालों के द्वारा वह छाया नियमतः निजच्छाया कही गई है, जो इस प्रकार से दिखलाई पड़े।

जइ आउरो ण पिच्छई णियछाया तत्थ संठिओ णूणं ।
ता जीवइ दह दियहे इय भणियं सयलदरिसीहिं ॥७५॥

यद्यातुरो न पश्यति निजच्छायां तत्र संस्थितो नूनं ।
तर्हि जीवति दश दिवसानीति भणितं सकलदर्शिभिः ॥७५॥

अर्थ--सर्व द्रष्टाओं के द्वारा यह कहा गया है कि यदि कोई रुग्ण व्यक्ति जो वहां खड़ा हो अपनी छाया न देखे तो निश्चय से दस दिन जीवित रहता है।

विवेचन-- अपनी या अन्य की छाया का ज्ञान करने की प्रक्रिया यह भी बताई गई कि दर्पण या *जलाशय में छाया देखनी चाहिये। चांदनी और सूर्य या दीपक के प्रकाश में भी छाया का दर्शन किया

---

*दृष्ट्वा यस्य विजानीयात्पत्ररूपां कुमारिकाम् प्रतिच्छायामयीमक्षणो नैनमिच्छेच्चिकित्सितुम् ॥ ज्योत्स्नायामातपे दीपे सलिलादर्शयोरपि । अङ्गेषु विकृता यस्य छाया प्रेतस्तथैव सः ॥ छिन्ना भिन्नाकुला छाया हीना वाप्यधिकापि वा । नष्टा तन्वी द्विधा छाया विशिरा विस्तृता च या ॥ एताश्चान्याश्च याः काश्चित्प्रतिच्छाया विगर्हिताः । सर्वा मुमूर्षतां ज्ञेया न चेल्लक्ष्यनिमित्तजाः ॥
—च. सं. इ. ६-१-४

जा सकता है। आयुर्वेद में छाया के द्वारा रोगी की आयु परीक्षा का विधान विस्तृत रूप से किया गया है। यदि किसी को विकृत, टेढ़ी, छिन्न भिन्न, छोटी, बड़ी और अदर्शनीय अपनी छाया दिखलाई पड़े तो निकट मृत्यु समझनी चाहिये। जब तक छाया का सांगोपांग सौम्य दर्शन होता रहे तब तक आयु शेष समझनी चाहिये। ज्योतिष शास्त्र में आयु-ज्ञान का निरूपण करते हुए संहिता ग्रन्थों में छायादर्शन का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस शास्त्र में छाया को अपने पैरों द्वारा नाप कर गणित क्रिया द्वारा आयुशेष का ज्ञान किया गया है। प्रक्रिया इस प्रकार है कि सूर्योदय से लेकर मध्याह्न काल तक अपनी छाया को अपने पैरों से नाप कर जितने पैर प्रमाण छाया हो उसमें ४ और जोड़कर ३ का भाग देना चाहिये। यदि भाग देनेपर शेष सम राशि आवे तो मृत्यु और विषम राशि आवे तो जीवन शेष समझना चाहिए।

छाया दर्शन द्वारा दो दिन शेष आयु के चिन्ह

दो च्छाया हु णियच्छइ दोण्णि दिणे होइ तस्स वरजीयं।
अद्धच्छायं पिच्छइ तस्स विजाणेह दो दियहं ॥ ७६ ॥

द्वे छाये खलु पश्यति द्वे दिने भवति तस्य वरजीवम्।
अर्धच्छायां पश्यति तस्य विजानीत द्वौ दिवसौ ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो व्यक्ति अपनी छाया को दो रूपों में देखता है वह दो दिन जीवित रहता है और जो आधी छाया का दर्शन करता है वह भी दो दिन जीवित रहता है।

विवेचन—छाया द्वारा दिन की शेष आयु को ज्ञात करने की निम्न प्रक्रिया बड़ी सुन्दर है, इसके द्वारा सरलता से दो दिन की

तो पिट्ठीए सूरं काउं सूरोदए च्चिय सुनिउणं। स-पराउनिच्छयकए नियछायं [णं] पलोएज्जा ॥ जइ संपुण्णं पासति आवरसं ता णत्थि मच्चुभयं। अइ निथई कन्नमुंस ना जीवेइ (य) वरसतिगं ॥ —सं रं. गा. २४४-४५

सूर्योदयक्षणे सूर्यं पृष्ठे कृत्वा ततः सुधीः। स्वपरायुर्विनिश्चेतुं निजच्छायां विलोकयेत् ॥ अनया विध्याप्यशतवारं विलोचते। स्वच्छायां चाभिमंत्र्यार्कं पृष्ठे कृत्वाऽरुणोदये ॥ परच्छायां परकृते स्वच्छायां स्वकृते पुनः सम्यक् तत् कृतपूजः प्रयत्नयुक्तो विलोकयेत् ॥ —यो. शा. प्र. ५, श्लोक २११, २१८, २१६

आयु का ज्ञान किया जा सकता है। वह प्रक्रिया यह है कि रोगी अपनी छाया को अपने हाथों से नाप कर अंगुलात्मक बनाले। जितने अंगुल छाया हो उसमें १५ जोड़कर २१ का भाग दे। सम शेष में दो दिन की आयु और विषम शेष में अधिक दिन की आयु समझनी चाहिये। उदाहरण—सोमशर्मा नामक व्यक्ति की प्रातः काल ६ बजे की छाया २॥ हाथ है। २॥ हाथ, इसके अंगुल बनाये तो =५/२×२४/१=६० अंगुल छाया हुई ६०+१५=७५÷२१=२ लब्धि और शेष १२ आये। यहां शेष की संज्ञा विषम राशि है अतः दो दिन तक रोगी की मृत्यु नहीं होगी।

तत्काल रोगी की मृत्यु परीक्षा के लिये केवल दाहिने पांव की अंगुलात्मक छाया लेकर उसे तीन से गुणाकर ७ जोड़ देना चाहिये इस योगफलवाली राशि में १३ का भाग देने से समसंख्यक लब्धि और शेष दोनों ही आवें तो रोगी की तत्काल मृत्यु—एक दो दिन में समझनी चाहिये। यदि सम राशि लब्धि और विषम राशि शेष आवे तो ५ दिन आयु एवं इससे विपरीत शेष और लब्धि आवें तो रोगी चंगा होजाता है।

जैन ज्योतिष में छाया द्वारा रोगी की आयु को ज्ञात करने की एक मनोरंजक विधि यह भी पाई जाती है कि रोगी के मुख में १२ अंगुल की सींक लगाकर "ओं ह्रीं समे-समे रक्तप्रिये सिंहमस्तक समारूढे कूष्माण्डी देवि मम शरीरे अवतर अवतर छायां सत्यां कुरु कुरु ह्रीं स्वाहा"। इस मंत्र को २१ बार जप कर रात को दीपक के प्रकाश में उस सींक की छाया अंगुलात्मक लेनी चाहिए, जितनी छाया आवे उसे १३ से गुणा कर ५ का भाग देना चाहिए। भाग देने पर समलब्धि और शेष १, २, ३, और ० आवे तो चार दिन की शेष आयु और विषमलब्धि और शेष २, ४ आवे तो २ दिन की आयु तथा विपरीत शेष और लब्धि में रोगी का चंगा होना फल समझना चाहिए।

छाया द्वारा एक दिन शेष आयु को ज्ञात करने की विधि

अस्स न पिच्छइ छाया मंती वि य संणियच्छमाणो वि।
तस्स हवइ वरजीयं एगादिणं किं वियप्पेण ॥ ७७ ॥

यस्य न पश्यति छायां मन्त्र्यपि च संपश्यन्नपि।
तस्य भवति वरजीवमेकदिनं किं विकल्पेन ॥ ७७ ॥

अर्थ—इसमें सन्देह या विकल्प का कोई स्थान नहीं कि यदि रोगी पुरुष उपर्युक्त मंत्र का जाप कर छाया पर दृष्टि रखते हुए भी उसे न देख सके तो उसका स्थूल जीवन एक दिन का समझना चाहिए।

छाया द्वारा तत्काल मृत्यु के चिन्ह

वसह-करि-काय-रासह-महिसो हयजे (हिं य) विविहरूवेहिं ।
जो पिच्छइ णिअछाया लहुमरणं तस्स जाणेह ॥ ७८ ॥

वृषभ-करि-काक-रासभ-महिष-हयजैश्च विविधरूपैः ।
यः पश्यति निजच्छायां लघु मरणं तस्य जानीत ॥७८॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को बैल, हाथी, कौआ, गधा, भैंसा, और घोड़ा इत्यादि अनेक रूपों में देखता है तो उसका तत्काल मरण जानना चाहिए।

विवेचन—अन्य ग्रन्थों× में छाया की परीक्षा उसके रूप आकार और लम्बाई आदि के द्वारा की गई है। यदि रोगी अपनी छाया के रूप आकार और लम्बाई इन तीनों को ही विकृत अवस्था में देखता है तो उसकी निकट मृत्यु समझनी चाहिये। नेवला, कुत्ता, हरिण, और सिंह के आकार छाया दिखलाई पडे तो तीन दिन में मृत्यु समझनी चाहिये। छाया का हरा रूप दिखलाई पड़े तो दो दिन, नीला रूप दिखलाई पडे तो तीन दिन, काला दिखलाई पडे तो एक दिन और विचित्र वर्ण मिश्रित रूप दिखलाई पडे तो १० घंटे अवशेष जीवन समझना चाहिये। यदि अपने शरीर प्रमाण से दिन के दस बजे के पूर्व छोटी छाया मालूम हो और दस बजे के बाद से लेकर दिन के दो बजे तक शरीर प्रमाण से बडी छाया ज्ञात हो तो निकट मृत्यु समझनी चाहिये।

×अथापि यत्र छिद्र इवादित्यो दृश्यते रथनाभिरिवाभिख्यायेत छिद्रां वा छायां पश्येत्तदप्येवमेव विद्यात्। अथाप्यादर्शे वोदके वा जिह्मशिरसं वा शिरसं वात्मानं पश्येद्विपर्यस्ते व दृश्येते वा कन्यके जिह्मेन वा दृश्येयातां तदप्येवमेव विद्यात्।—आ. अ. ३, २, ४ पृ १३५, संस्थानेन प्रमाणेन वर्णेन प्रभया तथा। छाया विवर्तते यस्य स्वस्थोऽपि प्रेत एव सः॥ संस्थानमाकृतिर्ज्ञेया सुषमा विषमा च सा। मध्यमल्पं महच्चोक्तं प्रमाणं त्रिविधं नृणाम्। प्रतिप्रमाणा संस्थाना जलादर्शातपादिषु। छाया या सा प्रतिच्छाया वर्णा प्रभाश्रया॥ च. सं इ. ७-८-६

अह पिच्छइ णिअछायं अहोमुहं च विक्खित्तं ।
तस्स लहु होइ मरणं णिद्दिट्ठं सत्थइत्तेहिं ॥७६॥

अथ पश्यति निजच्छायामधोमुखां पराङ्मुखां च विक्षिप्ताम् ।
तस्य लघु भवति मरणं निर्दिष्टं शास्त्रविद्भिः ॥ ७६ ॥

अर्थ—शास्त्रों के ज्ञाताओं का कथन है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी छाय को नीचे की ओर मुख किये, पीछे की ओर घूमते हुए या अव्यवस्थित रूप में देखता है तो उसका मरण समझना चाहिए।

विवेचन—छायागणित के अनुसार मृत्यु जानने की विधि इस प्रकार है कि अधोमुख छाया प्रातःकाल ७ बजे जितने हाथ की दिखलाई पड़े उसे ११ में गुणा कर फल में ५ का भाग देने से जो लब्धि आवे उतने ही दिन या घड़ी प्रमाण शेष आयु समझनी चाहिए। दोपहर के ३ बजे अधोमुख या पराङ्मुख छाया जितने हाथ की हो, उसे तीन स्थानों में स्थापित कर क्रमशः ४, ३ और २ से गुणा करना चाहिए। प्रथम गुणनफल की राशि में ७ का भाग देने पर जो लब्धि आवे उसे द्वितीय गुणनफल की राशि में जोड़ देना चाहिये। इस योग फल वाली राशि में ५ का भाग देने से जो लब्धि आवे उसे तृतीय गुणनफल की राशि में जोड़ देना चाहिये। इस योग फल की राशि में ६ जोड़ कर ८ से भाग देने पर सम शेष आवे तो तत्काल मृत्यु और विषम शेष आवे तो तीन-चार दिन में मृत्यु समझनी चाहिए। विकृत छाया दिखलाई पड़ने पर निश्चित मृत्यु समय ज्ञात करने की विधि यह है कि सायङ्काल सूर्यास्त के कुछ पूर्व छाया को अपने हाथ से नाप कर जितने हाथ प्रमाण हो उसे ६ से गुणा कर गुणनफल में चार जोड़ देना चाहिए। इस योग फल की राशि में ५ का भाग देने पर जितनी लब्धि आवे उतने ही दिन प्रमाण या घटी प्रमाण शेष आयु समझनी चाहिए। चञ्चल छाया कुछ समय पहले देखने पर बड़ी और कुछ समय बाद देखने पर छोटी छाया दिखलाई पड़े तो दोनों समयों की छाया को हाथ से नापकर योग कर लेना चाहिए। इस योग फल की राशि में ५ जोड़ कर ८ से भाग देना चाहिए। भाग

फल की जितनी राशि आवे उतनी ही घटी प्रमाण शेष आयु समझनी चाहिए। अव्यवस्थित छाया में निश्चित मृत्यु ज्ञात करने की एक विधि यह भी है कि सूर्योदय मध्यान्ह काल और सूर्यास्त के समय केवल दाहिने हाथ और बाये पैर की छाया को लेकर प्रथक् प्रथक् लिख लेना चाहिए। तीनों समय की हाथ वाली छाया में २ जोड़ कर उसे भाग देना चाहिए और पैरवाली छाया में २ से गुणाकर ३ का भाग देना चाहिए। दोनों स्थानों की लब्धि को जोड़ देने पर जो योगफल हो, उतने ही दिन प्रमाण या घटिका प्रमाण शेष आयु समझनी चाहिये।

छाया द्वारा लघु मरण ज्ञान करने की अन्य विधि

धूमंतं पजलंतं छायाविंबं णियच्छए जो हु।
तह य कबंधं पिच्छइ लहु मरणं तस्स णियमेण ॥ ८० ॥

धूमायन्तं प्रज्वलन्तं छायाबिम्बं पश्यति यः खलु।
तथा च कबन्धं प्रेक्षते लघु मरणं तस्य नियमेन ॥ ८० ॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को धुँए से आच्छादित, अग्नि से प्रज्वलित और बिना सिर के केवल छाया का धड़ ही देखता है तो उसका नियम से जल्दी ही मरण समझना चाहिये।

तीन, चार, पांच और छः दिन के भीतर मृत्यु द्योतक छाया चिन्ह

नीला पीया किण्हा अह रत्ता जो णिअच्छए छाया।
दियहतयं च चउक्कं पणगं च छत्तियं तस्स ॥ ८१ ॥

नीलां पीतां कृष्णामथ रक्तां यः पश्यति छायां।
दिवसत्रयं च चतुष्कं पञ्चकं च षड्त्रिकं तस्य ॥ ८१ ॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को नीली, पीली, काली, और लाल देखता है तो वह क्रमशः तीन, चार, पांच और छः दिन रात तक जीवित रहता है।

विवेचन-जिस ×व्यक्ति को अपनी छाया दिखलाई नहीं पड़ती है वह दस दिन और जिसे अपनी दो छायाएँ दिखलाई पड़ती हैं वह दो दिन जीवित रहता है। छिन्न-भिन्न, आकुल, हीन या अधिक, विभक्त, मस्तक शून्य, विस्तृत और प्रतिच्छाया रहित छाया मुमूर्षु—मरणासन्न व्यक्ति को दिखलाई पड़ती है।

जिस व्यक्ति को छाया दर्शन में अपने शरीर की कान्ति विपरीत दिखलाई पड़े और जिसे छाया में नीचे का ओठ ऊपर को फैला हुआ दिखलाई दे, जिसके दोनों ओठ जामुन की तरह काले वर्ण के दिखलाई पड़े तथा ओठों के मध्य भाग की छाया विकृत दिखलाई दे, वह १० दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है।

जिसकी जीभ काली निश्चल, अवलिप्त, मोटी, कर्कश और विकृत हो तथा जीभ की छाया दिखलाई नहीं पड़ती हो अथवा जिह्वा की छाया बीच में फटी टूटी मालुम होती हो वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है। जो रोगी व्यक्ति सोते समय इधर-उधर पैर फटकारे तथा जिसके हाथ पैर ठंडे हो गये हों और श्वास रुक गई हो अथवा काक की तरह श्वास चलती हो, उसकी शीघ्र मृत्यु समझनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति की छाया द्वारा मृत्यु ज्ञात

×छाया जस्स न दीसति दियाए तज्जीवयं दस दिणाणि। छायादुगं च दीसति जइ ता दो चेव दिवसाणि "अहिणयसुहाऽसुहकए नेमित्ती निप्पकंप्पमप्पाणं च रंनो थिरचित्तो छायापुरिसं निरूवेज्जा" तत्थ जइ ता तमक्खयसव्वंगं पेसए तया कुसलं। तप्पायगं पुण जइ अदंसणं ता विदेसगमो॥ उरूण जुगे रोगं गुज्झे उ विणस्सए पिया नूणं। उयरे अत्थविणासो हियए मच्चू अदीसंते॥ दक्खिण-वामभुअ अदंसणे उ जाणाहि भाय-सुयनासो। सीसे उ अदीसंते छम्मासे उ भवे मरणं। सं. रं. गा. ५४-६१

छिन्नाऽच्छिन्नाऽकुला छाया हीना वाप्यधिकाऽपिवा। नग्नतन्वी द्विधा छिन्ना विशिरा विस्तृता च या॥ एताश्चान्यांच याः काश्चितन् प्रतिच्छाया विगर्हिताः। सर्वा मुमूर्षुतां ज्ञेया न चेल्लक्ष्म निमित्तजाः॥ कृष्णश्यावच्छायाः छायः परभासान्मृत्युलक्षणम्। श्यामा लोहितका नीला पीतिका वापि देहिनाम्। अभिद्रवति यं छाया स परासुरसंशयम्॥ —स. सा. पृ. ५५५

करने की विधि यह है कि रात को दर्पण में नाक का जितने अंगुल का प्रतिबिम्ब दिखलाई दे, उसे सात से गुणा कर तीन का भाग देने पर जो लब्धि आवे उतने ही दिन या घटी प्रमाण आयु समझनी चाहिये।

ग्रीक ज्योतिष में छाया पथ के दर्शन द्वारा मृत्यु चिन्हों का वर्णन किया गया है। वे लोग छाया पथ को गैलाक्सियन् अर्थात् दुग्ध वर्त्म बतलाते हैं हैं। जिसे यह छायापथ सम या नील वर्ण का दिखलाई पड़े उसकी मृत्यु १० दिन में, जिसे काला दिखलाई पड़े उसकी ८ दिन में, पीला दिखलाई पड़े उसकी ५ दिन में, और जिसे अनेक वर्ण मिश्रित दिखलाई पड़े उसकी २ दिन में मृत्यु होती है। प्राचीन ग्रीक ज्योतिष में इस छाया पथ के दर्शन के कारण का निरूपण करते हुए बतलाया है कि जूनोदेवी, जो छाया पथ की अधिष्ठात्री है, प्रत्येक व्यक्ति को उसके शुभाशुभ कृत्यों के अनुसार भविष्य की सूचना देती है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने छाया पथ का दूसरा नाम नीहारिका बतलाया है। उनका मत है कि मेघ शून्य रात्रि में आकाश में असंख्य तारिका पंक्ति के साथ उत्तर से दक्षिण दिशा तक विस्तृत शुभ्र वर्ण का कुहरा जैसा पदार्थ दिखलाई पड़ता है, यही छाया-पथ है। इसके विकृत दर्शन से दर्शक केन्द्र की ज्ञान हीनता का आभास मिलता है। जब मस्तिष्क संचालन यन्त्र में ढिलाई आ जाय उस समय जीवन शक्ति का ह्रास समझना चाहिए। ग्रीक ज्योतिष में छाया पथ के निरीक्षण द्वारा जो अरिष्ट दर्शन की प्रणाली बताई गई है उसके मूल में यही रहस्य है।

भारतीय ज्योतिष और वैद्यक शास्त्र में छाया दर्शन द्वारा मृत्यु को ज्ञात करने की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। विकृत छाया दर्शन के अतिरिक्त निमित्त ज्ञान में छाया के गणित द्वारा भी मृत्यु समय को ज्ञात किया गया है। ज्योतिष शास्त्र में तो प्रधान रूप से ग्रह-चाल और ग्रह-स्थिति द्वारा ही आयु सम्बंधी रिष्टों का निरूपण किया गया है। ग्रह स्थिति द्वारा बच्चे के जन्म क्षण में ही आयु का ज्ञान किया जा सकता है।

छाया द्वारा एक दिन की आयु ज्ञात करने की विधि

जो णियछायाबिंबं कट्टिज्जंतं णिएइ पुरिसेहिं।
कसणेहिं तस्साऊ एगदिणं होइ णिब्भंतं ॥८२॥

यो निजच्छायाबिम्बं कृत्यमानं पश्यति पुरुषैः।
कृष्णैस्तस्यायुरेकदिनं भवति निर्भ्रान्तम् ॥८२॥

अर्थ—यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को काले मनुष्यों द्वारा काटते हुए देखे तो निस्सन्देह उसका जीवन एक दिन का समझना चाहिये।

छाया द्वारा सात दिन की आयु ज्ञात करने की विधि

सर-सूल-सव्वलेहिं य कोंत-णाराय-छुरिआभिन्नं वा।
छिन्नं खग्गाईहिं अ कयचुण्णं मुग्गराईहिं ॥८३॥

सो जियइ सत्त दियहा छायाबिंबं ठियच्छए णूणं।
रोवंतं जो पिच्छइ लहु मरणं तस्स णिद्दिट्ठं ॥८४॥

शर-शूल-सर्वलाभिश्च कुन्त-नाराच-क्षुरिभिर्भिन्नं वा।
छिन्नं खड्गादिभिश्च कृतचूर्णं मुद्गरादिभि ॥८३॥

स जीवति सप्तदिवसांश्छायाबिम्बं पश्यति नूनम्।
रुदन्तं यः प्रेक्षते लघु मरणं तस्य निर्दिष्टम् ॥८४॥

अर्थ—कोई व्यक्ति अपनी छाया को तीर, भाला, बर्छी और छुरे से टुकड़े किये जाते हुए देखे या अपनी छाया को तलवार से छिन्न किये जाते हुए देखे अथवा मुद्गर—मोगरे के द्वारा छाया को कूटते हुए देखे तो वह व्यक्ति सात दिन जीवित रहता है। और यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को रोते हुए देखे तो उसका निकट मरण समझना चाहिये।

विवेचन—यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को पूर्व दिशा की ओर से तीर, भाला, बर्छी और छुरे द्वारा टुकड़े करते हुए काले मनुष्य को देखे तो उसका ५ दिन जीवन, दक्षिण दिशा की ओर से टुकड़े करते हुए देखे तो ४ दिन जीवन पश्चिम दिशा की ओर से टुकड़े

करते हुए देखे तो ७ दिन जीवन और उत्तर दिशा की ओर टुकड़े करते हुए देखे तो ११ दिन जीवन शेष समझना चाहिये। तलवार का वार छाया के ऊपर आग्नेय कोण से किया जाता हुआ दिखलाई पड़े तो २ दिन में मृत्यु, वायव्य कोण से किया जाता हुआ दिखलाई पड़े तो ६ दिन में मृत्यु, नैऋत्य कोण से किया जाता हुआ दिखलाई पड़े तो ८ दिन में मृत्यु एवं ऐशान कोण से वार किया जाता हुआ दिखलाई पड़े तो ७ दिन में मृत्यु समझनी चाहिये।

निजच्छाया दर्शन का उपसंहार

इदि भणिया णियछाया परछाया वि अ हवेइ णियरूवा।
किंतु विसेसो दीसइ जो सिट्ठो सत्थइत्तेहिं ॥ ८५ ॥

इति भणिता निजच्छाया परच्छायाऽपि च भवति निजरूपा।
किन्तु विशेषो दृश्यते यः शिष्टः शास्त्रविद्भिः ॥ ८५ ॥

अर्थ— इस प्रकार निजच्छाया दर्शन और उसके फलाफल का वर्णन किया है। परच्छाया दर्शन का फल भी निजच्छाया दर्शन के समान ही समझना चाहिये किन्तु शास्त्र के मर्मज्ञों ने जो प्रधान विशेषताएं बतलाई हैं, उनका वर्णन किया जाता है।

विवेचन—भारतीय वैद्यक और ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न वस्तुओं के छाया-दर्शन द्वारा मृत्यु चिन्हों का वर्णन करते समय पंच महाभूतों की छाया का वर्णन किया है। आकाश की छाया निर्मल, नीलवर्ण, स्निग्ध और प्रभायुक्त, वायु की छाया सूक्ष्म, अरुण वर्ण और निष्प्रभ, जल की छाया निर्मल, वैडूर्य के सदृश नीलवर्ण और सुस्निग्ध, अग्नि की छाया विशुद्ध, रक्तवर्ण, उज्ज्वल, और रमणीय एवं पृथ्वी की छाया स्थिर, स्निग्ध, श्याम और श्वेत वर्ण की बताई गई है। इन पांचों प्रकार की छायाओं में वायु की छाया अनिष्टकर तथा मृत्यु द्योतक है। लेकिन ये पांचों छायाएं सभी प्राणियों को दिखलाई नहीं देतीं। जिन व्यक्तियों की शुद्ध आत्मा है, जिनका चारित्र और ज्ञान ऊँचे दर्जे का है वे इन पांचों भूतों की सूक्ष्म छाया का दर्शन कर छः मास पहले से अपने मृत्यु-समय को ज्ञात कर लेते हैं। साधारण कोटि के व्यक्ति इन पञ्चमहाभूतों की पृथक-पृथक छाया को न देख इनके समुदाय

से उत्पन्न हुई छाया का दर्शन करते हैं क्योंकि साधारण व्यक्ति स्थूल पञ्चभूतात्मक पदार्थ की छाया का दर्शन करने में ही असमर्थ हो सकते हैं।

आचार्य ने इस स्थूलपंचभूतात्मक छाया के ही निजच्छाया-अपने शरीर की छाया, परच्छाया-अन्य व्यक्ति या अन्य पदार्थों की छाया के दर्शन द्वारा ही मृत्यु चिन्हों का वर्णन किया है। आदिपुराण, कालावली, मार्कण्डेयपुराण, लिङ्गपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, मयूरचित्र, वसन्तराग शकुन, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण आदि ग्रन्थों में कई स्थलों पर निजच्छाया दर्शन का सुन्दर कथन किया गया है। उपर्युक्त ग्रन्थों में दो-चार स्थलों पर शरीर की छाया के गणित का भी कथन किया गया है। जैन ज्योतिष के ग्रन्थ केवल ज्ञान होरा में छाया गणित द्वारा मृत्यु ज्ञात करने की अनेक विधियाँ बतलाई गई हैं। नीचे एक सरल विधि दी जा रही है।

रवि या मंगलवार को प्रातः काल सूर्योदय के समय में २१ बार णमोकार मंत्र पढ़कर अपनी छाया को हाथों से नाप ले। जितने हाथ प्रमाण छाया आवे उसे लिख ले। इसी प्रकार शनिवार को प्रातः काल भी अपनी छाया का हस्तात्मक प्रमाण ज्ञात करले इन दोनों दिनों की छाया को जोड़ कर १० से गुणा करे, इस गुणन फल में ३ का भाग देने से सम शेष में वह वर्ष निर्विघ्न और विषम शेष में उसी वर्ष मृत्यु होगी, ऐसा समझना चाहिये। इस विधि में इतनी विशेषता समझनी चाहिये कि जिस मास की जिस तिथि में व्यक्ति का जन्म हुआ हो उस मास की उस तिथि के आस पास पड़ने वाले रवि व भौमवार को अपनी छाया लेनी चाहिये। यह विधि एक प्रकार से अपनी छाया द्वारा वर्ष फल ज्ञात करने का साधन है।

परच्छाया दर्शन की विधि

अइरूवो हि जुवाणो उम्माहियमाणवज्जिओ णूणं।
पक्खालाविय देहं लेविज्जइ सेय गन्धेण ॥८६॥

अतिरूपो हि युवोनाधिकमानवर्जितो नूनम्।
प्रक्षाल्य देहं लिप्यते श्वेतगन्धेन ॥ ८६ ॥

अर्थ—एक अत्यन्त सुन्दर युवक को जो न नाटा हो न लम्बा हो, स्नान कराके उज्ज्वल सुगंधित पाउडर से गन्ध युक्त करे।

अहिमंतिऊण देहं पुव्वत्थमहीयलम्मि वरपुरिसा।
दंसेह तस्स छाया धरिऊणं आउरस्सेह॥ ८७॥

अभिमन्त्र्य देहं पूर्वस्थमहीतले वरपुरुषः।
दर्शयत तस्य छायां धृत्वाऽऽतुरायेह ॥ ८७ ॥

अर्थ-हे उत्तम पुरुष! तुम पूर्वोक्त व्यक्ति के शरीर को मन्त्र से मंत्रित कर रोगी मनुष्य को पूर्व दिशा में बैठा कर उसकी छाया का दर्शन कराओ

विवेचन—आचार्य परच्छाया दर्शन की विधि बतला रहे हैं कि किसी सुन्दर स्वस्थ, मध्यम कद के व्यक्ति को स्नान आदि से पवित्र कर "ऊं ह्रीं रक्ते-रक्ते रक्तप्रिय सिंहमस्तकसमारूढे कूष्माण्डी देवि मम शरीरे अवतर अवतर छायां सत्याम् कुरु कुरु ह्रीं स्वाहा" इस मन्त्र का उस व्यक्ति से जिसकी छाया द्वारा रोगी की मृत्यु-तिथि ज्ञात की जा रही है, १०८ वार जाप करवाना चाहिये। जापकरने की विधि जैन तन्त्र शास्त्रानुसार यह है कि लाल रंग के आसन पर बैठ कर एकाग्र चित्त से कूष्माण्डी देवी का ध्यान करते हुए एक वार मन्त्र पढ़ने के अनन्तर अग्नि में धूप क्षेपण करना चाहिए तथा धूप के साथ साथ रक्त और पीत वर्ण के पुष्प भी चढ़ाना चाहिये। इस प्रकार जब १०८ वार जाप पूरा हो जाय तब उत्तर दिशा की तरफ मुंह कर उस व्यक्ति से, जिसकी छाया का दर्शन किया जा रहा है "ओं ह्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं क्ष्रौं ह्रौं ह्रः पार्श्वनाथ सेविका पद्मावती देवि मम शरीरे अवतर अवतर छायां सत्यां कुरु कुरु ह्रीं स्वाहा' इस मंत्र का २१ वार पूर्वोक्त विधि के अनुसार जाप करवाना चाहिये। इसके बाद सूर्योदय काल में उस व्यक्ति को खड़ा कर और रोगी व्यक्ति को पूर्व दिशा की ओर बैठाकर उसकी छाया का दर्शन करना चाहिए। रोगी व्यक्ति उसकी छाया को जिस प्रकार देखे उसी प्रकार का फल अवगत करना चाहिए।

परच्छाया दर्शन द्वारा दो दिन की आयु ज्ञात करने की विधि

वंका अहवइ अद्धा अहोमुहा परमुहा हु जइ छाया ।
पिच्छेइ आउरो सो दो दियहा जियइ णिब्भंतो ॥८८॥

वक्रामथवाऽर्धमधोमुखां पराङ्मुखां खलु यदिच्छायाम् ।
पश्यत्यातुरः स द्वौ दिवसौ जीवति निर्भान्तिः ॥८८॥

अर्थ—यदि रोगी व्यक्ति जिसकी छाया का दर्शन कर रहा है उसकी छाया को वक्र-टेढी अर्ध-आधी, अधोमुखी और पराङ्-मुखी देखता है तो वह रोगी निश्चित रूप से २ रोज जीवित रहता है।

विवेचन—कालावली में परछाया दर्शन द्वारा मृत्यु चिन्हों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि अगर रोगी मनुष्य जिसकी छाया का दर्शन कर रहा है उसकी छाया में शिर, भुजा और घुटनों का दर्शन न करे या इन अंगों को विकृत रूप में देखे तो १० रोज के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है। जो रोगी परछाया में छिद्र, घाव और रक्तस्राव देखता है वह तीन रोज के भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जिसे परकी छाया चलती हुई दीखे, जो उसे इन्द्र धनुष के रंग की देखे जिसे परच्छाया के अनेक रूप दिखलाई पड़े वह व्यक्ति २ दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मयूरचित्र में परच्छाया दर्शन द्वारा आयु अवगत करने के कई नियम बतलाये गये हैं इनमें से अनेक नियम तो उपर्युक्त नियमों के समान ही हैं, पर कुछ ऐसे भी नियम हैं जो इनसे भिन्न हैं। इन नियमों में प्रधान रूप से परच्छाया में हाथ, पैर और नाक के अभाव का दर्शन मृत्यु द्योतक बताया है। यदि मध्याह्न समय रोगी परछाया को अधिक बड़ी देखे तथा उस छाया में मिश्रित अनेक वर्णों का दर्शन करे तो उसकी शीघ्र मृत्यु होती है। जिस व्यक्ति को परच्छाया चलती हुई या चलती चलती छाया को अकस्मात् गिरती हुई देखता है और जिसे छाया का शब्द सुनाई पड़ता है वह व्यक्ति शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। परछाया दर्शन से मृत्यु चिन्ह ज्ञात करने का एक यही प्रबल नियम है कि वर्ण, संस्थान और आकार विकृति जब छाया में दिखलाई पड़े तभी निकट मृत्यु समझनी चाहिए।

परच्छाया द्वारा अन्य मृत्यु के चिन्ह

हसमाणा रोवंती धावंती एयचरण-इगहत्था ।
कण्णचिहुरेहिं रहिआ परिहीणा जाणु-बाहेहिं ॥८९॥
कडि-सिर णासाहीणा कर-चरणविवज्जिया तहा चेव ।
रुहिर-वस-तेल्ल-पूयं मुंचंती अहव सलिलं वा ॥९०॥
अहवइ अग्गिफुलिंगे मुंचंती जो णिएइ परछाया ।
तस्स कुणिज्जइ एवं आएसं सत्थदिट्ठीए ॥९१॥

हसन्तीं रुदतीं धावन्तीमेकचरणामेकहस्ताम् ।
कर्णचिकुरै रहितां परिहीनां जानु-बाहुभिः ॥८९॥
कटि-शिरस् नासाहीनां कर-चरणविवर्जितां तथा चैव ।
रुधिर-वसा-तैल पूयानि मुञ्चन्तीमथवा सलिलं वा ॥९०॥
अथवा ऽग्निस्फुलिङ्गान् मुञ्चन्तीं यः पश्यति परच्छायाम् ।
तस्य कुरुतैवमादेशं शास्त्रदृष्ट्या ॥९१॥

अर्थ—यदि कोई रोगी व्यक्ति परच्छाया को हंसते, रोते, दौड़ते एक हाथ और एक पैर की, बिना कान, बाल, नाक, घुटने, बाहु जंघा, कमर, सिर, पैर, हाथ, के देखता है तथा रक्त, चर्बी, तेल, पीव, जल या अग्निकण परच्छाया को उगलते हुए देखता है, उसका मृत्यु-समय शास्त्रानुसार निम्न प्रकार अवगत करना चाहिये।

हसमाणीइ छमासं दो दियहा तह य तिण्णि चत्तारि ।
दो इग वरिस छमासं एगदिणं दोणि वरिसाइं ॥९२॥

हसन्त्यां षण्मासान् द्वौ दिवसौ तथा च त्रींश्चतुरः ।
द्व एकवर्ष षण्मासानेकदिन द्वे वर्षे ॥९२॥

अर्थ—परच्छाया को हंसती हुई देखने से ६ मास, रोती हुई देखने से दो दिन, दौड़ती हुई देखने से तीन दिन, एक हाथ या एक पैर से रहित देखने से चार दिन, कान रहित देखने से एक वर्ष, बाल रहित देखने से छः मास, घुटने रहित देखने से एक दिन और बाहु रहित देखने से दो वर्ष की शेष आयु समझनी चाहिये।

दो दियहा य दिखई छम्मासा तेसु पवरठाखेसु ।
एयं दो तिण्णि दिखे तह य दिखद्धं च पंचेव ॥९३॥

द्वौ दिवसौ च दिनाष्टकं षण्मासांस्तेषु प्रवरस्थानेषु ।
एकं द्वे त्रीणि दिनानि तथा च दिनार्धं च पंचैव ॥९३॥

अर्थ—यदि कोई रोगी व्यक्ति परच्छाया को कमर रहित देखे तो दो दिन, शिर रहित देखे तो आठ दिन, नाक रहित देखे तो छः मास एवं हाथ पैर रहित परच्छाया का दर्शन करे तो भी छः मास उसकी शेष आयु समझनी चाहिये। इसी तरह परच्छाया को रुधिर उगलती हुई देखने से एक दिन, चर्बी उगलती हुई देखने से २ दिन, तेल उगलती हुई देखने से तीन दिन, जल उगलती हुई देखने से आधा दिन, और अग्नि उगलती हुई देखने से पांच दिन शेष आयु समझनी चाहिये।

विवेचन—यदि कोई रोगी ×परच्छाया को अंगुली रहित देखता है तो वह आठ दिन, स्कन्ध रहित देखता है तो सात दिन, गर्दन रहित देखता है तो एक मास, ठोढी रहित देखता है तो नौ या ग्यारह दिन, नेत्र रहित देखता है तो दस दिन, उदर रहित देखता है तो पांच या छः मास, हृदय को सछिद्र देखता है तो चार मास, सिर रहित देखता है तो दो पहर, पांव की अंगुली रहित देखता है तो छः दिन, दांत रहित देखता है तो नौ दिन और चर्म रहित देखता है तो आधा दिन जीवित रहता है। जो रोगी परच्छाया के ओंठ, नख, घुटना नहीं देखता है अथवा इन

×अह अप्पणिाअ अप्पणो कए परकए य परछाये। सम्मं तक्खयपूओ परमुक्खत्तो पलोएज्जा ॥ जइ तं संपुण्णं चिय पासति ता नत्थि मरणमासंकि। कम जंघ-जाणुविरहे ति-दु-एकग वरिसेहिं मरइ धुवं ॥ छम्मासंतंमि तदूरुसंखए कडिखए नव-ट्ठहिं च मरइ। तदुवर अभावे मोसाहिं पंचहिं छहिं वा......॥ गीवाभावे चउ-ति-दु-इक्कमसंखेहिं मरइ मासेहिं। पक्खं कक्खाए खए बाहुखए दस दिणे जियई ॥ खंधखए अट्ठ दिणा चउमासं जियइ हिययछिड्डेत्ते। पहरदुगं चिय जीवति छायाए सिरो विहीणाए ॥ अह सव्वहा वि छायाबोच्छेओ भवति जोगिणा कहवि। ता तक्खणमज्झे चिय खिप्पं अब्भइ खयं नूणं ॥

—यो. शा. ५. २१७-२२६

अंगों को दुगने, तिगुने रूप में देखता है वह पांच दिन जीवित रहता है।

परच्छाया दर्शन का उपसंहार

लहुमेव तंसु दियहं (तस्स जीयं) नायव्वं एत्थ आणुपुव्वीए।
परछायाए णूणं णिद्दिट्ठं मुणिवरिंदेहिं ॥९४॥

लब्धेव तस्य जीवितं ज्ञातव्यमत्रानुपूर्व्या।
परच्छायायां नूनं निर्दिष्टं मुनिवरेन्द्रैः ॥ ९४ ॥

अर्थ—इस प्रकार परच्छाया दर्शन द्वारा रोगी पुरुष की निकट मृत्यु का निरूपण श्रेष्ठ मुनियों द्वारा किया गया है।

एवंविहपरछाया णिद्दिट्ठा विविहसत्थदिट्ठीहिं।
एण्हिं छायापुरिसं कहिज्जमाणं णिसामेह ॥९५॥

एवंविधपरच्छाया निर्दिष्टा विविधशास्त्रदृष्टिभिः।
इदानीं छायापुरुषं कथ्यमानं निशामयत ॥ ९५ ॥

अर्थ—इस प्रकार अनेक शास्त्रों की दृष्टि से परच्छाया का निरूपण किया गया है। अब छाया पुरुष का वर्णन कियाजाता है, ध्यान से सुनो।

छाया पुरुष का लक्षण

मय-मयण-मायहीणो पुव्वविहाणेण जं णियच्छेइ।
मंती णियवरछायं छायापुरिसो हु सो होइ ॥९६॥

मद-मदन-मायाहीनः पूर्वविधानेन यां पश्यति।
मंत्री निजवरच्छायां छायापुरुषः खलु स भवति ॥९६॥

अर्थ—वह मंत्रित व्यक्ति निश्चयसे छाया पुरुष है जो अभिमान विषयवासना और छल-कपट से रहित होकर पूर्वोक्त कूष्माण्डीदेवी के मंत्र के जाप द्वारा पवित्र होकर अपनी छाया को देखता है।

समभूमियले ठिच्चा समचरणजुओ पलंबभुअजुअलो।
बाहारहिए घम्मे विवज्जिए खुद्दजंतूहिं ॥ ९७ ॥

समभूमितले स्थित्वा समचरणयुगः प्रलम्बभुजयुगलः।
बाधारहिते घर्मे विवर्जिते क्षुद्रजन्तुभिः ॥ ९७ ॥

अर्थ—जो समतल-बराबर चौरस भूमि में खड़ा होकर पैरों को समानान्तर करके हाथों को लटका कर, बाधा रहित और छोटे जीवों से रहित [सूर्य की धूप में छाया का दर्शन करता है, वह छाया पुरुष कहलाता है।]

णासग्गे थणमज्झे गुज्झे चलणंतदेस-गयणयले ।
भाल छायापुरिसं भणिअं सिरिजिणवरिंदेण ॥९८॥

नासाग्रे स्तनमध्ये गुह्ये चरणान्तदेश-गगनतले ।
भाले छायापुरुषो भणितः श्रीजिनवरेन्द्रेण ॥९८॥

अर्थ—श्री जिनेन्द्र भगवान के द्वारा वह छाया पुरुष कहा गया है जिसका सम्बध नाक के अग्र भाग से, दोनों स्तन के मध्य भागसे, गुप्ताङ्गों से, पैर के कोने से, आकाश से अथवा ललाट से हो।

विवेचन—छाया पुरुष की व्युत्पत्ति कोष में 'छायायां दृष्टः पुरुषः पुरुषाकृतिविशेषः' की गई है अर्थात् आकाशमें अपनी छाया की भांति दिखाई देने वाला पुरुष छाया पुरुष कहलाता है। तंत्र में बताया गया है:—पार्वती ने* शिवजी से भावी घटनाओं को अवगत करने के लिए उपाय पूछा था; उसी के उत्तर में शिवजी ने छाया

---

*देव्युवाच—देवदेव महादेव कथितं कालवंचनं । शब्दब्रह्मस्वरूपं च योगलक्षणयुत्तमम ॥ कथितं वे समासेन छायिकं ज्ञानमुत्तमम् । विस्तरेण समाख्याहि योगिनां हितकाम्यया ॥ शंकर उवाच—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणं । यज्ज्ञात्वा पुरुषः सम्यक् सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥ सूर्यं हि पृष्ठतः कृत्वा सोमं वा वरवर्णिनि । शुक्लांबरधरस्त्रग्वी गंधधूपादि वासितः ॥ संस्मरन्मे महा मंत्र सर्वं काम फलप्रदम् । नवात्मकं पिण्डभूतं स्वां छायां संनिरीक्षयेत् ॥ दृष्ट्वा तां पुनराकाशे श्वेतवर्णस्वरूपिणीम् । स पश्यत्वेक भावस्तु शिवं परम कारणम् ॥ ब्रह्मप्राप्तिर्भवेत्तस्य कालविद्भिरितीरितम । ब्रह्महत्यादिकैः पापमुच्यते नात्र संशयः ॥ शिरोहीनं यदा पश्येत्षड्भिर्मासैर्भवेत् क्षयः । समस्तं वाङ्मयं तस्य योगिनस्तु यथा तथा शुक्ले धर्मं विजानीयात् कृष्णे पापं विनिर्दिशेत् । रक्ते बंधं विजानीयात् पीते विद्विषमादिशेत् ॥ विबाहौ बन्धुनाशस्स्याद्वितुण्डे चैव क्षुद्भयम् । विकटौ नश्यते भार्या विजंघे धनमेव हि ॥ पादाभावे विदेशस्स्यादित्येतत्कथितं मया । द्विचार्य प्रयत्नेन पुरुषेण महेश्वरि ॥ —शि मा. पु. २८. १—११

पुरुष के स्वरूप का वर्णन किया कि मनुष्य शुद्ध चित्त होकर अपनी छाया आकाश में देख सकता है, उसके दर्शन से पापों का नाश और छः मास के भीतर होने वाली घटनाओं का ज्ञान किया जा सकता है। पार्वती ने पुनः पूछा मनुष्य कैसे अपनी भूमि की छाया को आकाश में देख सकता है और कैसे छः माह आगे की बात मालूम हो सकती है। महादेवजी ने बताया कि आकाश के मेघशून्य और निर्मल होने पर निश्चल चित्त से अपनी छाया की ओर मुँह कर खड़ा हो गुरु के उपदेशानुसार अपनी छाया में कण्ठ देखकर निर्निमेष नयनों से सम्मुखस्थ गगनतल को देखने पर स्फटिक मणिवत् स्वच्छ पुरुष खड़ा दिखलाई देता है। इस छाया पुरुष के दर्शन विशुद्धचरित्र वाले व्यक्तियों को पुण्योदय के होने पर ही होते हैं। अतः गुरु के वचनों का विश्वास कर उनकी सेवा शुश्रूषा द्वारा छाया पुरुष सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर उसका दर्शन करना चाहिए। छायापुरुष के देखने से छः मास तक मृत्यु नहीं होती है। लेकिन छाया पुरुष को मस्तकशून्य देखने से छः मास के भीतर मृत्यु अवश्यंभावी है। छाया पुरुष के पैर न दीखने से स्त्री की मृत्यु और हाथ न दिखलाई पड़ने से भाई की मृत्यु होती है। यदि छाया पुरुष की आकृति मलिन दिखलाई पड़ती है तो ज्वर पीड़ा, लाल दिखलाई पड़े तो ऐश्वर्य प्राप्ति और सछिद्र दिखलाई पड़े तो शत्रुओं का नाश होता है।

> णियच्छाया गयणयले निएइ पडिबिंबिया फुडं जाम।
> ताबच्चिय सो जीवइ दिट्ठीए विविहसत्थाण ॥९९॥
>
> निजच्छायां गगनतले पश्यति प्रतिबिम्बितां स्फुटं यावत्।
> तावदेव स जीवति दृष्ट्या विविध शास्त्राणाम् ॥ ९९ ॥

अर्थ—अनेक शास्त्रों की दृष्टि से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि अपनी छाया को आकाश में पूर्ण प्रतिबिम्बित छाया पुरुष के रूप में जितना स्पष्ट देखता है उतना ही वह अधिक संसार में जीवित रहता है।

विवेचन—'ॐ ह्रीं रक्ते-रक्ते' इत्यादि मंत्र का १०८ बार जाप कर विशुद्ध और निष्कपट चित्त होकर स्वच्छ आकाश में अपनी

छाया के दर्शन करे। यदि भूमि पर पड़ने वाली छाया आकाश में स्पष्ट मालूम पड़े तो अपनी आयु अधिक समझनी चाहिए। इस छायापुरुष के दर्शन का बड़ा भारी प्रभाव बतलाया है, लेकिन इस छाया का दर्शन कुछ समय के अभ्यास के अनन्तर होता है। योगदीपिका में बताया है कि रविवार और मंगलवार को उपर्युक्त मंत्र का १०८ बार जाप कर सूर्योदय काल में छाया पुरुष का दर्शन करना चाहिए। छः मास तक लगातार अभ्यास करने पर भी छाया पुरुष के दर्शन नहीं हो तो अपने अशुभ कर्म का उदय समझना चाहिए। इस छाया पुरुष का जितना स्पष्ट दर्शन होता है, उतनी ही दीर्घायु समझनी चाहिए।

छाया पुरुष द्वारा छः मास की आयु ज्ञात करने की विधि

जइ पिच्छइ गयणयले छायापुरिसं सिरेण परिहीणं।
जस्सत्थे जोइज्जइ सो रोई जियइ छम्मासं ॥१००॥

यदि प्रेक्षते गगन तले छायापुरुषं शिरसा परिहीनम्।
यस्यार्थे दृश्यते स रोगी जीवति षण्मासान् ॥ १०० ॥

अर्थ—यदि मंत्रित पुरुष आकाश में छाया पुरुष को बिना शिर के देखे तो जिस रोगी के लिये छायापुरुष का दर्शन किया जा रहा है, वह छः मास जीवित रहता है।

छाया पुरुष द्वारा दो और तीन वर्ष की आयु का निश्चय

चलणविहीणे दिट्ठे वरिसतयं जीविअं हवे तस्स।
णयणविहीणे दिट्ठे वरिसजुअं णिव्वियप्पेण ॥१०१॥

चरणविहीने दृष्टे वर्षत्रयं जीवितं भवेत्तस्य।
नयनविहीने दृष्टे वर्षयुगं निर्विकल्पेन ॥ १०१ ॥

यदि—मंत्रित पुरुष को छायापुरुष बिना पैर के दिखलाई पड़े तो जिसके लिये देखा जा रहा है वह व्यक्ति तीन वर्ष तक जीवित रहता है और यदि बिना आंखों के छायापुरुष दिखलाई पड़े तो उसका जीवन दो वर्ष का अवगत करना चाहिये।

छाया पुरुष द्वारा एक वर्ष, अट्ठाईस मास और पन्द्रह मास की आयु का निश्चय

जाणुविहीणे भणिअं इगवरिसं तह य जंघपरिहीणे।
अट्ठावीसं मासे कडिहीणे पंचदह ते वि ॥ १०२ ॥

जानु विहीने भणितमेकवर्षं तथा च जङ्घा परिहीने ।
अष्टाविंशतिं मासान् कटिहीने पंचदश तानपि ॥ १०२ ॥

अर्थ—यदि छाया पुरुष घुटनों के बिना दिखलाई पडे तो रोगी का जीवन एक वर्ष, जंघा के बिना दिखलाई पडे तो अट्ठाईस महीने और कमर के बिना दिखलाई पडे तो १५ महीने शेष जीवन समझना चाहिये।

छाया पुरुष द्वारा आठ मास और छः दिन की आयु का निश्चय

अट्ठेव मुणह मासे हिअयपरिवज्जिएगं दिट्ठेण ।
णज्जति (य) णिव्वियप्पे छद्दियहे गुज्झरहिएण ॥१०३॥

अष्टैव जानीत मासान् हृदयपरिवर्जितेन दृष्टेन ।
ज्ञायते च निर्विकल्पेन षड् दिवसान् गुह्यरहितेन ॥१०३॥

अर्थ-यदि छायापुरुष बिना हृदय के दिखलाई पडे तो जीवन आठ महीने, बिना गुप्त अंगों के दिखलाई पडे तो छः दिन का शेष जीवन समझना चाहिये।

छाया पुरुष द्वारा चार दिन, दो दिन और एक दिन की आयु का निश्चय

करजुअहीणो जाणह दियहचउक्कं च बाहहीणेण ।
दो दियहे एगदिसं अंसयरहिएण जाणेह ॥१०४॥

करयुगहीने जानीत दिवसचतुष्कं च बाहुहीनेन ।
द्वौ दिवसावेकदिनमंसकरहितेन जानीत ॥ १०४ ॥

अर्थ-यदि छाया पुरुष बिना हाथों के दिखलाई पडे तो चार दिन, बाहुओं के बिना दिखलाई पडे तो २ दिन, और बिना कंधों के दिखलाई पडे तो एक दिन उसका जीवन शेष समझना चाहिये।

छाया पुरुष द्वारा दीर्घायु ज्ञात करने की विधि

जइ दीसइ परिपुण्णं अंगोवंगेहि छायवरपुरिसं ।
ता जीवइ बहुकालं इय सिट्ठं मुणिवरिंदेहिं ॥१०५॥

यदि दृश्यते परिपूर्णोऽङ्गोपाङ्गैश्छायावरपुरुषः ।
तर्हि जीवति बहुकालमिति शिष्टं मुनिवरेन्द्रैः ॥१०५॥

अर्थ—यदि मन्त्रित व्यक्ति छाया पुरुष को सभी प्रधान एवं अप्रधान अंगों से परिपूर्ण देखता है तो उसकी या जिस व्यक्ति के लिए वह छायापुरुष का दर्शन कर रहा है, उसकी श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा दीर्घायु बतलाई गई है।

विवेचन— तंत्र शास्त्र में बताया गया है कि मन्त्र पढ़कर मन्त्राराधक व्यक्ति छाया पुरुष का दर्शन आकाश में करता है। यदि वह अपने सम्बन्ध में इष्टानिष्ट जानना चाहता है तो उसे अपने शुभाशुभ फलों का आभास मिल जाता है और अन्य किसी रोगी पुरुष के विषय में जानना चाहता है तो उसे सामने बैठाकर तब दर्शन करना चाहिए। उस अन्य व्यक्ति को सामने बैठाने का रहस्य यह है कि आकाश में उस व्यकि की छाया दिखलाई पड़ने लगती है जिससे छाया के विकृत या अविकृत होने के कारण शुभाशुभ फलों के अवगत करने की अनेक विधियां तन्त्र शास्त्र में बतलाई गई हैं। उनके विभिन्न मन्त्रों की आराधना द्वारा नाना रूपों में छाया पुरुष का दर्शन किया गया है। जैन मन्त्र शास्त्र में भी छायापुरुष के दर्शन करने के अनेक मंत्र प्रचलित हैं। एक स्थान पर लिखा है कि चक्रेश्वरी देवी की लगातार २१ दिन पूजा करने के अनन्तर " ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं असि आ उसा नमः स्वाहा " इस मंत्र का, सवालाख जाप करके स्वस्थ और स्वच्छ चित्त होकर छायापुरुष का दर्शन करना चाहिए। इस विधि से जिस छायापुरुष के दर्शन होंगे उनके द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनो कालों की घटनाओं का स्पष्ट पता लग जायगा। परन्तु इस छाया पुरुष की आराधना सब के द्वारा संभव नहीं, किन्तु जो छल-कपट से रहित हो परम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं और जिन्होंने स्वप्न में भी परस्त्री की इच्छा नहीं की है, उन्हीं व्यक्तियों को यह छाया-पुरुष दिखलाई पड़ेगा। छायापुरुष के दर्शन के लिए किसी तालाब या नदी के किनारे जाना चाहिए और वहां एकान्त में बैठकर कुछ समय तक अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास बल से जब भावनाएं बलवती होकर अभिव्यक्ति की अवस्था में आजायंगी तो छायापुरुष का दर्शन अच्छी तरह सरलता पूर्वक किया जा सकता है। आयु के अतिरिक्त अन्य विषयों के फलों का विवेचन निम्न प्रकार किया गया है—जो व्यक्ति छायापुरुष के, गाते या हँसते हुए दर्शन करते हैं

उन्हें छः मास के भीतर अतुलित धन राशि की प्राप्ति होती है। जिन व्यक्तियों को सभी स्वस्थ अंगों से पूर्ण छायापुरुष दिखलाई पड़ता है, वे अवश्य कहीं से धन प्राप्त करते हैं। छायापुरुष का रोना, क्रन्दन करना और गिड़गिड़ाना इत्यादि देखने से उस व्यक्ति को साधारण धन लाभ अवश्य होता है। ज्योतिष शास्त्र में इस प्रकार के छायापुरुष का स्वरूप एवं फल बहुत कम जगह बतलाया गया है।

छायापुरुष द्वारा अन्य लाभालाभ आदि ज्ञात करने का कथन

अच्छउ जीविय-मरणं लाहालहं सुहा-सुहं तह य।
अन्नं पि जं जि कज्जं तं जोयह छायापुरिसम्मि ॥१०६॥

आस्तां जीवित-मरणं लाभ-अलाभं शुभ-अशुभं तथा च।
अन्यदपि यदेव कार्यं तत्पश्यत छाया पुरुषे ॥ १०६ ॥

अर्थ—जीवन और मरण के अतिरिक्त अन्य अभीष्ट लाभ और हानि, शुभ और अशुभ, सुख और दुःख इत्यादि सभी जीवन से संबंध रखने वाले का भी छायापुरुष में देख सकते हैं।

विवेचन—यदि छायापुरुष स्वस्थ और प्रसन्न दृष्टि गोचर हो तो धन की प्राप्ति, रोते हुए या उदास दिखलाई पड़े तो धनहानि नाक या कान छायापुरुष के दिखलाई न पड़ें तो विपत्ति, सिर के बाल घुंघराले दिखलाई पड़ें तो संतान प्राप्ति, मित्र समागम और घर में उत्सव अथवा मांगलिक कार्यों का होना, पुरुष की दाढ़ी घनी और सफेद रंग की लम्बी दिखलाई पड़े तो विपुल मात्रा में कहीं से धन की प्राप्ति होगी, ऐसा समझना चाहिए। यदि छाया पुरुष का मुख मलीन दिखलाई पड़े तो घर में किसी की मृत्यु का होना, मुख प्रसन्न दिखलाई पड़े तो घर में किसी के विवाह का होना, छाया पुरुष का पेट बड़ा मालूम पड़े तो देश में सुभिक्ष का होना, पेट छोटा और शरीर कृश दिखलाई पड़े तो देश में दुर्भिक्ष का होना या देश में अन्य तरह की विपत्तियों का आना एवं छाया पुरुष के स्तन सुन्दर और सुडोल आकार के दिखलाई पड़े तो देश को धन-धान्य से परिपूर्ण होना फल समझना चाहिये। दर्शक जो छायापुरुष का दर्शन कर रहा है, यदि वह दर्शन करते समय सांसारिक भावनाओं, वासनाओं और विचारों से रहित होकर

छायापुरुष को देखता है तो उसे समस्त कार्यों में सफलता तथा उपर्युक्त वासना और भावनाओं के सहित दर्शन करता है तो उसे कार्यों में प्रायः असफलता मिलती हैं। छायापुरुष जमीन के भीतर रखे गये धन की भी सूचना देता है जो व्यक्ति पृथ्वी के नीचे रखे गये धन को निकलवाते हैं वे पहले छायापुरुष के दर्शन द्वारा उस धन के स्थान और परिमाण की सूचना प्राप्त कर लेते हैं। एक बार एक मेरे मित्र ने जिन्होंने दो-एक जगह पृथ्वी स्थित धन को निकलवाया है, बतलाया था कि इस कार्य के लिए मध्य रात्रि में दीपक के प्रकाश में मंगलवार और इतवार को छायापुरुष का दर्शन करना चाहिए। इसके दर्शन की विधि यह है कि मंगलवार या इतवार के प्रातः काल को ही जिस स्थान में धन रहने का सन्देह हो चौमुखी घी का दीपक जलाकर रख दे। पर इतनी विशेषता है कि उस स्थान को पहले गाय के गोबर से लीप कर धूप, अगरबत्ती आदि सुगन्धित द्रव्यों के हवन से पवित्र कर ले। फिर छायापुरुष का विशेषज्ञ, जिसे पृथ्वी स्थित धन की सूचना प्राप्त करनी है वह स्नान आदि से पवित्र हो लाल रंग की धोती और चादर पहन कर लाल रंग के आसन पर बैठ कर लाल फूलों से पुलिंदिनी देवी की आराधना करे और किसी अभीष्ट मंत्र का दिन भर में जितना संभव हो उतना जाप करे इस दिन अन्य काम का त्याग कर देना चाहिए। आवश्यक बाधाओं को दूर कर (पेशाब, मलत्याग आदि) हाथ पैर धोकर मंत्र जपके कपड़ों को पहिन कर पुनः मन्त्र जाप करना चाहिए। इस विधि से रात के एक बजे तक जाप करते रहना चाहिए। अनन्तर सफेद फूलों पर "ओं ह्रीं विश्वमालिनी विश्वप्रकाशिनी मध्ये रात्रौ छायापुरुषं प्रकटय प्रकटय ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः हुं फट् स्वाहा' इस मंत्र का २१ बार उस अखण्ड दीपक के प्रकाश में छाया पुरुष का दर्शन करना चाहिए। यदि छायापुरुष हंसता हुआ दिखलाई पड़े तो धन मिलेगा और रोता हुआ या आवाज करता हुआ दिखलाई पड़े तो धन नहीं मिलेगा। छायापुरुष का सिर जिस दिशा में हो उसी दिशा में पृथ्वी स्थित धन को समझना चाहिए जिन व्यक्तियों को छायापुरुष देखने का अभ्यास नहीं है वे साधारण व्यक्ति उपर्युक्त विधि से छायापुरुष का दर्शन कर सकते हैं। अब

जाप में किसी प्रकार की त्रुटि न हो तो वह छायापुरुष धन के बारे में किस प्रकार प्राप्ति होगी और कब होगी आदि समस्त बातें धीरे २ आराधक के कान में कह देता है यदि कारणवश साधारण व्यक्तियों को छायापुरुष के दर्शन नहीं भी हों तो उक्त विधि से जाप करने पर धन के मिलने और न मिलने का आभास अवश्य मिल जाता है।

छायापुरुष दर्शन द्वारा रिष्ट कथन का उपसंहार और रूपस्थ रिष्ट का कथन

एवं छाया पुरिसो णिद्दिट्ठो अण्णसत्थदिट्ठीये।
रिट्ठं रूवं सुमिणं कहिज्जमाणं निसामेह ॥१०७॥

एवं छायापुरुषो निर्दिष्टोऽन्य शास्त्र दृष्ट्या।
रिष्टं रूपं स्वप्नं कथ्यमानं निशामयत ॥ १०७ ॥

अर्थ—इस प्रकार अन्य शास्त्रों की दृष्टि से छायापुरुष का वर्णन किया गया है, अब रूपस्थ रिष्ट स्वप्नों का निरूपण किया जाता है, ध्यान से सुनो।

स्वप्नों का निरूपण

अथ स्वप्नानि—

वाय-कफ-पित्त रहिओ समधाऊ जवेइ इय मंतं।
सुत्तो निसाए पेच्छइ सुमिणाइं ताइ पभणेमि ॥१०८॥

अथ स्वप्नाः। वातकफपित्तरहितः समधातुर्यो जपतीमं मन्त्रम्।
सुप्तो निशायां पश्यति स्वप्नांस्तान् प्रभणामि ॥ १०८ ॥

अर्थ—अब उन स्वप्नों का वर्णन किया जा रहा है, जिन्हें वात, पित्त और कफ की विषमता से रहित होकर, सातों धातुओं की समता प्राप्त कर निम्न मंत्र का जाप करते हुए देखता है।

स्वप्न दर्शन की विधि

ॐ ह्रीं पण्हसवणे क्ष्मीं स्वाहा।

काऊण अंगसोही सियभूसण भूसिओ हु भूमीए।
जविऊण इमं मंतं सोवउ सियवत्थपिहियाए ॥१०९॥

ओं ह्रीं पएहसवणे दर्मी स्वाहा।

कृत्वा अङ्गशुद्धिं सितभूषण भूषितः खलु भूमौ।
जपित्वेमं मन्त्रं स्वपितु सितवस्त्रपिहितायाम् ॥ १०९ ॥

अर्थ-शरीर को स्वच्छ कर, श्वेत आभूषणों को धारण कर एवं श्वेत वस्त्रों से आच्छादित हो भूमि पर 'ओं ह्रीं पएहसवणे दर्मी स्वाहा' इस मंत्र का जाप कर शयन करे।

उपवास-मोणजुत्तो आरंभविवज्जिओ हु तद्दियहे।
विकहा कसायहीणो अच्छित्ता तम्मि दियहम्मि ॥११०॥

उपवास-मौनयुक्त आरंभ विवर्जितः खलु तद्दिवसे।
विकथा-कषायहीन आसित्वा तस्मिन् दिवसे ॥ ११० ॥

अर्थ-जिस रात को स्वप्न देखना हो उस दिन उपवास सहित मौनव्रत धारण करे और उस दिन समस्त आरंभ का त्याग कर विकथा और कषाय रहित होकर उपर्युक्त विधि से रात को शयन करे।

जाइकुसुमेहिं जविओ सिज्झइ मंतो हु दहसहस्सेहिं।
एवं च होमविहिओ गुग्गुल-महुरत्तएणं तु ॥ १११ ॥

जातिकुसुमैर्जपितः सिध्यति मन्त्रः खलु दशसहस्रैः।
एवं च होमविहितो गुग्गुल-मधुरत्रयैस्तु ॥ १११ ॥

अर्थ—इस प्रकार जातिकुसुम द्वारा दस हजार बार उपर्युक्त मंत्र का जाप कर गुग्गुल और धूप का हवन कर रात को स्वप्न देखना चाहिये।

विवेचन—जैन मंत्र शास्त्र में स्वप्न दर्शन की विधि का वर्णन करते हुए बताया गया है कि 'ओं ह्रीं बाहुबलि महाबाहुबलि प्रचण्डबाहुबलि ऊर्ध्वबाहुबलि शुभाशुभं कथय२ स्वाहा' इस मंत्र का दस हजार जाप कर पृथ्वी पर शयन करे और जब स्वप्न में किसी प्रश्न का उत्तर पाना हो तो कान की लौ पर कस्तूरी और सफेद चंदन लगाकर सोना चाहिये। उस रात्रि को जितने स्वप्न आते हैं वे प्रायः सत्यफल द्योतक होते हैं। स्वप्न दर्शन की एक अन्य

प्रक्रिया यह भी बताई गई है कि 'ओं विश्वमालिनी विश्वप्रकाशिनी मध्ये रात्रौ सत्यं मह्यं वद-वद प्रकट्य प्रगटय श्रीं ह्रां ह्रुम् फट् स्वाहा' इस मंत्र को सिंगरफ, काली मिर्च और स्याही इन तीनों से कागज पर लिखकर तकिए के नीचे रख मंगल और रविवार की रात को शयन करे। इस रात को स्वप्न में अभीष्ट कार्य की सूचना मिलती है।

आधुनिक वैज्ञानिक स्वप्न के सम्बन्ध में अपना नवीन विचार उपस्थित करते हैं। अरस्तू (Aristotle) ने कारणों का अन्वेषण करते हुए बताया है कि जागृत अवस्था में जिन प्रवृत्तियों की ओर व्यक्ति का ध्यान नहीं जाता है, वे ही प्रवृत्तियां अर्द्धनिद्रित अवस्था में उत्तेजित होकर मानसिक जगत् में जाकरूक हो जाती है। अतः स्वप्न में हमारी छुपी हुई प्रवृत्तियों का ही दर्शन होता है। एक अन्य पश्चिमीय दार्शनिक ने मनोवैज्ञानिक कारणों की खोज करते हुए बतलाया है कि स्वप्न में मानसिक जगत के साथ बाह्य जगत का सम्बन्ध रहता है, इसलिए हमें भविष्य में घटने वाली घटनाओं की सूचना स्वप्न की प्रवृत्तियों से मिलती है। डाक्टर सी. जे. हिट्वे ने मनोवैज्ञानिक ढंग से स्वप्न के कारणों की खोज करते हुए लिखा है कि गर्मी की कमी के कारण हृदय की जो क्रियाएं जागृत अवस्था में सुपुप्त रहती हैं वे ही स्वप्नावस्था में उत्तेजित होकर सामने आ जाती हैं। जागृत अवस्था में कार्य संलग्नता के कारण जिन विचारों की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है, निद्रित अवस्था में वे ही विचार स्वप्न रूप से सामने आते हैं। प्रथग् गोरियन सिद्धांत में माना गया है कि शरीर आत्मा की क़ब्र है। निद्रित अवस्था में आत्मा शरीर से स्वतन्त्र होकर अपने असल जीवन की ओर प्रवृत्त होती है और अनन्त जीवन की घटनाओं को ला उपस्थित करती है, इसलिये हमें स्वप्न में अपरिचित वस्तुओं के भी दर्शन होते हैं। सुकरात कहते हैं कि-जागृत अवस्था में आत्मा बद्ध है किन्तु स्वप्नावस्था में आत्मा स्वतन्त्र रहती है, इसलिए स्वप्न में आत्मा स्वतन्त्रता की बातें सोचती रहती है। इसी कारण हमें नाना प्रकार के विचित्र स्वप्न आते हैं। जो आत्माएँ कलुषित हैं उनके स्वप्न गन्दे और साधारण होते हैं पर पवित्र आत्माओं के स्वप्न अधिक प्रभावोत्पादक एवं अन्तर्जगत्

और बाह्य जगत से सम्बन्ध होते हैं इनके द्वारा मानव को भावी जीवन की सूचनाएं मिलती हैं। तेरंगा मानते हैं कि जैसा हम अवकाश मिलने पर आमोद-प्रमोद करते हैं उसी प्रकार स्वप्नावस्था में आत्मा भी स्वतन्त्र होकर आमोद प्रमोद करती है। और वह मृत आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करके उनसे बातचीत करती है, इसलिए हमें स्वप्न में अपरिचित चीजें भी दिखलाई पड़ती हैं पवित्रआत्माओं के स्वप्न उनके भूत और भावी जीवन के प्रतीक हैं। बिबलोनियन का कहना है कि स्वप्न में देव और देवियां आती हैं, स्वप्न में हमें उन्हीं के द्वारा भावी जीवन की सूचनाएं मिलती हैं, इसलिए कभी कभी स्वप्न की बातें सच होती हैं।

कुछ नवीनतम वैज्ञानिकों ने स्वप्न के कारणों का अन्वेषण दो प्रकार से किया है। एक दल के लोग स्वप्न का कारण शारीरिक विकार और दूसरे दल के लोग मानसिक विकार मानते हैं। शारीरिक क्रियाओं को प्रधानता देने वाले विद्वान मानते हैं कि मस्तिष्क के मध्यस्थित कोष के आभ्यन्तरिक परिवर्तन के कारण मानसिक चिन्ता की उत्पत्ति होती है। विभिन्न कोष जागृत अवस्था में संयुक्त रहते हैं, किन्तु निद्रितावस्था में संयोग टूट जाता है जिससे चिन्ताधारा की शृंखला टूट जाती है और स्वप्न की सृष्टि होती है। मानसिक विकार को कारण मानने वाले ठीक इससे विपरीत हैं, उनका मत है कि निद्रितावस्था में कोषों का संयोग भंग नहीं होता, बल्कि और भी घनिष्ट हो जाता है, जिससे स्वाभाविक चिन्ता की विभिन्न धारायें मिल जाती है। इन्हीं के कारण स्वप्न जगत् की सृष्टि होती है। किन्हीं किन्हीं विद्वानों ने बतलाया है कि निद्रित अवस्था में हमारे शरीर में नानाप्रकार के विषाक्त पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं जिनसे कोषों की क्रिया में बाधा पहुँचती है, इसीलिए स्वप्न देखे जाते हैं। शारीरिक विज्ञान के विश्लेषण से पता लगता है कि निद्रितावस्था में मानसिक वृत्तियां सर्वथा निस्तेज नहीं हो जाती हैं, हां जागृत अवस्था में चिन्तायें और दृश्य मन में उत्पन्न होते हैं। जागृत अवस्था में दार्शन, श्रावण, स्पार्शन, एवं चाक्षुष आदि प्रत्यक्षानुभूतियों के प्रतिरूपक वर्तमान रहते हैं, किन्तु सुषुप्तावस्था में सिर्फ दार्शन प्रत्यक्ष के प्रतिरूपक ही पाये जाते हैं।

चिन्ताधारा दिन और रात दोनों में समान रूप से चलती है लेकिन जागृत अवस्था की चिन्ताधारा पर हमारा नियन्त्रण रहता है पर सुषुप्तावस्था की चिन्ताधारा पर नियन्त्रण नहीं रहता है इसलिए स्वप्न भी नाना अलंकार मय प्रतिरूपों में दिखलाई पड़ते हैं। स्वप्न दर्शन प्रत्यक्षानुभूति के अतिरिक्त शेषानुभूतियों का अभाव होने पर भी सुख, दुःख, क्रोध, आनन्द, भय ईर्ष्या आदि सब प्रकार के मनोभाव पाये जाते हैं। इन भावों के पाये जाने का प्रधान कारण अज्ञात इच्छा ही है। पाश्चात्य विद्वानों ने केवल विज्ञान के द्वारा ही स्वप्न के कारणों की खोज नहीं की, क्योंकि विज्ञान आदि कारण का अनुसन्धान नहीं करता है, आदि कारण का अनुसन्धान करना दर्शन शास्त्र का काम है। पाश्चात्य दर्शन के अनुसार स्वप्न निद्रित अवस्था की चिन्तामात्र है। हमारी जो इच्छाएँ जागृत जगत् में पूरी नहीं होती या जिनके पूरे होने में बाधाएँ रहती हैं, वे ही इच्छाएँ स्वप्न में काल्पनिक भाव से परितृप्त होती हैं। किसी चिन्ता या इच्छा के पूर्ण न होने से मन में जिस अशांति का उदय होता है, स्वप्न में कल्पना द्वारा उसकी शांति हो जाती है।

उपर्युक्त पंक्तियों में बताया है कि रुद्ध इच्छा ही स्वप्न में काल्पनिक रूप से परितृप्त होती है। अब यह बतलाना आवश्यक है कि रुद्ध इच्छा क्या है? और उसकी उत्पत्ति कैसे होती है? दैनिक कार्यों की आलोचना करने से स्पष्ट है कि हमारे प्रायः सभी कार्य इच्छाकृत होते हैं। किन्हीं किन्हीं कार्यों में हमारी इच्छा स्पष्ट रहती है और किन्हीं किन्हीं में अस्पष्ट एवं रुद्ध। जैसे गणित करने की आवश्यकता हुई और गणित करने की इच्छा होते ही एक स्थान पर जा बैठे। यहां गुणा भाग, जोड़ घटाव, आदि में बहुत सी क्रियाएँ ऐसी रहेंगी जिनमें इच्छा के अस्तित्व का अभाव नहीं कह सकते हैं। ज्ञात और अज्ञात इच्छाओं को प्रधान छः भागों में बाँटा है—(१) स्पष्ट इच्छा, (२) अस्पष्ट इच्छा (३) अपरिस्फुट-इच्छा, (४) अनुमान सापेक्ष इच्छा, (५) अविश्वासिक इच्छा, और (६) अज्ञात-इच्छा। दूसरी तरह से इच्छाओं के (१) संज्ञात (२) असंज्ञात, (३) अन्तर्ज्ञात और (४) अज्ञात या

निर्धारित ये चार वर्गीकरण किये गये हैं। मनोवैज्ञानिकों के उपर्युक्त वर्गीकरण से ज्ञात होता है कि स्वप्न में अवदमित-इच्छाएं सीधे सादे रूप में चरितार्थ न होकर ज्ञान के पथ में बाधक बन प्रकाशित होती हैं तथा अज्ञात रुद्ध इच्छा ही अनेक प्रकार से मन के प्रहरी को धोखा देकर विकृत अवस्था में प्रकाशित होती हैं। अभिप्राय यह है कि स्वप्न में अज्ञात-इच्छा रुद्ध-इच्छा को धोखा देकर नाना रूपकों और उपरूपकों में हमारे सामने आती है।

स्वप्न के अर्थ का विकृत होने का प्रधान कारण अवदमित इच्छा—जो इच्छा अज्ञात होकर स्वप्न में प्रकाशित होने की चेष्टा करती है, प्रहरी को—मन के जो जो भाव रुद्ध इच्छा के प्रकाशित होने में बाधा पहुँचाते हैं उनके समष्टि रूप प्रहरी को धोखा देने के लिए छद्म वेश में प्रकाशित होकर शांत नहीं होती, बल्कि पाखंडरूप धारण करके अपने को प्रहरी की नजरों से बचाने की चेष्टा करती है। इस प्रकार नाना इच्छाओं का जाल बिछ जाता है, इससे स्वप्न का अर्थ विकृत हो जाता है। नाटकीय परिणिति अभिक्रांति, संक्षेपन और नाटकीय परिणिति ये चार अर्थ विकृति के आकार हैं। मनका प्रहरी जितना सजग होगा, स्वप्न भी उतने ही विकृत आकार में प्रकाशित होगा। प्रहरी के कार्य में ढिलाई होने पर स्वप्न की मूल इच्छा अविकृत अवस्था में प्रकाशित होती है। मन का प्रहरी जागृत अवस्था में सजग रहता है और निद्रित अवस्था में शिथिल। इसी कारण निद्रित अवस्था में मन की अपूर्ण इच्छाएँ स्वप्न द्वारा काल्पनिक तृप्ति का साधन बनती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है आज का विज्ञान भी स्वप्न के विकृत अर्थ का कारण ढूंढकर फल का निरूपण करता है। जैनाचार्य ने मन्त्र विधान द्वारा स्वप्न में शुभाशुभ फल अवगत करने की प्रणाली बताई है। यह प्रणाली प्रायः सभी भारतीय साहित्य में पाई जाती है। प्राचीन युग में पश्चिमीय विद्वान भी देव-देवताओं की आराधना द्वारा स्वप्न में भावी क्रिया-कलापों का दर्शन करते थे।

स्वप्नों के भेद

दुविहं तु होइ सुमिणं देवदकहिअं च तह य सहजं च।
जत्थ जविज्जइ मंतो देवदकहियं च तं होइ ॥११२॥

द्विविधस्तु भवति स्वप्नो देवताकथितश्च तथा च सहजश्च।
यत्र जप्यते मन्त्रो देवताकथितश्च स भवति ॥ ११२ ॥

अर्थ-स्वप्न दो प्रकार के होते हैं-देवता कथित और प्राकृतिक शयन के पूर्व मन्त्र जाप द्वारा किसी देवविशेष की आराधना से जो स्वप्न देखे जाते हैं वे देवता कथित कहलाते हैं।

सहज स्वप्न का लक्षण

इयरं मंतविहीणं सिमिणं जं लहइ को वि णिब्भंतं।
चिन्ताए परिहीणं समधाउसरीरसंठाणो ॥ ११३ ॥

इतरो मन्त्रविहीनं स्वप्नं यं लभते कोऽपि निर्भ्रांतं।
चिन्तया परिहीनं समधातुशरीर संस्थानः ॥ ११३ ॥

अर्थ—दूसरा सहज स्वप्न वह है जिसे मनुष्य चिन्ता रहित, स्वस्थ और स्थिर मन से बिना मन्त्रोच्चारण के शरीर में धातुओं के सम होने पर देखता है।

विवेचन—भारतीय साहित्य में स्वप्न के कारण और उसके भेदों का निरूपण दर्शन, आयुर्वेद, और ज्योतिष इन तीन शास्त्रों में विस्तार से किया गया है। दार्शनिक विचार धारा की तीन उपाधियां हैं-जैन, बौद्ध और वैदिक।

जैन दर्शन—जैन मान्यता में स्वप्न संचित कर्मों के अनुसार घटित होने वाले शुभाशुभ फल के द्योतक हैं। स्वप्न शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट अवगत हो जाता है कि कर्म बद्ध प्राणी मात्र की क्रियाएँ सांसारिक जीवों को उनके भूत और भावी जीवन की सूचना देती हैं। स्वप्न का अन्तरंग कारण ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय के क्षयोपशम के साथ मोहनीय का उदय है जिस व्यक्ति के जितना अधिक इन कर्मों का क्षयोपशम होगा उस व्यक्ति के स्वप्न का फल भी उतना ही अधिक सत्य निकलेगा। तीव्र कर्मों के उदय वाले व्यक्तियों के स्वप्न निरर्थक एवं सारहीन होते हैं, इसका मुख्य कारण यही है कि सुषुप्तावस्था में भी आत्मा तो जागृत रहती है, केवल इन्द्रियों और मन की शक्ति विश्राम करने के लिए सुषुप्त सी हो जाती है। जिसके उपर्युक्त कर्मों का क्षयोपशम है

उसके क्षयोपशमजन्य इन्द्रिय और मन संबन्धी चेतनता या ज्ञाना-वस्था अधिक रहती है। इसलिए ज्ञान की उज्ज्वलता से निद्रित अवस्था में जो कुछ देखते हैं उसका संबन्ध हमारे भूत, वर्तमान और भावी जीवन से है। इसी कारण स्वप्न शास्त्रियों ने स्वप्न को भूत वर्तमान और भविष्य जीवन का द्योतक बतलाया है। पौराणिक अनेक आख्यानों से भी यही सिद्ध होता है कि स्वप्न मानव को उसके भावी जीवन में घटने वाली घटनाओं की सूचना देते हैं। इस दर्शन में स्वप्न के मूलतः दो भेद बतलाये हैं—प्रेरित और सहज। प्रेरित वे हैं जो कि व्यन्तर या अन्य यक्ष आदि की प्रेरणा से आते हैं और सहज स्वप्न प्रायः सभी जीवों को सर्वदा आते रहते हैं।

बौद्ध दर्शन—बौद्ध मान्यता में स्वभावतः पदार्थों के क्षणिक होने कारण सुषुप्तावस्था में भी क्षण-क्षण ध्वंसी आत्मा की ज्ञान सन्तान चलती रहती है, पर इस ज्ञानसन्तान का जीवात्मा के ऊपर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है और न पूर्वसंचित संस्कार ही वस्तुभूत हैं। लेकिन ज्ञानसन्तान के सर्वथा वर्तमान रहने के कारण स्वप्नों का फल व्यक्तियों को भोगना पड़ता है। इस दर्शन में स्वप्न के पूर्वनिमित्तक और अनिमित्तक ऐसे दो भेद बतलाये हैं। अनिमित्तक स्वप्न चित्त की अपथगामिनी प्रवृत्ति के कारण दिखलाई पड़ते हैं। यह बात वातजनित, पित्त जनित और श्लेश्म जनित आदि शरीर विकारों से उत्पन्न होने के कारण प्रायः असत्य फल व्यक्त करने वाले होते हैं। पूर्वनिमित्तक स्वप्नों में पूर्व ज्ञान सन्तान जन्य अदृष्ट सहायक होने कारण फल देने की शक्ति विशेष रूप से रहती है।

वैदिक दर्शन—इस मान्यता में प्रधानतः अद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत ये तीन दार्शनिक सिद्धान्त हैं, अन्य विचार धाराएं इन्हीं के अन्तर्गत हैं।

अद्वैत दर्शन—इस मान्यता में पूर्व और वर्तमान संचित संस्कारों के कारण जागृत अवस्था में जिन इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है, स्वप्नावस्था में उन्हीं इच्छाओं की पूर्ति बतलाई गई है, स्वप्न आने का प्रधान कारण अविद्या है इसलिए स्वप्न का संबंध

अविद्या संबद्ध जीवात्मा से है, परम ब्रह्म से नहीं। स्वप्न के फल का प्रभाव जीवात्मा के ऊपर पड़ता है, पर यह फल भी म यारूप भ्रान्त है।

द्वैत दर्शन—इस दर्शन में पुरुष प्रकृति के सम्बन्ध के कारण विकृतावस्था को धारण कर लेता है। इस विकृत पुरुष में ही जन्म जन्मान्तर के संस्कार संचित रहते हैं। पूर्व तथा वर्तमान जन्म के संस्कारों के कारण विकृत पुरुष स्वप्न देखता है। अतः स्वप्न का सम्बन्ध निर्लेपी पुरुष से न होकर प्रकृति मिश्रित पुरुष के भूत, वर्तमान और भावी जीवन से है।

विशिष्टाद्वैत—इस मान्यता में बतलाया गया है कि संचित, प्रारब्ध, काम्य और निषिद्ध इन चार प्रकार के कर्मों में से संचित और प्रारब्ध के अनुसार प्राणियों को स्वप्न आते है। स्वप्न का सम्बन्ध ब्रह्म के अंश भूत जीव से है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार स्वप्नों के तीन भेद हैं-दृष्ट, अदृष्ट और मिश्रित।

आयुर्वेदिक विचार धारा—इस धारा के अनुसार मन के बहने वाली नाड़ियों के छिद्र जिस समय अतिबली तीनों-वात, पित और कफ दोषों से परिपूर्ण हो जाते हैं। उस समय प्राणियों को शुभ, अशुभ स्वप्न आते हैं। इसमें प्रधानतः सफल और निष्फल ये दो स्वप्नों के भेद बताये हैं।

ज्योतिषिक विचार धारा—उपलब्ध जैन ज्योतिष में निमित्त शास्त्र अपना विशेष रखता है, जहां जैनाचार्यों ने जीवन में घटने वाली अनेक घटनाओं के इष्टानिष्ट कारणों का विश्लेषण भी अत्यन्त महत्व पूर्ण ढंग से किया है। यों तो प्राचीन वैदिक धर्मावलम्बी ज्योतिष शास्त्रियों ने भी इस विषय पर पर्याप्त लिखा है, पर जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित स्वप्न शास्त्र में कई विशेषताएँ हैं। वैदिक ज्योतिर्विदों ने ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता माना है, इसलिए स्वप्न को भी ईश्वर प्रेरित इच्छाओं का फल बतलाया है। वराह मिहिर बृहस्पति और पौलस्त्य आदि विख्यात गणकों ने ईश्वर की प्रेरणा को ही स्वप्न में प्रधान कारण माना है। फलाफल का विवेचन जैनाजैन ज्योतिषशास्त्र में दश-पांच स्थलों को छोड़कर प्रायः समान ही है।

ज्योतिषशास्त्र में प्रधानतया सात प्रकार के स्वप्न बताये गये हैं:—(१) दृष्ट, (२) श्रुत, (३) अनुभूत, (४) प्रार्थित, (५) कल्पित, (६) भाविक और (७) दोषज। इन सात प्रकार के स्वप्नों में भाविक और प्रार्थित-मंत्र द्वारा प्रार्थना करने से आया हुआ स्वप्न, सत्य फल दायक होते हैं।

स्वप्नफल कथन करने की प्रतिज्ञा

दुविहं पि एयरूवं कहिज्जमाणं तु तं णिसामेह।
तिविहागमजुत्तीए समासदो विविभंगेहिं ॥११४॥

द्विविधमप्येकरूपं कथ्यमानं तु तं निशामयत।
त्रिविधागमयुक्त्या समासतो विविधभङ्गैः ॥ ११४ ॥

अर्थ—उस स्वप्न के बारे में सुनो जो दो प्रकार का होता हुआ भी एक ही रूप में है और जिसका वर्णन नाना प्रकार के शास्त्र और युक्तियों के द्वारा अनेक प्रकार की व्याख्याओं के साथ संक्षेप में किया जाता है।

रात के प्रहर के अनुसार स्वप्न का फल

दह वरिसाणि तयद्धं छम्मासं तं मुणेह दह दियहा।
जह कमसो णायव्वं सिमिणत्थं रयणियहरेहिं ॥११५॥

दश वर्षाणि तदर्धं षण्मासांस्तं जानीत दश दिवसान्।
यथाक्रमं ज्ञातव्यः स्वप्नार्थो रजनीप्रहरैः ॥ ११५ ॥

अर्थ—स्वप्नों का रात के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ प्रहर में देखने पर क्रमशः निम्न प्रकार फल मिलता है, दस वर्ष, पांच वर्ष, छः महीना और दस दिन। अर्थात् रात के प्रथम प्रहर में स्वप्न देखने पर दस वर्ष में, द्वितीय प्रहर में देखने पर पांच वर्ष में, तृतीय प्रहर में देखने पर छः मास में और चतुर्थ प्रहर में देखने पर दस दिनों में स्वप्न के फल की प्राप्ति होती है।

विवेचन—अन्य ग्रन्थों में रात्रि के प्रहरों के अनुसार स्वप्नों की फलप्राप्ति का समय बतलाते हुए लिखा गया है कि रात के पहले प्रहर में देखे गये स्वप्न एक वर्ष में, दूसरे प्रहर में देखे गये स्वप्न आठ महीने में (चन्द्रसेन मुनि के मत से ७ महीने में) तीसरे प्रहर

में देखे गये स्वप्न तीन महीने में (वराहमिहिर के मत से ५६ दिन में) चौथे प्रहर में देखे गये स्वप्न एक महीने में (मतान्तर से १६ दिन में) ब्राह्म मुहूर्त (उषाकाल) में देखे गये स्वप्न दस दिन में एवं प्रातःकाल सूर्योदय से कुछ समय पूर्व देखे गये स्वप्न अति शीघ्र फल देते हैं।

दिन के स्वप्नों का निरूपण करते हुए प्राचीन शास्त्रों में बताया गया है कि दिन के प्रथम प्रहर का स्वप्न निरर्थक, द्वितीय प्रहर का सात वर्ष में, तृतीय प्रहर का आठ वर्ष में, चतुर्थ प्रहर का ग्यारह वर्ष में और सूर्यास्त काल का नौ महीने में फल देता है। आज का विज्ञान दिन के स्वप्नों को निरर्थक बतलाता है। इसने दिन में जागृत अवस्था के स्वप्नों का भी विश्लेषण किया है।

तिथियों की अपेक्षा स्वप्नों की फल प्राप्ति का कथन करते हुए बताया गया है कि—:

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा—इस तिथि में स्वप्न देखने पर विलम्ब से फल मिलता है।

शुक्लपक्ष की द्वितीया—इस तिथि में स्वप्न देखने से विपरीत फल होता है अपने लिए देखने से अन्य को और अन्य के लिए देखने से अपने को फल की प्राप्ति होती है।

शुक्लपक्ष की तृतीया—इस तिथि में भी स्वप्न देखने से विपरीत फल की प्राप्ति होती है, पर फल दो वर्ष के बाद ही मिलता है।

शुक्लपक्ष की चतुर्थी और पंचमी—इन तिथियों में स्वप्न देखने से दो महीने से लेकर दो वर्ष के भीतर फल मिलता है।

शुक्लपक्ष की षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और दशमी—इन तिथियों में स्वप्न देखने से शीघ्र फल की प्राप्ति होती है, तथा स्वप्न सत्य निकलता है।

शुक्लपक्ष की एकादशी, द्वादशी—इन तिथियों में स्वप्न देखने से विलम्ब से फल मिलता है।

शुक्लपक्ष की त्रयोदशी और चतुर्दशी—इन तिथियों में स्वप्न देखने से स्वप्न का फल नहीं मिलता है तथा स्वप्न मिथ्या होते हैं परन्तु यह सिद्धान्त सिर्फ सहज स्वप्न के संबंध में ही लागू समझना चाहिये, देव कथित के सम्बन्ध में नहीं।

पूर्णिमा—इस तिथि के स्वप्न का फल जल्द और सत्य रूप में अवश्य मिलता है।

कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा—इस तिथि के देवकथित स्वप्न का फल निरर्थक होता हैं, पर सहज स्वप्न का फल विलम्ब से मिलता है।

कृष्ण पक्ष की द्वितीया—इस तिथि के स्वप्न का फल पांच वर्ष के भीतर मिलता है। लेकिन इस तिथि का स्वप्न सार्थक बताया गया है।

कृष्ण पक्ष की तृतीया, चतुर्थी—इन तिथियों के सहज स्वप्न मिथ्या होते हैं।

कृष्णपक्ष की पंचमी, षष्ठी—इन तिथियो के स्वप्न दो महीने बाद और तीन वर्ष के भीतर फल देने वाले होते हैं।

कृष्ण पक्ष की सप्तमी—इस तिथि का स्वप्न अवश्य शीघ्र ही फल देता है।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी, नवमी—इन तिथियों के स्वप्न विपरीत फ़ल देने वाले होते हैं तथा एक वर्ष के भीतर उनका फल मिलता है।

कृष्ण पक्ष की दशमी, एकादशी, द्वादशी, और त्रयोदशी-इन तिथिओं के सहज स्वप्न मिथ्या होते हैं।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी—इस तिथि के सभी स्वप्न सत्य होते हैं और शीघ्र फल मिलता है।

अमावास्या—इस तिथि का सहज स्वप्न मिथ्या और देव कथित स्वप्न सत्य होता है।

देव प्रतिमा के स्वप्न दर्शन का वर्णन

कर-चरण-जाणु-मत्थय-जंघं सय-उयरवज्जिया ।
जो रयणीएँ पसुत्तो णियच्छए जिणवरिंदस्स ॥११६॥

कर-चरण-जानु-मस्तक-जङ्घा-अंसक-उदरवर्जितां प्रतिमाम्।
यो रजन्यां प्रसुप्तः पश्यति जिनवरेन्द्रस्य ॥ ११६ ॥

अर्थ—रातको सोते समय स्वप्नमें जो सर्वश्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को बिना हाथ, पैर, घुटने, मस्तक, जङ्घा, कन्धा और पेट को देखता है, वह निम्न प्रकार फल प्राप्त करता है।

अह जो जस्स य भत्तो सो हवइ देवस्स णिव्विअप्पेण।
छत्तं परिवारं वा तस्स फलं तं निसामेह ॥ ११७ ॥

अथ यो यस्य च भक्तः स भवति देवस्य निर्विकल्पेन।
छत्रं परिवारं वा तस्य फलं तन्निशामयत ॥ ११७ ॥

अर्थ—अथवा जो भक्त श्री जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा के छत्र और भामण्डल को भंग होते हुए स्वप्न में देखता है उसका फल भी निम्न प्रकार अवगत करना चाहिए।

स्वप्न में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को हाथ, पांव, सिर और घुटने रहित देखने का फल

करभंगे चउमासं चरणेहिं मुणिज्ज तिण्णि वरिसाइं।
जाणु विहीणे वरिसं सीसम्मि य पंच दियहाइं ॥११८॥

करभङ्गे चतुरो मासांश्चरणैर्जानीत त्रीणि वर्षाणि।
जानुविहीने वर्षं शीर्षे च पञ्चदिवसान् ॥ ११८ ॥

अर्थ—जो व्यक्ति प्रतिमा को हाथ रहित स्वप्न में देखता है उसका जीवन चार महीने, जो पैरों के बिना देखता है, उसका जीवन तीन वर्ष, जो घुटनों के बिना देखता है, उसका जीवन एक वर्ष और जो सिर रहित देखता है उसका जीवन पांच दिन शेष समझना चाहिये।

स्वप्न में प्रतिमा के जंघा, कंधा, और उदर के नष्ट होने का फल

जंघासु दुण्णि वरिसं अंसयभंगम्मि एयमासं तु।
उयरविणासे दिट्ठे पडिमाए अट्ठ मासे य ॥ ११९ ॥

जङ्घासु द्वे वर्षेऽसकभङ्गे एकं मासं तु।
उदरविनाशे दृष्टे प्रतिमाया अष्ट मासांश्च ॥ ११९ ॥

अर्थ—यदि स्वप्न में कोई व्यक्ति जिन प्रतिमा की जंघा नष्ट होते हुए देखे तो उसका जीवन दो वर्ष, जो कंधा नष्ट होते हुए देखता है उसका जीवन एक मास और जो प्रतिमा का उदर नष्ट होते हुए देखता है उसका जीवन आठ मास समझना चाहिये

विवेचन—स्वप्न में इष्टदेव का पूजन, दर्शन और आह्वानन करना देखने से विपुल धन की प्राप्ति के साथ-साथ परम्परा से

मोक्ष की प्राप्ति होती है। स्वप्न में देव प्रतिमा का कंपित होना रोना, गिरना, चलना, हिलना, नाचना और गाता देखने से आधि व्याधि और मृत्यु होती है। स्वप्न में कलह एवं लड़ाई झगड़े देखने से स्वस्थ व्यक्ति रुग्ण और रोगी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है। नाई द्वारा स्वयं अपना या अन्य का क्षौर (हजामत) कार्य करते हुए देखने से रोग और व्याधि के साथ धन और पुत्र नाश, केश लंच करना देखने से भयंकर व्याधि और स्वप्न में नाचते हुए कबंध (कटे सिरवाले) को देखने से आधि, व्याधि और धन नाश होता है। अंधकार मय स्थानों में-वन, भूमि, गुफा; और सुरंग आदि में प्रवेश करते हुए स्वप्न में अपने को देखने से रोग और अन्य को देखने से अपनी छः महीने के भीतर मृत्यु समझनी चाहिये। वराहमिहिर ने स्वप्नों के फल का निरूपण करते हुए बताया है कि जिन स्वप्नों में इष्ट वस्तुयें अनिष्ट रूप से दिखलाई पड़ें और अनिष्ट वस्तुएं इष्ट रूप से दिखलाई पड़ें वे स्वप्न मृत्यु करने वाले होते हैं। पर्वत, मकान की छत, और वृक्ष पर से अपने या पर को गिरते हुए देखने से आधि व्याधि के साथ सम्पत्ति हानि उठानी पड़ती है। गन्दे जल या पंकवाले कुंआ के अन्दर गिरता या डूबता देखने से स्वस्थ व्यक्ति रोगी और रोगी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है। तालाब या नदी में प्रवेश करता देखने से रोगी को मरणतुल्य कष्ट होता है। जो रोगी व्यक्ति स्वप्न में अपनी छाया को अपने हाथों से छिन्न करता हुआ देखता है, वह जल्द ही मृत्यु को प्राप्त करता है। अग्नि में स्वयं को या अन्य किसी को जलता हुआ देखने से पांच मास के भीतर मृत्यु होती है।

स्वप्न में छत्र और परिवार भंग दर्शन का फल

छत्तस्स रायमरणं भंगे दिट्ठम्मि होइ णिब्भंतो ।
परिवारस्स य मरणं णिअच्छिए होइ परिवारे ॥१२०॥

छत्रस्य राजमरणं भङ्गे दृष्टे भवति निर्भ्रान्तिम् ।
परिवारस्य च भग्नं दृष्टे भवति परिवारे ॥ १२० ॥

अर्थ—यदि स्वप्न में जिनेन्द्र प्रतिमा के छत्र का भंग दिखलाई पड़े तो उस देश के राजा का मरण निश्चित समझना चाहिये, और

यदि परिवार-अनुगामियों का मरण दिखलाई पडे तो अपने किसी नौकर या अनुगामी का मरण समझना चाहिये।

देव प्रतिमा दर्शन के स्वप्न का उपसंहार

एवं णियडाणियडं णाउं देवादियाइपरिवारं।
देविमहंवाइणं कुणेइ इह झत्ति आएसं ॥ १२१ ॥

एवं निकट-अनिकटं ज्ञात्वा देवदिकादिपरिवारम्।
देवीमखत्रादिनां करोतीह झटित्यादेशम् ॥ १२१ ॥

अर्थ—इस पृथ्वी पर देवी की पूजा प्रतिष्ठा में संलग्न रहने वालों को देवादि का निकट और अनिकट परिवार समझकर उनकी श्रद्धा और आज्ञा का पालन करना चाहिये !

स्वप्न में विभिन्न वस्तुओं के देखने से दो महीने की आयु का निश्चय

जइ सुमिणम्मि विलिज्जइ खज्जइ काएहिं अहव गिद्धेहिं।
अहवा कुणेइ छद्दी मासजुयं जीवए सो दु ॥ १ २ ॥

यदि स्वप्ने विलीयते खाद्यते काकैरथवा गृध्रैः।
अथवा करोति छर्दिं मासयुगं जीवति स तु ॥ १२२ ॥

अर्थ—जो व्यक्ति स्वप्न में अपने को विलीन होते हुए देखता है, काए और गीधों के द्वारा अपने शरीर को खाते हुए देखता है या स्वयं को वमन करते हुए देखता है तो वह दो महीने जीवित रहता है।

विवेचन—स्वप्न में अपने अंगों का काटना, टूटना, छिन्न होना विकृत होना और अंगों से रक्त स्राव का होना देखने से कुछ महीनों में ही मरण होता है। आचार्य वराहमिहिर ने स्वप्न में लिङ्ग और गुदा जैसे गुप्तांगों के विकृत दर्शन को मृत्यु का कारण बतलाया है। केवल ज्ञान होरा में श्री चन्द्रसेन मुनि ने स्वप्न में शृगाल, काक, गिद्ध, मार्जार, सिंह और चीत के द्वारा अपने शरीर का भक्षण करना देखने से तीन महीने में मृत्यु का होना बतलाया है।

स्वप्न दर्शन द्वारा एक मास की आयु निश्चय

दक्खिदिसाएँ णिज्जदि महिस-खरो-ट्टेहिं जोहु सुमिणम्मि।
घय-तिलेहिं विलित्ते मासिक्कं सोदु जीवेइ ॥ १२३ ॥

दक्षिणादिशायां नीयते महिष-खर-उष्ट्रैः खलु स्वप्ने ।
घृत-तैलैर्विलिप्ते मासिकं स तु जीवति ॥ १२३ ॥

अर्थ—जो स्वप्न में भैंसे, गधे और ऊंट की सवारी द्वारा अपने को दक्षिण दिशा की ओर जाता हुआ देखता है अथवा तेल या घी से भींगा हुआ अपने को देखता है तो वह एक मास जीवित रहता है।

विवेचन—पाश्चात्य ज्योतिषियों के मत से स्वप्न में किसी के हाथ से केला छीनकर खाना, कनेर के फूल को तोड़ना, खिलाड़ियों के मल्लयुद्ध को देखना तथा उस युद्ध में किसी की मृत्यु का दर्शन करना, घड़ी के घन्टों की आवाज सुनना तथा किसी के हाथ से घड़ी को गिरते हुए देखना या अपने हाथ से घड़ी का गिरना देखना, स्वप्न में किसी भयंकर आवाज का सुनना, दक्षिण दिशा की ओर नग्न होकर गमन करते हुए देखना एक मास की आयु का कारण बताया है। डा. जी एच. मिलर ने मरण-सूचक स्वप्नों का निरूपण करते हुए बतलाया है कि जिन स्वप्नों में अबाधभावानुषंग से व्यक्ति की शारीरिक शक्ति का ह्रास प्रगट हो और इन्द्रिय शक्ति हीन मालूम पड़े वे स्वप्न स्वस्थ व्यक्ति को रोग सूचक और रोगी व्यक्ति को मरण सूचक हैं। लेकिन यहां यह भूलना न होगा कि स्वप्न प्रतीकों द्वारा आते हैं तथा उनका रूप विकृत होता है अतः सम्भाव्य गणित [Law of probability] के सिद्धांत द्वारा स्वप्न की परिपक्वावस्था वाली अतृप्त इच्छाओं का विश्लेषण कर शारीरिक और इन्द्रिय शक्ति का परिज्ञान करना चाहिए। डा. सी. जे. हिटवे ने मरण सूचक स्वप्नों का कथन करते हुए बताया है कि स्वप्न में ऊपर से नीचे गिरना, कनेर पुष्प का भक्षण करना भयंकर आवाज सुनना या करना, किसी को रोते हुए देखना, कान, नाक और आंख इन अंगों का विकृत होना, किसी प्रेमिका द्वारा तिरस्कार का होना, चाय पीते हुए स्वयं अपने को देखना या अन्य पुरुषों को चाय गिराते हुए देखना एवं छछूंदर के साथ क्रीडा करते हुए देखना ये स्वप्न एक मास के मरण के सूचक हैं। विवलोनियन और पृथग गोरियन इन सिद्धांतों के अनुसार स्वप्न में भोजन करना, वमन और दस्त होना, मलमूत्र और सोना-चांदी

का वमन करना, रुधिर भक्षण करना या रुधिर वमन करना, अन्धकारपूर्ण गर्त में गिरना, गर्त में गिरकर उठने का प्रयत्न करने पर भी उठने में असमर्थ होना, दीपक या बिजली को बुझते हुए देखना, घी, तेल और शराब की शरीर में मालिस करना एवं किसी वृक्ष या लता का जड़ से गिरना; देखने से कुछ महीनों में ही मरण होता है।

स्वप्न में सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दर्शन द्वारा कुछ अधिक एक मास आयु का निश्चय

रवि-चंदाणं गहणं अहवा भूमीइ णियइ पडणंवा ।
जो सुमिणम्मि खियच्छइ सो जीवइ समहिअं मासं ॥१२४॥

रवि-चन्द्रयोर्ग्रहणमथवा भूमौ पश्यति पतनं वा ।
यः स्वप्ने पश्यति स जीवति समधिकं मासम् ॥ १२४ ॥

अर्थ—जो स्वप्न में सूर्य और चन्द्र ग्रहण को देखता है अथवा पृथ्वी पर स्वप्न में सूर्य और चन्द्र के पतन को देखता है, वह एक महीने से कुछ अधिक जीवित रहता है।

सात दिन की आयु निश्चय

कर-चरणतलं च तहा पक्खालिऊ लायिऊण लक्खरमं।
निव्वाविअ धुप्पं तो लहु फिट्टइ जाण सत्तदिणं ॥१२५॥

कर-चरणतलं च तथा प्रक्षाल्य लागयित्वा लाक्षारसम्।
निष्पाद्य धूपं ततो लघु भ्रंशते जानीहि सप्तदिनानि ॥१२५॥

अर्थ—हथेली और पैर का तला धोकर तथा लाल अलता लगाकर यदि धूप में सुखाने पर कम लाल हो जाय-फीका पड़ जाय तो सात दिन की आयु समझना चाहिए।

विवेचन—इस गाथा का संबन्ध स्वप्न प्रकरण से नहीं मालूम पड़ता है। बल्कि इसका संबंध प्रत्यक्ष रिष्ट से है। प्रत्यक्ष रिष्टों में मृत्यु के द्योतक अनेक रिष्ट बताये गये हैं। हाथ की हथेलियों के के मध्य भाग में काले दानों का निकल आना, नखों का काला हो जाना, शरीर के गुप्ताङ्गों में तिल, मसा आदि का प्रकट होना आदि प्रत्यक्ष रिष्ट बताये गये हैं। जैनाचार्य आगे स्वयं इन रिष्टों का वर्णन विस्तार से करेंगे।

स्वप्न दर्शन द्वारा एक मास की आयु का निश्चय

कसणपुरिसेहि णिज्जइ सुमिणम्मि य कड्ढिऊण गेहाओ ।
सो ऊण इक्कमासं जीवइ णत्थि त्ति संदेहो ॥ १२६ ॥

कृष्णपुरुषैर्नीयते स्वप्ने च कृष्ट्वा गेहात् ।
स पुनरेकं मासं जीवति नास्तीति सन्देहः ॥ १२६ ॥

अर्थ—यदि स्वप्न में काले पुरुष के द्वारा घर से खींचकर, अपने को ले जाते हुए देखे तो वह एक मास जीवित रहता है, इसमें संदेह नहीं।

स्वप्न दर्शन द्वारा बीस दिन की आयु का निश्चय

जो भिज्जइ सत्थेणं सकम्मं सत्थेण अहवइ मरेइ ।
सो जीवइ बीस दिणे सिमिणंमि रसादले जाओ ॥१२७॥

यो भिद्यते शस्त्रेण शस्त्रेण च म्रियते ।
स जीवति विंशति दिनानि स्वप्ने रसातले यातः ॥१२७॥

अर्थ—जो स्वप्न में अपने को किसी अस्त्र से कटा हुआ देखता है या अस्त्र द्वारा अपनी मृत्यु के दर्शन करता है अथवा पाताल की ओर जाते हुए अपने को देखता है, वह बीस दिन जीवित रहता है।

स्वप्न दर्शन द्वारा एक मास की आयु का निश्चय

सिमिणम्मि अ णच्चंतो णिज्जइ बंधेवि रत्तकुसुमाइं ।
कालदिसाए जीवइ मासिक्कं सो फुडं मडओ ॥१२८॥

स्वप्ने च नृत्यन्नीयते बद्ध्वा रक्तकुसुमानि ।
कालदिशायां जीवति मासैकं स स्फुटं मृतकः ॥१२८॥

अर्थ—जो स्वप्न में मृतक के समान लाल फूलों से सजाया हुआ नृत्य करते हुए दक्षिण दिशा की ओर अपने को ले जाते हुए देखता है वह निश्चित एक मास जीवित रहता है।

विवेचन—जैन निमित्त शास्त्र में मरण-सूचक स्वप्नों का निरूपण करते हुए बताया है कि स्वप्न में तैल मले हुए नग्न

होकर भैंस, गधे, ऊंट, कृष्ण बैल और काले घोड़े पर चढ़कर दक्षिण दिशा की ओर गमन करना देखने से, रसोई गृह में, लाल पुष्पों से परिपूर्ण वन में और सूतिका गृह में अंगभंग पुरुष का प्रवेश करना देखने से, झूलना, गाना; खेलना, फोड़ना, हँसना नदी के जल में नीचे चले जाना तथा सूर्य, चन्द्रमा, ध्वजा और ताराओं का नीचे गिरना देखने से, भस्म, घी, लोह, लाख, गीदड़ मुर्गा, बिलाव, गोह, न्योला, बिच्छू, मक्खी और विवाह आदि उत्सव देखने से एवं स्वप्न में दाढी, मूंछ और सिर के बाल मुड़वाना देखने से मृत्यु होती है।

रोगोत्पादक स्वप्न का जिक्र करते हुए बताया है कि स्वप्न में नेत्रों के रोगों का होना, कूप, गड्ढा, गुफा, अन्धकार और बिल में गिरना देखने से, कचौडी, पूआ; खिचड़ी और पक्वान्न का भक्षण करना देखने से, गरम जल, तैल और स्निग्ध पदार्थों का पान करना देखने से, काले, लाल और मैले वस्त्रों का पहनना देखने से बिना सूर्य का दिन, बिना चन्द्रमा और तारों की रात्रि तथा असमय में वर्षा का होना देखने से, शुष्क वृक्ष पर चढ़ना देखने से हँसना और गाना देखने से एवं भयानक पुरुष को पत्थर मारता हुआ देखने से शीघ्र रोग होता है।

एक मास की आयु सूचक अन्य स्वप्न

रुहिर-वस-पूअ-तय-घय-तिल्लेहि य पूरियाइ गत्ताए।
जो हु णिवुड्डइ सुमिणे मासिक्कं जीवए सो दु ॥१२९॥

रुधिर-वसा-पूय-त्वग्-घृत-तैलैश्च पूरितायां गर्तायाम्।
यः खलु निमज्जति मासैकं जीवति स तु ॥ १२९ ॥

अर्थ—जो स्वप्न में रुधिर, चर्बी, पीप (पीव) चमड़ा घी और तेल के गड्ढे में गिरकर डूबता है, वह निश्चित एक मास जीवित रहता है।

स्वप्न दर्शन का उपसंहार

इदि भणिअं सुमिणत्थं णिद्दिट्ठं जेम पुव्वसूरीहिं।
पच्चक्खं रूवत्थं कहिज्जमाणं निसामेह ॥१३०॥

इति भणितः स्वप्नार्थो निर्दिष्टो यथा पूर्वसूरिभिः ।
प्रत्यक्षं रूपस्थं कथ्यमानं निशामयत ॥ १३० ॥

अर्थ—इस प्रकार पूर्वाचार्यों के द्वारा स्वप्नों का वर्णन किया गया है, अब प्रत्यक्ष रिष्टों का वर्णन किया जाता है, ध्यान से सुनो

विवेचन—ऊपर जैनाचार्य ने मरण सूचक स्वप्नों का वर्णन विस्तार से किया है। जानकारी के लिये यहां कुछ विशिष्ट स्वप्नों का वर्णन किया जाता है—

धन प्राप्ति सूचक स्वप्न—स्वप्न में हाथी, घोड़ा, बैल और सिंह के ऊपर बैठकर गमन करता हुआ देखे तो शीघ्र धन मिलता है। पहाड़, नगर, ग्राम, नदी और समुद्र इनके देखने से भी अतुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तलवार, धनुष और बन्दूक आदि से शत्रुओं को ध्वन्स करता हुआ देखने से अपार धन मिलता है। स्वप्न में हाथी, घोडा, बैल, पहाड़, वृक्ष और गृह इन पर आरोहण करता हुआ देखने से भूमि के नीचे से धन मिलता है। स्वप्न में नख और रोम से रहित शरीर के देखने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है स्वप्न में दही, छत्र, फूल, चमर, अन्न, वस्त्र, दीपक, तांबूल, सूर्य चन्द्रमा, पुष्प, कमल, चन्दन, देव-पूजा, वीणा और अस्त्र देखने से शीघ्र ही अर्थ लाभ होता है। यदि स्वप्न में चिड़िया के पर पकड़कर उड़ता हुआ देखे तथा आकाश मार्ग में देवताओं की दुन्दुभि आवाज सुने तो पृथ्वी के नीचे से शीघ्र धन मिलता है।

सन्तानोत्पादक स्वप्न—स्वप्न में वृषभ, कलश, माला, गन्ध चन्दन, श्वेत, पुष्प, आम, अमरूद, केला, सन्तरा, नीबू और नारियल इनकी प्राप्ति होना देखने से तथा देव-मूर्ति, हाथी, सत्पुरुष, सिद्ध गन्धर्व, गुरु, सुवर्ण, रत्न, जौ, गेहूँ, सरसों, कन्या, रक्त-पान करना अपनी मृत्यु देखना, कल्पवृक्ष, तीर्थ, तोरण, भूषण राज्य, मार्ग और मट्ठा देखने से शीघ्र संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु फल और पुष्पों का भक्षण करना देखने से संतान मरण एवं गर्भपात होता है।

विवाह सूचक स्वप्न—स्वप्न में बालिका, मुरगी और क्रौंच पक्षी को देखने से, पान, कपूर, अगर, चन्दन और पीले फलों की प्राप्ति होना देखने से, रण, जुआ और विवाद में विजय ना हो

देखने से, दिव्य वस्त्रों का पहनना देखने से, स्वर्ण और चांदी के बर्तनों में खीर का भोजन करना देखने से एवं श्रेष्ठ पूज्य पुरुषों का दर्शन करने से शीघ्र विवाह होता है।

प्रत्यक्ष रिष्ट का लक्षण

जं दीसइ दिट्ठीए रिट्ठं अह किं पि तस्य ए णूणं।
तं भण्णइ पच्चक्खं रिट्ठं तस्स देवपरिहीणं ॥१३१॥

यद् दृश्यते दृष्ट्या रिष्टमथ किमपि तस्यैवं नूनम्।
तद् भण्यते प्रत्यक्षं रिष्टं तस्य देवपरिहीनम् ॥१३१॥

अर्थ—जो अशुभ चिन्ह आंखों से दिखलाई पड़ता है वह निश्चय से प्रत्यक्ष रिष्ट कहलाता है, यह देवताओं के प्रभाव से रहित होता है।

प्रत्यक्ष रिष्ट दर्शन द्वारा होने वाली मृत्यु का निश्चय

सयलदिसाउ णियच्छइ हरिहारिया एत्थ सो लहु मरइ।
सेयं भणेइ पीयं दियहतयं जीवए सो दु ॥१३२॥

सकला दिशः पश्यति हरिद्रारितोऽत्र स लघु म्रियते।
श्वेत भणति पीतं दिवसत्रयं जीवतिस तु ॥ १३२ ॥

अर्थ—जो सभी दिशाओं को हरित वर्ण की देखता है, वह निकट समय में मृत्यु को प्राप्त होता है और जो श्वेत वर्ण की वस्तु को पीले रंग की देखता है वह तीन दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है।

प्रत्यक्ष रिष्ट द्वारा सात दिन की आयु का निश्चय

समधाउ (ऊ) वि ण गेण्हइ सुगंधगंधं सया णरो जो दु।
दिणसत्तएण मच्चू णिद्दिट्ठो तस्स णियमेण ॥१३३॥

समधातुरमि न गृह्णाति सुगन्धगन्धं सदा नरो यस्तु।
दिनसप्तकेन मृत्युर्निर्दिष्टस्तस्य नियमेन ॥ १३३ ॥

अर्थ—जो व्यक्ति स्वस्थ होते हुए भी सुगन्ध का अनुभव न कर सके वह एक सप्ताह के भीतर निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त होता है।

प्रत्यक्ष रिष्ट द्वारा निकट मृत्यु चिन्हों का कथन

ण हु दीसइ ससिसूरो मेरु व्विय चलेइ वियसए वयणं।
सासं मुणइ सीयं लहु मरणं तस्स णिद्दिट्ठं ॥१३४॥

न खलु दृश्यते शशी सूर्यो मेरुरिव चलति विकसति वदनम्।
श्वासं मुञ्चति शीघ्रं लघु मरणं तस्य निर्दिष्टम् ॥१३४॥

अर्थ—जिसे सूर्य और चन्द्रमा दिखलाई न पड़ें; जो मेरु के समान चले और जो मुंह खोलकर जल्दी जल्दी श्वास छोड़े और ग्रहण करे वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है।

विवेचन—प्रत्यक्ष रिष्टों का वर्णन यद्यपि पिण्डस्थ रिष्टों के वर्णन में हो चुका है फिर भी आचार्य ने इन रिष्टों का वर्णन विषय को स्पष्ट करने के लिये किया है। आयुर्वेद, जिसका कि रिष्ट वर्णन मुख्य विषय है, में बतलाया है कि शरीर के वास्तविक स्वभाव और प्रकृति से बिलकुल विपरीत जो भी लक्षण प्रगट होते हैं वे सब प्रत्यक्ष रिष्ट हैं। लेकिन इन रिष्टों* का दर्शन सर्व साधारण व्यक्तियों को नहीं होता है बल्कि जिन व्यक्तियों की शुभ भावना है और जो सांसारिक मोह माया से अलिप्तप्राय हैं उन्हीं को रिष्टों का दर्शन प्रधानतः होता है। विशुद्ध आत्मा वाले व्यक्ति प्रत्यक्ष रिष्ट दर्शन द्वारा अपनी आयु का निश्चय कर आत्म कल्याण की ओर अग्रसर हो जाते हैं। ज्योतिष और आयुर्वेद इन दोनों शास्त्रों का निकास और विकास योगबल से ही प्राचीन आचार्यों ने किया था। वे चन्द्र और सूर्य नाड़ियों के द्वारा उनकी गति, स्थिति आदि से ही समस्त पदार्थों के गुणों को ज्ञात कर लेते थे जिन आचार्यों को दिव्य ज्ञान था उन्हों ने अपने ज्ञान बल से

---

*रहस्यमेतत्परमागमागतं महामुनीनां परमार्थ वेदिनां।
निगद्यते रिष्टमिदं शुभावनापरमात्मनामेव न मोहितात्मनाम् ॥
जराहजामृत्युभयेन भाविता भवांतरेष्वप्रतिबुद्धदेहिनः।
यतश्च ते बिभ्यति मृत्यु भीतितस्ततो न तेषां मरणं वदेदिह ॥
—क. का. पृ. ७४-५

पुष्पं फलस्य धूमोऽग्ने वर्षस्य जलदोदयः।
यथा भविष्यतो लिङ्गं रिष्टं मृत्योस्तथा ध्रुवम् ॥ —अ. ह. शा. ५-१

पदार्थों के स्वरूप ज्ञात कर नियम निर्धारित किये थे। अतएव प्रत्यक्ष रिष्ट दर्शन का विषय भी योग, ज्ञान और चारित्र से संबद्ध है। इन शक्तियों के रहने पर व्यक्ति वर्षों पहले से अपनी आयु का पता लगा सकता है।

जैनाचार्य ने इस प्रकरण में सिर्फ योग बल से दर्शन करने योग्य रिष्टों का ही निरूपण नहीं किया है, प्रत्युत सर्व साधारण के दृष्टिगोचर और अनुभव में आने वाले रिष्टों का कथन किया है सतर्क व्यक्ति इन रिष्टों के दर्शन से अपनी मृत्यु का ज्ञान कर आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त हो जाता है इस प्रत्यक्ष रिष्ट के प्रकरण में जैनाचार्य की इतनी अपनी विशेषता है कि उन्होंने मंत्र या देवाराधना की अपेक्षा इसमें नहीं रखी है। कारण मंत्र की साधना समस्त व्यक्तियों से संभव नहीं है; इसलिए कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त नियमों के द्वारा अपनी आयु को ज्ञात कर सकता है। तुलनात्मक दृष्टि से अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि इन प्रत्यक्ष रिष्टों में १३३ वीं गाथा में प्रतिपादित रिष्ट वैशिष्ट्य लिए हुए है। इसमें 'समधाउ' पाठ आचार्य की मौलिकता प्रगट कर रहा है।

सामान्य प्रत्यक्ष रिष्टों का उपसंहार और अप्रत्यक्ष रिष्टों के भेदों का कथन करने की प्रतिज्ञा

इय कहियं पच्चक्खं लिङ्गं च भणिज्जमाणयं सुणह।
बहुभसत्थदिट्ठं दुवियप्पं तं पि णियमेण ॥ १३५ ॥

इति कथितं प्रत्यक्षं लिङ्गं च भण्यमानं श्रृणुत।
बहुभेदशास्त्रदिष्टं द्विविकल्पं तदपि नियमेन ॥ १३५ ॥

अर्थ—इस प्रकार प्रत्यक्ष रिष्टों का प्रतिपादन किया गया है। अब अप्रत्यक्ष रिष्टों का कथन किया जाता है, जो अनेक शास्त्रों की दृष्टि से नियमतः दो प्रकार के हैं।

अप्रत्यक्ष रिष्ट के भेदों का स्वरूप

पढमं सरीरविसयं विदियं च जलाइदंसणे दिट्ठं।
जाणेह लिंगरिट्ठं णिद्दिट्ठं मुणिवरिंदेहिं ॥ १३६ ॥

प्रथमं शरीर विषयं द्वितीयं च जलादि दर्शने दिष्टम् ।
जानीत लिंगरिष्टं निर्दिष्टं मुनिवरेन्द्रैः ॥ १३६ ॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनियों ने बतलाया है कि प्रथम अप्रत्यक्ष रिष्ट वह है जो शरीर के बारे में वर्णित हो और द्वितीय वह है जिसका जलादि के दर्शन द्वारा वर्णन किया जाय।

शारीरिक अप्रत्यक्ष दर्शन की विधि और उसका फल

पक्खालित्ता देहं संलेविय चंदणेण सहिमेण ।
मंतेण मंतिऊणं पुण जोयइ वरतणं तस्स ॥१३७॥

ॐ ह्रीं लाह्राय लक्ष्मीं स्वाहा ।
लग्गंति मक्खियाओ जस्स पयत्तेण सयलअंगेसु ।
सो जीवइ छम्मास इत्र मखिअंमुणिवरिंदेहिं ॥१३८॥

प्रक्षाल्य देहं संलिप्य चन्दनेन सहिमेन ।
मन्त्रेण मन्त्रयित्वा पुनः पश्यत वरतनुं तस्य ॥ १३७ ॥

ॐ ह्रीं लाह्राय लक्ष्मीं स्वाहा ।
लगन्ति मक्षिका यस्य प्रयत्नेन सकलाङ्गेषु ।
स जीवति षण्मासानिति मुनिवरेन्द्रैः ॥ १३८ ॥

अर्थ—शरीर को स्नान आदि के द्वारा पवित्र कर और कपूर मिश्रित चन्दन के लेप से सुगन्धित कर "ॐ ह्रीं लाह्राय लक्ष्मीं स्वाहा" इस मन्त्र का जाप कर शारीरिक अप्रत्यक्ष रिष्टों का दर्शन करना चाहिए।

श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा कहा गया है कि जिसके शरीर पर यत्न पूर्वक रोके जाने पर मक्खियां सदा बैठतीं हैं वह छः मास जीवित रहता है।

अप्रत्यक्ष रिष्टों द्वारा सात दिन की आयु का निश्चय

न हु सुणइ सतणुसद्दं दीवयगंधं च णेव गिण्हेइ ।
सो जिअइ सत्त दियहे इय कहियं मरणकंडीए ॥१३९॥

न खलु शृणोति स्वतनुशब्दं दीपकगन्धं च नैव गृह्णाति ।
स जीवति सप्त दिवसानिति कथितं मरणकंडीकायाम् ॥१३९॥

अर्थ—मरणकंडिका* में यह कहा गया है कि जो अपने शरीर के शब्द को नहीं सुनता है, और दीपक की गन्ध का भी अनुभव नहीं कर सकता है, वह सात दिन जीवित रहता।

निकट मृत्यु द्योतक मरणचिन्ह

सिहि चंदया ण पिच्छइ सुधव (ल) कुसुमाइ भणइ रत्ताइं ।
ण णिएइ तुंगछाया लहु मरणं तस्स णिद्दिट्ठं ॥१४०॥

शिखि-चन्द्रकौ न पश्यति सुधवलकुसुमानि भणति रक्तानि ।
न पश्यति तुङ्गच्छायां लघु मरणं तस्य निर्दिष्टम् ॥१४०॥

अर्थ—जो सूर्य या चन्द्रमा को नहीं देखता जो सफेद फूलों को लाल कहे और जो लम्बी छाया को नहीं देख सके, उसकी निकट मृत्यु कही गई है।

सात दिन की आयु का निश्चय

जीहा जलं न मेलइ ण (य) मुणइ रसं ण फासए अंगं ।
सो जीवइ सत्त दिणे गुज्झे जो खिवइ णियहत्थं ॥१४१॥

जिह्वा जलं न मेलयति न च जानाति रसं न स्पृशत्यङ्गम् ।
स जीवति सप्त दिनानि गुह्ये यः क्षिपति निजहस्तम् ॥१४१॥

अर्थ—जिसकी जिह्वा से जल न गिरे जीभ से रस का अनुभव न हो, जिसका शरीर स्पर्श का अनुभव न करे और जो अपना हाथ गुप्त स्थानों पर रखे वह सात दिन जीवित रहता है।

---

*निर्वाणदीपगन्धं तु यस्तु नाघ्रति मानवः ।
सप्ताहेन तु धर्मज्ञाः पश्यन्त्यकंसुतं ध्रुवम् ॥

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानसतो बहून् । समुद्रपुरमेघानामसंपत्तौ च तत्स्वनात् ॥ तत्स्वनात् वा न गृह्णीते गृह्णीते वा ऽन्यशब्दवत् ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोत्यपि ॥ द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति । यश्चाकस्माच्च शृणोति तं ब्रुवन्ति गतायुषम् ॥ —अ. सा. ५१० ११

निकट मृत्यु द्योतक चिन्ह

पिच्छेइ अण्णवण्णं पदीवय सिहाएँ सो हु गयजीवो ।
दाहिणदिसाइ छाया ण पेच्छए णियसरीरस्स ॥१४२॥

पश्यत्यन्यवर्णे प्रदीपशिखायां स खलु गतजीवः ।
दक्षिणदेशायां छायां न पश्यति निजशरीरस्य ॥ १४२ ॥

अर्थ—जिसे दीपक की लौ में अपना शरीर विकृत वर्ण का दिखलाई पडे और दक्षिण दिशा में अपने शरीर की छाया न दिखलाई पडे वह मृतक के समान है ।

छः मास की आयु द्योतक चिन्ह

जाणुय पमाणतोए रोइ ई) मंतवि णियमुहं णियई ।
ण हु पिच्छइ जो सम्मं छम्मासं सो हु जीवेइ ॥१४३॥

जानुकप्रमाणतोये रोगी मन्त्रयित्वा निजमुखं पश्यति ।
न खलु पश्यति यः सम्यक् षण्मासान् स खलु जीवति ॥१४३॥

अर्थ—यदि कोई रोगी घुटनों भर पानी में मन्त्र उच्चारण कर अपने मुख को देखे पर वह उसे ठीक-ठीक न देख सके तो वह निश्चय से छः मास जीवित रहता है ।

विवेचन—यदि कोई व्यक्ति 'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमि उणे विसहर विस्सह जिण फुलिंग ह्रीं श्रीं नमः' । इस मन्त्र का या 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रः पुलिन्दिनीदेवि जल प्रति बिम्ब दर्शनं सत्यं कुरु कुरुस्वाहा' इस मन्त्र का १०८ बार जाप कर पार्श्वनाथ भगवान की अष्ट द्रव्य से पुजा कर किसी जलाशय में जाकर वहां अपने मुख का दर्शन यथार्थ न कर सके तो उसे अपनी छः मास की आयु समझनी चाहिए । जल में अपने मुख के प्रतिबिम्ब को नाक रहित देखने पर चार मास, आंख रहित देखने पर पांच मास, दक्षिण कर्ण रहित देखने पर तीन मास, वाम कर्ण रहित देखने पर छः मास और विकृत मुख के देखने पर सात मास की आयु शेष समझनी चाहिये ! किसी किसी के मत से मुख की छाया के रंग के अनुसार आयु का निश्चय किया गया है । तंत्र शास्त्र में कहा है कि जो व्यक्ति

मंगलवार की मध्य रात्रि में चांदनी रात में उठकर नग्न हो किसी जलाशय में आकर अपनी छाया को दक्षिण हाथ रहित देखता है वह तीन मास, दक्षिण पैर रहित देखता है वह चार मास और जो सिर रहित देखता है वह पन्द्रह दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है।

तेल में मुख दर्शन की विधि और उसके द्वारा आयु का निश्चय

संमज्जिऊण सयमवि वरतंबय भायणं सुरमणीयं।
अहिमंतिय तिल्लेणं णियमुहं णिअइ संझाए ॥१४४॥

सम्भार्ज्य स्वयमपि वरताम्र भाजनं सुरमणीयं।
अभिमन्त्र्य तैलेन निजमुखम् पश्यति सन्ध्यायाम् ॥१४४॥

अर्थ—स्वयं उत्तम तांबे का एक सुन्दर वर्तन साफ कर उसे तेल से भर और मन्त्र शक्ति से मंत्रित कर सन्ध्या समय उसमें अपना मुख देखना चाहिये

उवरम्मि देविवत्थं पच्छा पुण झंपिऊण कुंडीए।
तस्सुवरि देविजावं सयमेवं जाइकुसुमेहिं ॥ १४५ ॥

उपरि देवीवस्त्र पश्चात्पुनाराच्छाद्या कुण्ड्याः।
तस्योपरि देवीजापं स्वयमेव जातिकुसुमैः ॥ १४५ ॥

अर्थ—तेल रखे हुए तांबे को देवीवस्त्र—मंत्रित वस्त्र से ढककर स्वयं जुही के पुष्पों द्वारा मन्त्र जाप करना चाहिये।

कारवि खीरभोज्जं भूमीसयणेण बंभसहिएण।
धरिऊण आउरं पुण पहायवेलाए लोयेज्जा ॥१४६॥

कारयित्वा क्षीरभोज्यं भूमिशयनेन ब्रह्मसहितेन।
धृत्वाऽऽतुरं पुनः प्रभात वेलायां लोकयेत् ॥१४६॥

अर्थ—खीर का भोजन अन्य लोगों को कराके ब्रह्मचर्य धारण करते हुए भूमि पर शयन करना चाहिये। प्रातः काल उस रोगी व्यक्ति के सामने उस तैल पात्र को रखकर उसके मुख को देखना चाहिये।

जइ पिच्छइ ण हु वयणं मज्झे तिल्लस्स आउरो णूणं ।
सो जीवइ छम्मासे इह भणिअं दुविहवरलिंगं ॥१४७॥

यदि प्रेक्षते न खलु वदनं मध्ये तैलस्यातुरो नूनम्
स जीवति षण्मासानिति भणितं द्विविधवरलिंगम् ॥१४७॥

अर्थ—यदि वह रोगी उक्त तैल-पात्र में अपना मुख नहीं देख सके तो वह छः मास जीवित रहता है। इस प्रकार दो तरह के अप्रत्यरिष्टों कथन किया गया है।

अर्थ—यदि किसी रोगी के मरण समय का ज्ञान करना हो तो एक उत्तम ताम्बे के बर्तन में तेल-भरकर उसे 'ओं ह्रीं श्रीं कहें नमि उणे विसहर विसह जिण फुलिंग ह्रीं श्रीं नमः इस मंत्र का ११०० बार जाप कर मंत्रित करे । संध्या समय स्वयं अपने मुख का दर्शन उस तेल में करे। पश्चात् स्वच्छ सफेद या लाल वस्त्र उसे १०८ बार उपर्युक्त मंत्र से मंत्रित कर तेल वाले बर्तन को रात को ढक दे। फिर जुही के १०८ फूल लेकर प्रत्येक फूल को उपर्युक्त मंत्र को पढ़ पढ़ कर उस तेल के बर्तन के ऊपर रख दे। जिस दिन यह मृत्यु की परीक्षा की जा रही है उस दिन खीर या मिष्टान्न भोजन दीन दुखी गरीबों को वितरण करना चाहिये रात को ब्रह्मचर्य पूर्वक भूमि में शयन करना चाहिये। प्रातःकाल रोगी व्यक्ति से ९ बार णमोकार मंत्र या उपर्युक्त मंत्र का जाप करने के बाद उस तेल वाले बर्तन में उसे मुँह दिखलाना चाहिए। यदि रोगी तेल के बर्तन में अपना मुख नहीं देख सके तो उसकी छः मास आयु समझना चाहिए।

रोगी की मृत्यु परीक्षा की एक अन्य विधि यह भी है कि रविवार को मध्यान्हकाल दो बजे के लगभग "ओं ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रैं ह्रः पुलिंदिनी देवी मम अस्य रोगिणः मृत्युसमयं वद वद स्वाहा। इस मंत्र को शुद्ध मन से १०८ बार जाप कर धूप में अपनी छाया के दर्शन रोगी को कराये, यदि रोगी छाया के यथार्थ रूप में दर्शन करे तो आयु शेष, अन्यथा शीघ्र मृत्यु समझनी चाहिए। तन्त्र शास्त्र में यह भी कहा गया है। कि शनीवार को उपर्युक्त मंत्र का जापकर चन्दन या रोरी का तिलक लगाकर मंत्र पढ़ता हुआ रोगी के

पास जाकर उसे पूछे कि तुम्हें तिलक किस रूप में दिखलाई पड़ता है। यदि रोगी को वह तिलक शुष्क और विकृत रूप में दिखलाई पडे तो छ मास में मृत्यु, काला दिखलाई पडे तो सात दिन में मृत्यु और नीला दिखलाई पडे तो एक मास में मृत्यु समझनी चाहिये। ज्योतिष शास्त्र में रोगी की मरण परीक्षा का निम्न गणित प्रकार भी बताया गया है, इस गणित की मैंने दो चार बार परीक्षा की है, ठीक घटता है,।

रोगी से एक से लेकर एक सौ आठ तक के मध्य की कोई संख्या पूछे; रोगी अपने इष्ट देव का ध्यान कर अपने समस्त शरीर को देखकर कोई संख्या बतावे। जो संख्या रोगी के मुंह से निकले उसे उसके नामाक्षरों की संख्या से गुण कर दे और उस संख्या में वार की संख्या और जोड़ दे। वार की संख्या निकाल ने का नियम यह है कि रविवार की संख्या १, सोमवार की २, मंगलवार की ३, बुधवार की ४, बृहस्पति की ५, शुक्रवार की ६, और शनिवार की ७, होती है। इन सब अंकों के योगफल में—प्रश्न सं × नामाक्षर सं.+ वार संख्या में ११ का भाग देने पर विषम शेष रहे तो रोगी जीवित रहेगा और सम शेष बचे तो जल्द मरण होगा। इस गणित के नियम का उपयोग तभी करना चाहिये जब शारीरिक दृष्टि से अरिष्ट दिखलाई पडे एक स्थान पर इस नियम के संबंध में यह भी कहा गया है कि यदि रोगी का मरण अवमश्यंभावी हो तो शेष प्रमाण दिनों में मरण समझना चाहिये।

प्रश्न द्वारा रिष्ट वर्णन की प्रतिज्ञा

णाणाभेयविभिण्णं पण्हं सत्थाणुसारदिट्ठीए।
णिसुणह भणिज्जमाणं रिट्ठं उद्देसमित्तेण ॥१४८॥

नानाभेदविभिन्नं प्रश्नं शास्त्रानुसारदृष्ट्या।
निश्रृणुत भण्यमानं रिष्टं मुद्देशमात्रेण ॥ १४८ ॥

अर्थ—अब प्रश्नों के द्वारा वर्णित रिष्टों को सुनो, रिष्ट कथन के उद्देश्य मात्र से जिनका वर्णन नाना शास्त्रों की दृष्टि से किया जायगा।

प्रश्नों के भेद

अंगुलि तह आलत्तय गोरोयण पण्हअक्खरेसु उणं ।
अक्खर होरा लग्गं अट्ठवियप्पं हवे पण्हं ॥१४९॥

अंगुल्या तथाऽलक्तकेन गोरोचनया प्रश्नाक्षरैः पुनः ।
अक्षरहोरालग्नैरष्टविकल्पो भवेत्प्रश्नः ॥ १४९ ॥

अर्थ—प्रश्नों द्वारा रिष्टों का ज्ञान आठ प्रकार से किया जाता है—प्रश्न के आठ भेद हैं—अंगुली प्रश्न, अलक्त प्रश्न, गोरोचन प्रश्न, प्रश्नाक्षर प्रश्न, अक्षर प्रश्न, होरा प्रश्न, शब्द प्रश्न, और प्रश्न लग्न प्रश्न।

अंगुली प्रश्न की विधि

सयअट्ठोत्तरजाविअं मंतं वरमालाईएँ कुसुमेहिं ।
जिणवड्ढमाणपुरओ सिज्झइ मंतो ण संदेहो ॥१५०॥

अष्टोत्तरशतजपितो मन्त्रो वरमालत्याः कुसुमैः ।
जिनवर्धमानपुरतः सिध्यति मन्त्रो न सन्देहो ॥ १५० ॥

अर्थ—श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा के सम्मुख उत्तम मालती के पुष्पों से' ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरहन्ताणं ह्रीं अवतर-अवतर स्वाहा' इसका १०८ बार जाप किया जाय तो यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्धि के अनन्तर निम्न प्रकार क्रिया करनी चाहिये:-

अहिमंतिय मंतेणं दाहिणहत्थस्स तज्जणी णूणं ।
सयवारं दिट्ठुवरिं धरेह किं जंपिए बहवे ॥ १५१ ॥

अभिमन्त्र्य मन्त्रेण दक्षिणहस्तस्य तर्जनीं नूनम् ।
शतवारं दृष्ट्युपरि धरत किं जल्पितेन बहुना ॥१५१॥

अर्थ—दाहिने हाथ की तर्जनी को सौ बार उक्त मंत्र से मंत्रित कर आंखों के ऊपर रखे। इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

पुण जोयावह भूमी रविबिंबं जो णिएइ भूमीए।
सो जीवइ छम्मासे अंगुलिपण्हं समुद्दिट्ठं ॥ १५२ ॥

पुनर्दर्शयत भूमिं रविबिम्बं यः पश्यति भूमौ ।
स जीवति षण्मासानङ्गुलिप्रश्नः समुद्दिष्टः ॥ १५२ ॥

अर्थ—उपर्युक्त क्रिया के अनन्तर रोगी को भूमि की ओर देखने को कहे। यदि वह सूर्य के बिम्ब को भूमि पर देखे तो छः महीने जीवित रहता है। इस प्रकार अंगुलि प्रश्न का वर्णन किया।

अलक्त और गोरोचन प्रश्न की विधि

अहिमंतिय सयवारं कंसयवर भायणम्मि आलत्तं ।
इगवण्णगोमएणं अट्ठहियसएण जविऊण ॥ १५३ ॥

अभिमन्त्र्य शतवारं कांस्यवरभाजनेऽलक्तम् ।
एकवर्णगोमयेनाष्टाधिकशतेन जपित्वा ॥ १५३ ॥

अर्थ—एक रंग की गाय के गोबर से किसी स्थान को लीप कर और उस स्थान पर १०८ बार "ओं ह्रीं अर्हं णमो अरहन्ताणं ह्रीं अवतर अवतर स्वाहा" । इस मंत्र का जाप कर किसी कांसे के बर्तन में अलक्त (लाक्षा) को भर कर १०० बार मन्त्र से मंत्रित करे।

पक्खालिय करचरणादी जदि पुण आउरस्स सम (सं) लेवे ।
[× × × × × × × × × × × × × × × ×] ॥१५४॥

प्रक्षाल्य करचरणादीन् यदि यदि पुनरातुरस्य संलपयेत् ।
[× × × × × × × × × × × × × × × × × ×] ॥१५४॥

अर्थ—रोगी के हाथ, पैर आदि अंगों को धोकर सुगंधित लेप करना चाहिए।

पढमं गोमुत्तेणं पुणोवि खीरेण रोयगहियस्स ।
पक्खालिय करजुअलं चिंतह दिण-मास-वरिसाइं ॥१५५॥

प्रथमं गोमूत्रेण पुनरपि क्षीरेण रोगगृहीतस्य ।
प्रक्षाल्य करयुगलं चिन्तयत दिन-मास-वर्षाणि ॥१५५॥

अर्थ—रोगी के हाथ को पहले गोमूत्र से और फिर दूध से धोकर दिन, महीना और वर्ष का चिन्तन करे।

पणरह वामकरम्मि य पण्णरह चिंतेह दाहिणे हत्थे ।
सुक्कं पक्खं वामे तह चिंतह दाहिणे कसणं ॥१५६॥

पञ्चदश वामकरे च पञ्चदश चिन्तयत दक्षिणे हस्ते ।
शुक्लं पक्षं वामे तथा चिन्तयत दक्षिणे कृष्णम् ॥ १५६ ॥

अर्थ—पन्द्रह की संख्या बांये हाथ में और पन्द्रह की संख्या दाहिने हाथ में कल्पना करे । बांये हाथ में शुक्ल पक्ष और दाहिने हाथ में कृष्ण पक्ष की कल्पना करे ।

पडिवइआइंदिणा उभयकरेसु (य) कणिट्ठिआईसु ।
चिंते जह पयडाइं रेहाणुवरिं पयत्तेण ॥ १५७ ॥

प्रतिपदादि दिनान्युभयकरयोश्च कनिष्ठिकादिषु ।
चिन्तयेद्यथाप्रकटानि रेखाणामुपरि प्रयत्नेन ॥१५७॥

अर्थ—दोनों हाथ की अंगुलियों पर उस पक्ष के दिनों की-प्रतिपदादि तिथियों की कल्पना करे और सावधानी से रेखाओं पर जो प्रकट हों उन पर विचार करे ।

करजुअलं उव्वट्टिअ पच्छा गोरोयणाइ दिव्वाए ।
अहिमंतिय सयवारं पच्छा जोएह करजुअलं ॥१५८॥

करयुगलमुद्धृत्य पश्चाद्गोरोचनया दिव्यया ।
अभिमन्त्र्य शतवारं पश्चात्पश्यत करयुगलं ॥१५८॥

अर्थ—मन्त्र से मंत्रित कर गोरोचन से हाथों को साफकर पुनः उक्त मन्त्र से सौ बार मंत्रित कर तब दोनों हाथों को देखना चाहिए ।

जत्थ करे अह पव्वे जत्तिअमित्ता य कसणबिंदू य ।
तत्तिय दिणाइ मासा वरिसाइँ जिएइ सो मणुओ ॥१५९॥

यत्रकरेऽथ पर्वणि यावन्मात्राश्च कृष्णा बिन्दवश्च ।
तावन्ति दिनानि मासानि वर्षाणि जीवति स मनुजः ॥ १५९ ॥

अर्थ—वह मनुष्य उतने ही दिन, मास और वर्ष तक जीवित रहता है जितने कृष्ण बिन्दु उसके हाथ के पर्वों में लगे रह जाते हैं।

विवेचन—अलक्त प्रश्न की विधि यह है कि किसी चौरस पृथ्वी को एक वर्ण की गाय के गोबर से लीप कर उस स्थान पर 'ओं ह्रीं अर्हं णमो अरहंताणं ह्रीं अवतर अवतर स्वाहा' इस मंत्र को १०८ बार जपना चाहिए। फिर कांसे के बर्तन में अलक्त को भरकर सौ बार मंत्र से मंत्रित कर उक्त पृथ्वी पर उस बर्तन को रख देना चाहिये पश्चात् रोगी के हाथों को गोमूत्र और दूध से धोकर दोनों हाथों पर मन्त्र पढ़ते हुए दिन, मास, और वर्ष की कल्पना करनी चाहिये। अनन्तर पुनः सौबार उक्त मंत्र को पढ़कर अलक्त से रोगी के हाथ धोना चाहिए। इस क्रिया के पश्चात् रोगी के हाथों को देखना चाहिये उसके हाथों के संधि स्थानों में जितने बिन्दु काले रंग के दिखलाई पड़ें उतने ही दिन मास और वर्ष की आयु समझनी चाहिए।

गोरोचन प्रश्न की विधि यह है कि अलक्त प्रश्न के समान एक वर्ण की गाय के गोबर से भूमि को लीपकर उपर्युक्त मन्त्र से १०८ बार मंत्रित कर कांसे के बर्तन में गोरोचन को रखकर सौ बार मंत्र से मंत्रित करना चाहिये। पश्चात् रोगी के हाथ गोमूत्र और दूध से धोकर मन्त्र पढ़ते हुए हाथों पर वर्ष, मास, और दिन की कल्पना करनी चाहिए। पुनः सौ बार मंत्रित गोरोचन से रोगी के हाथ धुलाकर उन हाथों से रोगी के मरण समय की परीक्षा करना चाहिए। रोगी के हाथों के संधि स्थानों में जितने काले रंग के बिन्दु दिखलाई पड़ें उतने ही संख्यक दिन मास और वर्ष में उसकी मृत्यु समझनी चाहिए।

प्रश्नाक्षर की विधि

रोयगहियस्स कोई जइ पुच्छइ तो चएवि तं वयणं।
काराविज्जइ पण्हं इयमंतं तम्मुहे जविउं ॥१६०॥

रोगगृहीतस्य कोऽपि यदि पृच्छति तदा त्यक्त्वा तद्वचनम्।
कार्यते प्रश्न इमं मन्त्र तन्मुखे जपित्वा ॥ १६० ॥

यदि कोई किसी रोगी के बारे में प्रश्न करे तो उस प्रश्न को छोड़कर " ओं ह्रीं वद वद वाग्वादिनी सत्यं ह्रीं स्वाहा " इस मन्त्र का जाप उससे करा, फिर नया प्रश्न करवाना चाहिए।

प्रश्नों के गणित द्वारा फल का कथन

अक्खरपिंडं विउणं मायापिंडं च चउगुणं किच्चा।
मूलसरेहि य भाओ मरइ समे जियइ विसमेसु ॥१६१॥

अक्षरपिण्डं द्विगुणं मात्रापिण्डं च चतुर्गुणं कृत्वा।
मूलस्वरैश्च भागो म्रियते समैर्जीवति विषमैः ॥१६१॥

अर्थ—प्रश्न के सभी व्यञ्जनों को दुगुना और मात्राओं को चौगुना कर जोड़ दो, इस योग फल में स्वरों की संख्या से भाग देने पर सम शेष आये तो वह जीवित रहेगा और विषम शेष आने पर उसका मरण होगा, ऐसा समझना चाहिए।

विवेचन—किसी रोगी के संबंध में ज्ञात करने के लिये पृच्छक जो प्रश्न छोड़कर "ओं ह्रीं वद वद वाग्वादिनी सत्यं ह्रीं स्वाहा" इस मंत्र को पृच्छक से १०८ बार या ६ बार पढ़वाकर पुनः उससे प्रश्न पूछना चाहिए। मंत्र जाप कराने के अनन्तर यदि प्रातः पृच्छक रोगी के संबन्ध में पूछता हो तो पुष्प का नाम, मध्याह्नकाल में फल का नाम, अपराह्न में देवता का नाम और सायङ्काल में तालाब या नदी का नाम पूछ कर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिये। किसी किसी आचार्य का यह भी मत है कि जो वाक्य इच्छानुसार मंत्रोच्चारण के अनन्तर पृच्छक कहे उसी के प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिए। इन प्रश्नाक्षरों में व्यञ्जनों की संख्या को दूना और मात्राओं की संख्या को चौगुना कर योग फल में प्रश्नाक्षरों की स्वर संख्या से भाग देने पर सम शेष आवे तो रोगी का जीवन शेष और विषम शेष आवे तो रोगी की मृत्यु समझनी चाहिए।

उदाहरण—हरिश्चन्द्र अपने रोगी भाई मोहन के संबन्ध में पूछने आया कि मोहन का रोग अच्छा होगा या नहीं। प्रश्नशास्त्र के ज्ञाता ने उपर्युक्त मन्त्र का हरिश्चन्द्र से १०८ बार जाप कराने के अनन्तर प्रातःकाल आने के कारण उससे किसी फूल का नाम पूछा तो उसने अपने इष्ट देव का स्मरण कर 'मालती' पुष्प का नाम लिया

इस प्रश्न वाक्य का विश्लेषण किया तो म्+अ+अ+ल्+त्+इ+ई हुआ। इसमें तीन व्यञ्जन और ५ मात्राएं हैं। ३×२=६, ५×४=२०, २०+६=२६ योगफल हुआ। उपर्युक्त प्रश्न वाक्य में स्वर=म्+आ+ल्+अ+त्+ई=आ+अ+ई=३ है। अतः २६÷३=८ लब्धि और २ शेष आया। यहां शेष २ सम राशि है अतः रोगी का जीवन शेष कहना चाहिए।

'केरलतत्त्व' में रोगी के जीवन, मृत्यु सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देते हुए बताया गया है कि ४० क्षेपकांक को पिण्डाङ्क में जोड़कर ३ तीन का भाग देने से एक शेष में रोगी का जीवन शेष, दो में कष्ट साध्य और शून्य शेष में रोगी की मृत्यु समझनी चाहिए। पिण्डाङ्क बनाने का नियम यह है कि मंत्रोच्चारण के अनन्तर पृच्छक से उपर्युक्त विधि के अनुसार पुष्प, फल आदि के प्रश्न वाक्य का ग्रहण कर उसके वर्ण और मात्राओं की संख्या निम्न प्रकार होनी चाहिए।

अ=१२, आ=२१, इ=११, ई=१८, उ=१५, ऊ=२२, ए=१८, ऐ=३२, ओ=२५, औ=११, अं=२५, क=१३, ख=११, ग=२१, घ=३०, ङ=१०, च=१५, छ=२१, ज=२३, झ=२६, ञ=२६, ट=१०, ठ=१३, ड=२२, ढ=३५, ण=४५, त=१४, थ=१८, द=१९, ध=१३, न=३५, प=२८, फ=१८, ब=२६, भ=२७, म=८६, य=१६, र=१३, ल=१३, व=३५, श=२६, ष=३५, स=३५ और ह=१२।

उदाहरण—पृच्छक से मध्याह्न काल का प्रश्न होने के कारण फल का नाम पूछा तो उसने आम का नाम लिया। आम इस प्रश्न वाक्य का पिण्ड उपर्युक्त विधि से बनाया तो आ=२१+म ८६, २१+८६=१०७ पिण्डांक, १०७+४० क्षेपकांक १०७+४०=१४७÷३=४९ लब्धि और शून्य शेष। अतः जिस रोगी के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा गया है, उसकी मृत्यु समझनी चाहिए।

पुनः प्रश्नाक्षरों के गणित द्वारा रोगी की मृत्यु ज्ञात करने की विधि

दुअक्खराइँ दूणह भायं लोएहिं देह पुण तेसु।
जीवइ विसमेण रोई समेसु मरणं च सुण्णेण ॥१६२॥

ह्यक्षराणि [?] द्विधाकृत्य भागं लोकैर्दत्त पुनस्तेषु ।
जीवति विषमेण रोगी समैर्मरणं च शून्येन ॥ १६२ ॥

अर्थ—पहले की गाथा के अनुसार जो पिण्ड संख्या आई हो उसमें दो का भाग देकर रखलो। फिर चौदह से इस विभक्त राशि में भाग देने पर असम शेष रहे तो रोगी का जीवन शेष और शून्य या सम शेष हो तो रोगी की मृत्यु अवगत करनी चाहिये।

उदाहरण—पहली गाथा का प्रश्न वाक्य 'मालती' पुष्प था इसका पिण्डांक विश्लेषण के अनुसार २६ आया था। इसमें दो का भाग दिया तो—२६÷२=१३ विभक्तांक हुआ। १३÷१४= लब्धि०, शेष १३ रहा, यह शेष संख्या विषम है, अतः रोगी का जीवन शेष समझना चाहिये।

विवेचन—ज्योतिष शास्त्र में तात्कालिक फल बतलाने के लिए तीन सिद्धांत प्रचलित हैं—प्रश्नाक्षर-सिद्धांत, प्रश्नलग्न सिद्धांत, स्वरविज्ञान सिद्धांत। जैनाचार्य ने उपर्युक्त दो गाथाओं में प्रश्नाक्षर वाले सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धांत का मूलाधार मनोविज्ञान है। क्योंकि बाह्य और आभ्यंतरिक दोनों प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों के आधीन मानव मन की भीतरी तह में जैसी भावनाएं छुपी रहती हैं वैसे ही प्रश्नाक्षर निकलते हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता फ्रायड का कथन है कि अबाध भावानुषङ्ग से हमारे मन के अनेक गुप्तभाव भावी शक्ति अशक्ति के रूप में प्रगट हो जाते हैं तथा उनसे समझदार व्यक्ति सहज में ही मन की धारा और उससे घटित होने वाले फल को समझ लेता है। इनके मतानुसार मन की दो अवस्थाएं हैं—सज्ञान और निर्ज्ञान। सज्ञान अवस्था अनेक प्रकार से निर्ज्ञान अवस्था के द्वारा ही नियंत्रित होती रहती है। प्रश्नों की छानबीन करने पर इस सिद्धांत के अनुसार पूछने पर मानव निर्ज्ञान अवस्था विशेष के कारण ही झट उत्तर देता है और उसका प्रतिबिम्ब सज्ञान मानसिक अवस्था पर पड़ता है। अतएव प्रश्न के मूल में प्रवेश करने पर संज्ञात, असंज्ञात, अन्तर्ज्ञात और निर्ज्ञात ये चार प्रकार की इच्छाएँ मिलती हैं। विशेषज्ञ पृच्छक के द्वारा उच्चारित प्रश्नाक्षरों का विश्लेषण कर संज्ञात इच्छा का पता लगा लेता है

इसलिये इस सिद्धांत के अनुसार अन्य व्यक्ति से प्रश्न न पूछ स्वयं रोगी से प्रश्न पूछकर प्रश्नाक्षर ग्रहण करना चाहिये। तभी उनके विश्लेषण द्वारा कहा गया प्रश्न फल सत्य हो सकेगा।

आय के आठ भेदों का वर्णन

अ-क-च-ट-त-प-य-स वग्गा आयाणं संकमो हु वग्गेहिं।
धय-अग्गि-सीह-साण-वसह-खर-गय-दंखजुत्ता य ॥१६३॥

अ-क-च-ट-त-प-य-शा वर्गा आयानां संक्रमः खलु वर्गैः।
ध्वज-अग्नि-सिंह-श्वान-वृषभ-खर-गज-काकयुक्ताश्च ॥१६३॥

अर्थ—अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग आठ क्रमशः ध्वज, अग्नि, सिंह, श्वान, वृषभ, खर, गज और काक ये आठ आय* हैं।

आयों के चार विभग

जलिया लिंगिय दड्ढा संताया हुंति एत्थणियमेण।
चउभेया णायव्वा ते आया सत्थदिट्ठीए ॥ १६४ ॥

ज्वलिता आलिङ्गिता दग्धाः शांता आया भवंत्यत्र नियमेन।
चतुर्भेदा ज्ञातव्यास्त आयाः शास्त्रदृष्ट्या ॥ १६४ ॥

---

*पढमं तईयसत्तम रससरपढमतईय वग्गवण्णाइं। आलिंगियाइं सुहया उत्तर संकड अणामाइं ॥ कुच्चजुगवसुदिससरआ बीयचउत्थाई वग्गवण्णाइं। अहिधूमिआइं मज्झा ते उण अहराइं वियत्ताइं ॥ सररिउहदिवाअरसराइं वग्गाण पंचमा वण्णा। उड्ढा वियव संकड अहराहर असुहणामाइ ॥ सव्वाण होइ सिद्धि पन्हे आलिंगिए हि सव्वोहिं। अहिधूमिएहिं मज्झा णासइ उड्ढेहि सहलेहिं ॥ उत्तर सरसंजुत्ता उत्तरआ उत्तरुत्तरा हुंति। अहरेहिं उत्तरतमा अहराहिं अहरेहिं णायव्वा अहरसरेहिं जुत्ता उड्ढा हुंति अहरअहरतमा। कज्जइ साहांति सुइरं अधमा अधमाई किं बहुणा ॥ उड्ढसरेहिं जुत्ता दड्ढतमा हुंति दड्ढया वण्णा ते वासयंति कज्जं बलाबलमीसिय सयलेसु ॥ —अ. चू. सा. गा. २–८

ध्वांक्षखरासभ वृषगजसिंहध्वजानलाः। यथोत्तरबलाः सर्वे ज्ञातव्याः स्वपारगैः ॥ प्रभा योधे पुरे वेरो मित्रनारीगृहेषु च आयाधिके भवेल्लाभो न लाभो बलवर्जिते ॥ ध्वजो धूमोऽथ सिंहश्च सैरमेय खरो गजः।

अर्थ—प्राचीन शास्त्रों के अनुसार सभी आय ज्वलिता, आलिङ्गिता, दग्धा, और शान्ता इन चार भेदों में विभक्त हैं।

आयस्थानमत का क्रम

आलिंगिया य पुरओ मुक्का दड्ढा या रविजुया जालिया।
सेसाया पुण संता समरेहगया तहच्चेव ॥ १६५ ॥

आलिङ्गितांश्च पुरतो मुक्त्वा दग्धांश्च रवियुनाज्ज्वलितान्।
शेषायान्पुनः शान्तान् समरेखागतांस्तथा चैव ॥ १६५ ॥

अर्थ—सभी आयों को एक सीधी पंक्ति में आलिङ्गिता, दग्धा, ज्वलिता और शान्ता इसके क्रम से रखना चाहिए। अर्थात् ध्वज आलिङ्गिता, अग्नि दग्धा, सिंह ज्वलिता और श्वान शान्ता; पुनः वृषभ आलिङ्गिता, खर दग्धा, गज ज्वलिता और काक शान्ता संज्ञक हैं। *

आलिङ्गिता ध्वज, वृषभ	दग्धा अग्नि, खर	ज्वलिता सिंह, गज	शान्ता श्वान, काक

* ध्वांक्षश्चेति क्रमेणात्र आया अष्टौ दिगष्टके॥ प्रतिपदाद्युयन्ते तिथि-मुक्तिप्रमाणतः। अहोरात्रे पुनः सर्वे यामभूत्या भ्रमन्ति च॥ आया वर्गाष्टके ज्ञेया दिगष्टकक्रमेण च। स्वोदये मृत्युदं ज्ञेयं सर्वकार्येषु सर्वदा।

—न० चे० पृ० २१४-२१५

धय धूमसीहमंडल विसखरगयधायसा सराहुओ। पडिवयपहुदिपेहुओ पुव्वाइ निवासिणो आया॥ थिर ओग्गयासवासी नरदाहिण दिवस धवल पक्ख-बला। जे य समा ते सव्वे अवसेसा ताण विवरीया॥ ते ओ दहो अ पहरुया थिरो माणओ मही मज्झा। ठाण चलो य जुवाणो महीसओ वसइ सीसंमि॥ अक्खाणो तिगेण दहणो दिणचवलो बालविप्पतिरियं वो। कोवण अणप्पणद्धो धूमो मुहमंडले वसइ॥ पीअलो दयसरिसो रयाणोच्चिलो माणवो महीदहिरम्। खत्तिय जुवाण सूरो निवसइ कंठीरवो कंठे॥ थविरो नारय सुद्दो सुक्के आयासनीलचउरंसो। स (र) य चवल सोणि मंडलवासी तह मंडलो खिच्चम्॥ मज्झोषदेववेसो मेयं जलअवज्झंकनिम्महिओ। दिणचवल सद्दसीलो निवसइ वसहोउ अंघाए॥ धूमल

सपाद आर्यों का कथन

ढं-गय-वसह-रासह-हुअवह-हरि-रक्खोह (?) साणंता ।
दो दो आत्र सवाया णायव्वा ते पयत्तेण ॥१६६॥

काक-गज-वृषभ-रासभ-हुतवह-हरि-रक्षोघ (?) श्वानान्ताः ।
द्वौ द्वावार्या सपादौ ज्ञातव्यौ तौ प्रयत्नेन ॥ १६६ ॥

अर्थ—काक, गज, वृषभ, खर, अग्नि, सिंह, ध्वज और श्वान, इनमें दो दो आय के मध्य में पाद होते हैं। अर्थात् आठ आय की राशियां और दो-दो के मध्य में रहने वाले पाद की एक एक राशि, इस प्रकार आर्यों में द्वादश राशि की कल्पना करनी चाहिये।

आर्यों की द्वादश राशियों का कथन

गय वसहे [वि] य चलणे मेसो पुरदो वि हो इणायव्वे ।
मेसाई मीणंता रासीओ हुंति णियमेण ॥ १६७ ॥

येरसुकके तिरयं चोवेसवाय बहुवक्रो । भूथिइ इ दिवसचवलो दुट्ठखरो वसइमंड भक्रि ॥
अ० ति० प्र० १ गा० ५-१२

ध्वजो धूम्रश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गजः । ध्वांक्षश्चायाष्टकं ज्ञेयं शुभाशुभं क्रमात् ॥ ध्वजे सूर्यश्च विज्ञेयो धूम्रे भौमस्तथैवच । सिंहे शुक्रश्च विज्ञेयः श्वाने सौम्यस्तथैव च ॥ वृषे गुरुश्च विज्ञेयः खरे सूर्यसुतस्तथा । गजे ध्वांक्षे चन्द्रराहू ह्येते च पतयः स्मृताः ॥ ध्वजकुंजरसिंहेषु वृषे सिद्धिर्भवेत् ध्रुवम् । ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे कार्यसिद्धिर्भवेन्नहि ॥ ध्वजे गजे वृषे सिंहे शीघ्रं लाभो भवेद ध्रुवम् । ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे नाशश्च कलहप्रदः ॥ ध्वजे गजे वृषे सिंहे नष्टलाभो भवेद् ध्रुवम् । ध्वांक्षे धूम्रे खरे श्वाने हानिर्भवति निश्चितम् । ध्वजे सिंहे वृषेचैव कुंजरे कुशलं भवेत् । ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे नास्तीति कुशलं वदेत् ॥ ध्वजे कजे स्थिरश्चैव श्वाने सिंहे च चंचलः । वृषे धूम्रे प्रयाणस्थः खरे ध्वांक्षे स कष्टकः ॥ ध्वजेधूम्रे समीपस्थो दूरस्थो गजसिंहयोः । वृषे खरे च मार्गस्थो ध्वांक्षे श्वाने पुनर्गत ॥ ध्वजे पक्षमिति प्रोक्तं धूम्र सप्तदिनं तथा । एकविंशश्च सिंहे च श्वाने मासं तथैव च ॥ वृषे तु सार्द्धमासं च खरे मासद्वयं तथा । गजे मासत्रयं प्रोक्तं ध्वांक्षे द्व्ययन सम्मितम् ॥
—के० त० सं० पृ० ३८-४०

गज-वृषभ-चरणेष्वपि च मेषः पुरतोऽपि भवेज्ज्ञातव्यम् ।
मेषादयो मीनान्ता राशयो भवन्ति नियमेन ॥ १६७ ॥

अर्थ—गज और वृषभ के मध्य के पाद पर मेष को समझना आगे भी इसी प्रकार मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, और मीन इन बारह राशियों को स्थापित कर लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि गज और वृषभ के मध्य वाले चरण में मेष, खर और अग्नि के मध्य वाले चरण में वृष, सिंह और ध्वज के मध्यवाले चरण में मिथुन एवं श्वान और काक के मध्य वाले चरण में कर्क राशि समझनी चाहिए। पश्चात् गज को सिंह राशि संज्ञक, वृषभ को कन्या, खर को तुला, अग्नि वृश्चिक, सिंह को धनु, ध्वज को मकर, श्वान को कुम्भ और काक को मीन राशि संज्ञक समझना चाहिए।

नक्षत्रों के चरणानुसार राशि का ज्ञान

अस्सिणि-भरणी-कित्तियचलणे मेसो हवेइ इय भणियं ।
पुरदो इय णायव्वं रेवइ परियंतरिक्खेहिं ॥ १६८ ॥

अश्विनी-भरणी-कृत्तिकाचरणे मेषो भवतीति भणितम् ।
पुरत इति ज्ञातव्यं रेवतीपर्यन्तर्क्षैः ॥ १६८ ॥

अर्थ—अश्विनी, भरणी और कृत्तिका के एक चरण पर्यन्त मेष राशि—अश्विनी नक्षत्र के चार चरण, भरणी नक्षत्र के चार चरण और कृत्तिका का एक चरण इस इस प्रकार इन नौ चरणों की एक राशि कही गई है। आगे भी रेवती नक्षत्र पर्यन्त इस क्रम से बारह राशियों को समझ लेना चाहिए।

विवेचन—ज्योतिष शास्त्र में आश्विनी, भरणी, कृत्तिका रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २८ नक्षत्र माने गये हैं। इनमें आज-कल अभिजित को छोड़ शेष २७ नक्षत्रों को ही व्यवहार में लाया जाता है। इन २७ नक्षत्रों में प्रत्येक

नक्षत्र के चार चार चरण माने गये हैं, इस प्रकार कुल नक्षत्रों के २७×४=१०८ चरण होते हैं। ६ चरण की एक राशि मानी गई है अतः १०८÷६=१२ राशियां होती हैं। प्रत्येक नक्षत्र के चरणों के अक्षर निम्न प्रकार अवगत करना चाहिये—,

चू, चे, चो ला=अश्विनी, ली, लू, ले लो भरणी, अ, ई, ऊ, ए कृत्तिका, ओ. व. वी. वू. रोहिणी वे, वो, का, की, मृगशिरः कु, घ, ङ, छः आर्द्रा, के, को, हा, ही पुनर्वसु, हु, हे, हो डा पुष्य डी, डू, डे, डो आश्लेषा, मा, मी, मू. मे. मघा मो. टा. टी, टू, पूर्वाफाल्गुनी, टे, टो, पा. पी. उत्तराफाल्गुनी, पू ष ण ठ हस्त, पे पो रा री चित्रा, रू रे रो ता स्वाति, ती तू ते तो विशाखा ना नी नू ने अनुराधा, नो या पी यू ज्येष्ठा, ये, यो, भा, भी मूल, भू, धा, फ, ढा, पूर्वाषाढ़ा, भे भो जा जी उत्तराषाढा, जू, जे, जो खा अभिजित, खी, खू, खे, खो श्रवण, गा गी गू गे धनिष्ठा गो, सा, सी, सु, शतभिषा, से, सो दा दी पूर्वाभद्रपद, दू, थ, झ, ञ, उत्तराभाद्रपद और दे, दो, चा, ची, रेवती।

अश्विनी के चार-चरण-भरणी के चार चरण और कृत्तिका का एक चरण-चू, चे, चो, ला, ली, लू, ले, लो, अ, इन नौ चरणों की मेष राशि; कृत्तिका के शेष तीन चरण, रोहिणी के चार चरण और मृगशिर के दो चरण—ई, ऊ, ए, ओ, वा, वी, वू; वे, वो, इन चरणों की वृष राशि; मृगराशि के दो चरण आर्द्रा के चार चरण और पुनर्वसु के तीन चरणों की--का, की कु घ, ङ, छ, के, को, हा, ही, मिथुन राशि; पुनर्वसु का एक, पुष्य के चार और आश्लेषा के चार चरणों की—ही, हु, हे, हो, डा, डी, डू, डे, डो, की कर्क राशि; मघा के चार, पूर्वाफाल्गुनी के चार और उत्तरा फाल्गुनी के एक चरण की—मा, मी, मू, मे, मो, टा, टी, टू, टे, की सिंह राशि; उत्तरा फाल्गुनी के शेष तीन, हस्त के चार और चित्रा के दो चरणों की—टो, पा, पी, पू, ष; ण, ठ, पे, पो, की कन्या राशिः चित्रा के शेष दो स्वाति के चार और विशाखा के तीन चरणों की रा री रू रे रो ता ती तू ते की तुला राशि; विशाखा का शेष एक अनुराधा के और ज्येष्ठा के चार चरणों की--तो ना नी नू ने नो या यी, यू, की वृश्चिक राशि, मूल के चार, पूर्वाषाढ़ा के चार और

उत्तराषाढ़ा के एक चरण की—ये, यो, भा, भी, भू, ध, फ, ढा, ये की धनुराशि, उत्तराषाढ़ा के शेष तीन श्रवण के चार और धनिष्ठा के दो चरणों की—भे, जा, जी, खी, खू, खे, खो, गा, गी, की मकर राशि, धनिष्ठा के शेष दो शतभिषा के चार और पूर्वाभाद्रपद के तीन चरणों की—गू, गे, गो, सा, सी, से, सो दा की कुम्भ राशि एवं पूर्वाभाद्रपद का शेष एक, उत्तराभाद्रपद के चार और रेवती के चार चरणों की—दी, दू, थ, झ, ञ, दे, दो, चा, ची कीमीन राशि होती है। ×

आयों का फल

दड्ढ-जलिएसु मरणं ण उ आलिंगि [य आ] एसु वट्टइ।
संताएसु अ जीवइ रोए णत्थित्ति संदेहो॥ १६९॥

दग्ध-ज्वलितैर्मरणं न त्वालिङ्गितायैर्वर्तते।
शान्तायैश्च जीवति रोगी नास्तीति सन्देहः॥ १६९॥

अर्थ—यदि पृच्छक के प्रश्नाक्षर दग्ध और ज्वलित आय संज्ञक हों तो रोगी का शीघ्र मरण; आलिङ्गित आय संज्ञक होने पर रोगी का विलम्ब से मरण और शान्त आय संज्ञक प्रश्नाक्षरों के होने पर रोगी का जीवन शेष समझना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं है।

विवेचन—यहां जैनाचार्य ने प्रश्नाक्षरों द्वारा आयों को ज्ञात कर उसका फल बतलाया है। प्रश्नाक्षरों से आयों का ज्ञान निम्न चक्र द्वारा किया जा सकता है।

आयबोधक चक्र

सं०	आय	वर्णाक्षर	स्वामी
१	ध्वज	अ इ उ ए ओ	सूर्य
२	धूम्र	क ख ग घ ङ	मंगल

× विशेष जानने के लिए देखें—प्राकृत ज्योतिषसार, व्यवहारचर्या, लग्नशुद्धि।

३	सिंह	च छ ज झ ञ	शुक्र
४	श्वान	ट ठ ड ढ ण	बुध
५	वृषभ	त थ द ध न	गुरु
६	खर	प फ ब भ म	शनि
७	गज	य र ल व ०	चन्द्र
८	काक	श ष स ह ०	राहु

उदाहरण—मोहन ने आकर अपने रुग्ण भाई के सम्बन्ध में पूछा कि उसका रोग कब अच्छा होगा। यहां पहले मोहन के शान्त और स्वस्थ हो जाने पर पूर्वोक्त विधि के समान प्रातःकाल में पुष्प का नाम, मध्याह्नकाल में फल का नाम, अपराह्न में देवता का नाम और सायङ्काल में तालाब और नदी का नाम पूछ कर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिए। अतः मोहन से पुष्प का नाम पूछा तो उसने 'गुलाब' का नाम बताया है। प्रश्नवाक्य 'गुलाब' का का आदि अक्षर 'गु' है यह अग्नि आय है। १६५ वीं गाथा के अनुसार इस आय की दग्धा संज्ञा बताई है। उपर्युक्त गाथा के अनुसार इसका फल रोगी का शीघ्र मरण समझना चाहिए।

नरपतिजयचर्या में आयों का वर्णन करते हुए बताया गया है कि पूर्व पश्चिम में चार सीधी रेखायें खींचकर उनपर उत्तर दक्षिण में और चार रेखायें खींचनी चाहिये इससे ६ कोठे वाला एक चक्र अथवा, इसके बीच के कोठे को छोड़ शेष आठ कोनों में आठ दिशाओं की कल्पना करनी चाहिए। ध्वज, अग्नि, सिंह, स्वान, सौरमेय, काक, गर्दभ और हस्ती ये सब प्रतिपद्‌कोअतिक्रमण करते हुए तिथि भुक्ति प्रमाण के अनुसार इन आठों दिशाओं में उदित होकर एक प्रहर बाद तत्परवर्ती दिशा में गमन करते हैं इस नियम से रात दिन में आठों दिशाओं में आठों आय घूम आते हैं। जैसे प्रतिपदा के प्रथम याम में ध्वज पूर्व में उदय होता है फिर प्रथम याम के बीत जाने पर अग्निकोण में चला जाता है

और वहां एक याम रहकर दक्षिण दिशा में चला जाता है। इस नियम के अनुसार प्रतिपद् तिथि के आठों यामों में ध्वजक्रम से आठों दिशाओं में भ्रमण करता है। इसी प्रकार द्वितीय आदि तिथि में अग्नि आदि को अवगत कर लेना चाहिये।

आयचक्रम्

ध्वांक्ष-काक ८ । १६	ध्वज १ । ६	अग्नि २ । १०
गज ७ । १५		सिंह ३ । ११
खर ६ । १४	वृषभ ५।१३	श्वान ४।१२

इन आयों में काक से श्वान बलवान, श्वान से अग्नि, अग्नि से वृषभ, वृषभ से गज, गज से सिंह, सिंह से ध्वज, ध्वज से खर बलवान होता है। आयों से प्रश्नों का उत्तर देते समय उनके बलाबल का विचार कर लेना आवश्यक होता है। प्रश्न करते समय ध्वज, अग्नि आदि में से किसी का उदय या स्थिति पूर्व में होने से महालाभ, अग्निकोण में रहने से मरण, दक्षिण में रहने से विजय और सौख्य, नैऋत्य में रहने से बन्धन और मृत्यु, पश्चिम में रहने से सर्वलाभ, वायुकोण में रहने से हानि, उत्तर में रहने से धन-धान्य की प्राप्ति और ईशानकोण में रहने से प्रश्न निष्फल होता है। वृषभ, सिंह, और काक के उदय होने से फल मिल चुका ध्वज और खर के उदय होने से वर्तमान में मिल रहा है एवं श्वान, अग्नि और हस्ती के उदय होने से भविष्य में फल प्राप्ति समझनी चाहिये। इसके अतिरिक्त वृषभ और ध्वज से फल समीप, गज और सिंह से दूर, श्वान और गर्दभ से मार्गस्थ एवं अग्नि और काक से निष्फल प्रश्न को समझना चाहिये। पूर्व और अग्निकोण में आय के रहने से मूल चिन्ता, दक्षिण, नैऋत्य और

पश्चिम में रहने से धातु चिन्ता एवं उत्तर में आय के रहने से जीवचिन्ता समझनी चाहिये।

उदाहरण—जैसे किसी ने पंचमी को चतुर्थ प्रहर में आकर प्रश्न किया। उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार पंचमी को वृषभ आय का चौथे याम में नैऋत्य कोण में वास है अतः इसका फल बन्धन या मरण है। पृच्छक जिस रोगी के संबन्ध में पूछ रहा है उसका मरण हो चुका है, ऐसा कहना चाहिये।

अन्य विधि द्वारा शकुन दर्श की विधि

इय वण्णगविदुद्धं महि (हि) यमयभायणम्मि पक्खिविय।
तस्सुवरम्मि समानं देह कवित्थस्स वरचुण्णं ॥ १७० ॥

एकवर्णगोदुग्धं मृत्तिकामयभाजने प्रक्षिप्य।
तस्योपरि समानं दत्त कपित्थस्य वर चूर्णम् ॥ १७० ॥

अर्थ—एक मिट्टी के बर्तन में एक वर्ण की गाय का दूध रख कर कपित्थ—कैथ के चूर्ण को समान परिमाण में डाल देना चाहिए।

पण्हसवणेण जावं अट्ठहिअसयं कुणेइ तस्सुवरिं।
ता लहु पहायसमए जाए जीवं थिरं होय ॥ १७१ ॥

प्रश्नश्रवणेन जापमष्टाधिकशतं करोति तस्योपरि।
तदा लघु प्रभातसमये जाते जीवः स्थिरो भवति ॥१७१॥

अर्थ—'ऊ ह्रीं वद वद वाग्वादिनी सत्यं ह्रीं स्वाहा' इस मंत्र का कपित्थचूर्ण मिश्रित दूध रखे गये मिट्टी के बर्तन के ऊपर १०८ वार प्रातःकाल जाप करने से उसकी आत्मा शकुन दर्शन के लिए स्थिर हो जाती है।

विवेचन—तन्त्र और मन्त्र शास्त्र में शकुन दर्शन की अनेक विधियां बतलाई हैं। गोपीचक्र और अनुभूत सिद्ध विद्या ग्रन्थ में कहा है कि यन्त्रों को लिखकर पास में रख कर शकुनों का दर्शन करने पर आत्मा स्थिर होती है। आचार्य ने मन्त्र और तन्त्र इन दोनों के प्रयोग द्वारा चित्त को स्थिर करने की विधि का निरूपण

किया है। उपर्युक्त गाथा में गाय के दूध के साथ कपित्थ चूर्ण को मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखना तंत्र भाग है और मन्त्र का जाप करना मन्त्र भाग है। आचार्य प्रतिपादित क्रिया से चित्त की चञ्चलता दूर हो आत्मस्थिर शकुन दर्शन करने योग्य हो जाती है। आचार्य की इस विधि को आज के विज्ञान के प्रकाश में देखने पर उनकी वैज्ञानिकता का अनुमान सहज में किया जा सकता है। पहले तन्त्र भाग को ही लिया जा सकता है-आज का रसायन विज्ञान बतलाता है कि कपित्थ के चूर्ण को काली गाय के दूध में मिला देने पर उस दूध में एक ऐसी अद्भुत रासायनिक क्रिया होती है जिससे उसके परमाणुओं में गति शीलता बराबर होती रहती है। यदि कोई व्यक्ति इस मिश्रित दूध को एक घंटे तक देखता रहे तो उन परमाणुओं में रहने वाली विद्युत शक्ति उस व्यक्ति के चित्त को स्थिर कर देगी। मन्त्र जाप करने का एक मात्र रहस्य चित्त को स्थिर करना और शरीर की विद्युत शक्ति को गतिशील बनाना है। मन्त्र के बीजाक्षरों का आत्मा के साथ ऐसा घर्षण होता है जिससे सुपुप्त, विद्युत शक्ति में गतिशीलता आती है। और यही विद्युतशक्ति अद्भुत कार्यों को कर देती है। आचार्य ने प्रथम तन्त्र विधि के साथ मन्त्र विधि का प्रयोग बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि प्रथम विधि में चित्त की स्थिरता होती है। और द्वितीय विधि द्वारा आत्मा में विद्युत शक्ति उत्पन्न होकर रहस्यों को ज्ञात करने क्षमता आती है अतः आचार्य द्वारा प्रतिपादित विधि से शकुन दर्शन करने पर उसका यथार्थ ज्ञान होगा।

तह जोइज्जइ सउणं अडविभवं णायरं तहा सद्दं।
विविह (हं) सत्था (त्थ) णुसारं जं सिट्ठं चिरमुणिंदेहिं ॥१७२॥

तथा दृश्यते शकुनमटविभवं नागरं तथा शब्दः।
विविधं शास्त्रानुसारं यच्छिष्टं चिरमुनीन्द्रैः ॥ १७२ ॥

अर्थ—मन्त्र विधि द्वारा आत्मा के स्थिर होने पर वन और नगर में शकुनों का दर्शन करना चाहिए। प्राचीन मुनियों के द्वारा अनेक शास्त्रों में प्रतिपादित विधि से शब्द श्रवण द्वारा भी शकुन को ज्ञात करना चाहिए।

शकुन दर्शन द्वारा आयु का निश्चय

सास (म) सिवा करटासो सारस वय हंस तह यका रंडो।
सउली सुय चम्मयडा वग्गुर पारेवया सियाला य ॥१७३॥
कालयडो दहिवण्णो वाम गया दिंति जीवियं तस्स।
दाक्खिण गया ससद्दा मच्चं (च्चुं) रोइस्स दंसंति ॥१७४॥

श्यामशिवा करटाश्वौ सारसो बको हंसस्तथा च कारण्डः।
शकुनिका शुकश्चर्मचटा वल्गुलः पारावताः श्रृगालाश्च ॥१७३॥
कालको दधिवर्णो वामगता ददति जीवितं तस्मै।
दक्षिणगताः सशब्दा मृत्युं रोगिणो दर्शयन्ति ॥ १७४ ॥

अर्थ—काला शृगाल, कौआ, घोड़ा, सारस, बगुला, हंस बतख, चील, तोता, चमगीदड़ों के झुण्ड, भागती लोमड़ी, कबूतरों का जोड़ा, शृगालों का झुण्ड, सफेद जल-सर्प आदि का का बाईं ओर दर्शन रोगी के जीवन को बढ़ाता है और दाहिनी ओर शब्द करते हुए इनका दर्शन रोगी की मृत्यु की सूचना देता है। तात्पर्य यह है कि मन्त्र जाप के अनन्तर जिसे रोगी के संबंध में बात करना है, वह व्यक्ति जंगल में जाय और वहां उपर्युक्त जानवरों को अपनी बाईं ओर देखे तो रोगी का जीवन शेष और शब्द करते हुए या बिना शब्द के दाहिनी ओर देखे तो रोगी की मृत्यु अवगत करनी चाहिए।

प्राण नाशक अन्य शकुन

पिंगल सिही या ढिंको बप्पीह य णउल तित्तिरो हरिणो।
वामे गओ ससद्दो णासइ जीअं तु रोइस्स ॥ १७५ ॥

पिङ्गलः शिखी च ढेङ्कश्चातकश्च नकुलस्तित्तिरो हरिणः।
वामे गतः सशब्दो नाशयति जीवं तु रोगिणः ॥ १७५ ॥

अर्थ—यदि कोई उल्लू, मयूर, ढेंका, पपीहा, नेवला, तीतर और हिरण शब्द करते हुए बाईं ओर आवें तो रोगी के शीघ्र मरण सूचक हैं।

अशुभ दर्शक शकुन

गिद्धू-घू (धुं) य भारयडो सालहियकएडओ य वग्घो य।
गंडय ससओ य तहा दिट्ठा यच्च सोहणा एदे ॥१७६॥

गृध्र-उलूकौ भारखडः सारिकैडकश्च व्याघ्रश्च।
पण्डकः शशकश्च दृष्टाश्च न शोभना एते ॥१७६॥

अर्थ—गीध, उल्लू, भारण्ड, मैना, भेड़, सिंह, गेंडा, खरगोश, इनमें से किसी भी जानवर का दर्शन उत्तम नहीं होता है।

मरण सूचक शकुन

णयरभवाणं मज्झे काओ साणो य रासहो वसहो।
दाहिणगओ ससद्दो मरणं चिय देइ णियमेण ॥१७७॥

नगर भवानां मध्ये काकः श्वानश्च रासभो वृषभः।
दक्षिणगतः सशब्दो मरणमेव ददाति नियमेन ॥१७७॥

अर्थ—नगर के पशु और जानवरों में काक, श्वान, गधा और वृषभ दाहिनी ओर शब्द करते दिखलाई पड़ें तो नियम से मरण होता है।

विवेचन—पूर्वोक्त गाथाओं में आचार्य ने जंगल के जानवरों के दर्शन द्वारा शुभाशुभ शकुनों का वर्णन किया है। इस गाथा में नगर के पशुओं और जानवरों के दर्शन द्वारा शकुनों का वर्णन किया जा रहा है। संहिता शास्त्र में रात के २ बजे के बाद बिल्ली का तीन बार रोना सुनना शृगाल का रुदन सुनना और दाहिनी ओर कुत्ते का रुदन सुनना सात दिन में मरण सूचक बताया है। काक मैथुन; सूअर का अकारण दाहिनी ओर से रास्ता काटकर बाईं ओर जाना, कुत्ता, बिल्ली, नेवला, और बकरी की छींक बाईं ओर सुनाई पड़े एवं सांप का रास्ता काटना, पन्द्रह दिन में रोगी के लिए मरण सूचक हैं। भद्रबाहु ने मरण-सूचक शकुनों का निरूपण करते हुए बताया है कि पालतू चौपाये जिस रोगी को देखते ही टट्टी करने लगें तथा भौंकने लगे तो उस रोगी की मृत्यु निकट समझनी चाहिए। वैज्ञानिक ढंग से इस कथन का खुलासा करते हुए बताया है कि पशुओं का ज्ञान इस दिशा में मनुष्यों के ज्ञान

की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। वे रोगी मनुष्य को देखते ही उसकी आयु की परीक्षा कर लेते हैं और अपनी अव्यक्त भाषा द्वारा उसे व्यक्त कर देते हैं। पालतू पशुओं की अपेक्षा अरण्य के जानवरों का ज्ञान इस दिशा में अधिक उन्नतशील है।

मरण सूचक शकुन

महिस या मडयं च तहा मलिणा जुवई य रोदणं सप्पो।
उंदर विराल सूयर एदेसिं दंसणे मरणं ॥ १७८ ॥

महिषश्च मृतकश्च तथा मलिनां युवतीं च रोदनं सर्पः।
उन्दुरो विडालः सूकर एतेषां दर्शने मरणम् ॥ १७८ ॥

अर्थ—भैंसा, मृतकपुरुष, ऋतुस्रावयुक्त युवती नारी, रोती हुई स्त्री, सर्प, चूहा, बिल्ली, और सूअर का दर्शन मरण सूचक बतलाया है।

विवेचन—ग्रन्थान्तरों में मरण सूचक शकुनों का वर्णन करते हुए बताया है कि ग्राम को जाते समय चील अपने दाहिने पंखे को झुकाकर जमीन पर चलती हुई दिखलाई पड़े तो एक माह कौआ उड़ता हुआ सिर पर आकर बैठ जाय तो तीन माह, कान खजूरा सिर या मस्तक पर चढ़ जाय तो दो, माह बिल्ली दाहिने ओर से निकल कर रास्ता काट दे और वह बराबर आगे दिखलाई पड़े तो तीन माह से कुछ अधिक एवं गधा सामने चलता हुआ रेंकने लगे तो दो माह से कुछ अधिक रोगी की आयु समझनी चाहिए।

वर्ज्य शकुनों का कथन

हय-गय-गो-मणुआणं साणाईणं तु छिक्कियं एत्थ।
वज्जिज्ज सव्व लोए इय कहियं मुणिवरिंदेहिं ॥ १७९ ॥

हय-गज-गो-मनुजानां श्वानादीनां तु क्षुतमत्र।
वर्जयेयुः सर्वे लोक इति कथितं मुनिवरेन्द्रैः ॥ १७९ ॥

श्रेष्ठ मुनियों का कथन है कि घोड़ा, हाथी, मनुष्य और कुत्ते की छींक से बचने का यत्न करे।

विवेचन—अग्निकोण और नैऋत्यकोण में छींक होने से शोक और मनस्ताप, दक्षिण में हानि, पश्चिम में मिष्टान्नलाभ, वायुकोण में सम्मान, उत्तर में कलह और ईशान कोण में छींक होने से मरण होता है। अपनी छींक भयप्रद, ऊपर की छींक शुभ मध्य की भयप्रद, दाहिनी ओर की द्रव्य नाशक, सम्मुख की कलह एवं मृत्युदायक होती है। आसन, शयन, भोजन, दान आदि कार्यों को करते समय की तथा बाईं ओर की छींक शुभ होती है।

छींक+ का शब्द सुनने के अनन्तर अपनी छाया को अपने पैर से नाप कर उसमें १३ और जोड़दे। इस योग फल में ८ का भाग देने पर एक शेष में लाभ, दो में सिद्धि, तीन में हानि, चार में शोक; पांच में भय, छः में लक्ष्मी प्राप्ति, सात में मृत्यु और शून्य शेष में निष्फल जानना चाहिये।

शब्द श्रवण द्वारा आयु के निश्चय करने का कथन और शब्द के भेद

सद्दो हवेइ दुविहो देवयजणिओ अ तह य सहजो य।
देवयजणियविहाणं कहिज्जमाणं निसामेह ॥ १८० ॥

शब्दो भवति द्विविधो देवताजनितश्च तथाच सहजश्च।
देवताजनितविधानं कथ्यमानं निशामयत ॥ १८० ॥

अर्थ—शब्द दो प्रकार के होते हैं-एक दैवी और दूसरे प्राकृतिक। दैवी शब्दों का वर्णन किया जाता है, ध्यान से सुनो।

दैवी शब्द श्रवण की विधि

पक्खालियणियदेहो सुसेयवत्थाइभूलिओ पुरिसो।
बिदियपुरिसेण सरिसो जोयइ सद्दं सुहं असुहं ॥ १८१ ॥

प्रक्षालितनिजदेहः सुश्वेतवस्त्रादिभूषितः पुरुषः।
द्वितीय पुरुषेण सदृशः पश्यति शब्दं शुभमशुभम् ॥ १८१ ॥

+क्षुतरिक्कारवं श्रुत्वा पादच्छायां च कारयेत्। त्रयोदशयुतां कृत्वा चाष्टाभिर्भागमाहरेत् ॥ लाभः सिद्धिर्हानिशोकोभयं श्री दुःखनिष्फले। क्रमेणैव फले ज्ञेयं गर्गेण च यथोदितं ॥ —ज्यो. सा.

अर्थ—जिसने स्नान द्वारा अपने शरीर को स्वच्छ कर सफेद और स्वच्छ वस्त्र धारण कर लिये हों, वह मध्यम पुरुष के समान मंगल और अमंगल सूचक शब्दों को सुने।

छित्तूणं विणिपडिमा एहाविता समलहेवि पुज्जेवि।
सियवत्थझंपिया पुण छुभइ वामाइ कक्खाए ॥१८२॥

गृहीत्वा ऽम्बाप्रतिमां स्नापयित्वा समालभ्य पूजयित्वा।
सितवस्त्राच्छादीनां पुनः क्षिपति वामायां कक्षायां ॥ १८२ ॥

अर्थ—अम्बा मूर्त्ति को स्नान करा वस्त्रों से आच्छादित कर पूजा करे। अनन्तर बायें हाथ के नीचे रखकर [शब्द सुनने के लिये निम्न विधि करे]

रयणीइ पढमजाये बोलीणे अह पहायसमयंमि।
इयमंतं च जवतोवच्चउ णयरस्स मज्झम्मि ॥१८३॥

रजन्याः प्रथमयामे गतेऽथ प्रभात समये।
इमं मन्त्रं च जपन् व्रजतु नगरस्य मध्ये ॥ १८३ ॥

अर्थ—रात्रि के प्रथम प्रहर में या प्रातःकाल में 'ॐ ह्रीं अम्बे कूष्माण्डि ब्राह्मणि देवि वद वद वागीश्वरि स्वाहा' इस मंत्र का जापकर नगर में भ्रमण करे।

शब्द श्रवण द्वारा शुभा शुभ का निश्चय

सुह-मसुहं वि अ सव्वं पढमं जं चवइ कोवि तं लिज्ज।
जीवइ सुहसद्देणं असुहे मरणं ण संदेहो ॥ १८४ ॥

शुभमशुभमपि च सर्वं प्रथमं यत्कथयति कोऽपि तल्लात।
जीवति शुभशब्देनाशुभेन मरणं न संदेहः ॥ १८४ ॥

अर्थ—इस प्रकार नगर में भ्रमण करते समय जो कोई पहले शुभ या अशुभ बात कहता है उसी के अनुसार फल समझना चाहिए अर्थात् शुभ शब्द कहने से कल्याण और अशुभ शब्द कहने से मरण होता है, इसमें संदेह नहीं है।

विवेचन—अपने शरीर को स्वच्छ कर सुन्दर वस्त्राभूषणों

से युक्त हो एक यक्षिणी की मूर्ति के अभिषेक पूर्वक पूजन कर सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित करे। अनन्तर उस मूर्ति को अपनी कांख के नीचे दबाकर नगर में भ्रमण करे। इस समय सर्व प्रथम सम्भाषण करने वाला व्यक्ति जिस प्रकार के शुभाशुभ शब्द मुंह से निकाले उन्हीं के अनुसार रोगी का शुभाशुभ समझना चाहिए। कठोर, कर्कश, निंद्य, चुगली और धूर्तता द्योतक शब्द रोगी के रोग को अधिक दिन तक बढ़ाने वाले होते हैं।

दैवकथित शब्द श्रवण का उपसंहार और प्राकृतिक शब्द श्रवण का कथन

भणियं देवदकहियं सहजं सद्दं भणेमि सुह-मसुहं।
णिसुणिज्जइ किं बहुणा पुव्वगयसत्थाणुसारेण ॥१८५॥
भणितं देवताकथितं सहजं शब्दं भणामि शुभमशुभम्।
निश्रूयते किं बहुना पूर्वागतशास्त्रानुसारेण ॥ १८५ ॥

अर्थ—इस प्रकार दैवी शब्द श्रवण का वर्णन किया गया है, अब प्राकृतिक शब्दों के श्रवण द्वारा शुभाशुभ का कथन प्राचीन शास्त्रों के अनुसार किया जाता है, ध्यान से सुनो।

प्राकृतिक शुभ शब्दों का वर्णन

अरहंताइसुराणं नामग्गहणं च सिद्धि-बुद्धी य।
जय-विद्धि-मिंदु-राया सुहसद्दा सोहणा सव्वे ॥१८६॥
अर्हदादिसुराणां नामग्रहणं च सिद्धि—बुद्धी च।
जय-वृद्धि-इन्दु-राजानः शुभ शब्दाः शोभनाः सर्वे ॥१८६॥

अर्थ—अर्हन्त भगवान का नाम, तथा इन्हीं के नाम के समान अन्य देवों के नाम सिद्धि, बुद्धि, जय, वृद्धि, चन्द्रमा और राजा ये शब्द शुभ होते हैं।

अशुभ शब्दों का कथन

णट्ठो भग्गो अमओ पडिओ तह लुंचिदो गओ सडिदो।
खद्धो वीओ दड्ढो कालो हय चुण्णिओ य बद्धो य ॥१८७॥
एवं विहा य सद्दा जे असुहा हुंति इत्थ जिअलोए।
ते असुहा णिद्दिट्ठा सद्दागम सत्थइत्तेहिं ॥ १८८ ॥

नष्टो भग्नश्च मृतः पतितस्तथा लुञ्चितो गतः सटितः ।
गुल्को नीचो दष्टः कालो हतश्चूर्णितश्च बद्धश्च ॥ १८७ ॥

एवं विधाश्च शब्दा येऽशुभा भवन्त्यत्र जीवलोके ।
तेऽशुभा निर्दिष्टाः शब्दागमशास्त्रविद्भिः ॥ १८८ ॥

अर्थ—जो शब्द इस संसार में अमंगल सूचक हैं जैसे नष्ट, भग्न, मृत, पतित, फटा हुआ, विलग, सड़ा हुआ, नीच, पीड़ा हुआ, काला, चूर्ण और बन्धा हुआ ये शब्द शब्दज्ञान शास्त्र के वेत्ताओं के द्वारा अकल्याण सूचक माने गये हैं।

शुभ सूचक शकुन

छत्तं धयं च कलसं संखं च भेरि य राय निग्गंथं ।
जुहकुसमं सियवत्थं सिद्धत्था चंदणं दहियं ॥१८९॥
ससुया जुवई वेसा एयाण सुगोवि दंसणं भावि ।
सुहदं हवेइ णूणं सुअउच्छवं (?) देयजुत्तं च ॥ १९०॥

छत्रं ध्वजश्च कलश शङ्खश्च भेरी च राजा निर्ग्रन्थः ।
यूथिकाकुसुमं सितवस्त्रं सिद्धार्थश्चन्दनं दधिकम् ॥ १८९ ॥
ससुता युवती वेश्यैतेषां सुतोऽपि दर्शनं चापि ।
सुखदं भवति नूनं सुतोत्सवो (?) देययुक्तं च ॥ १९० ॥

अर्थ—छत्र, ध्वजा, घड़ा, शंख, भेरी, राजा, दिगम्बर साधु, जुही का फूल, उज्वल वस्त्र, तिल, चन्दन, दही, पुत्र सहित युवती, वेश्या, पुत्रजन्मोत्सव या ईश्वर संबन्धी उत्सव इन सबका दर्शन या इनका शब्द श्रवण मंगल सूचक है।

विवेचन—वसन्तराज शकुन में शुभ शकुनों का वर्णन करते हुए बताया है कि दधि, घृत, दूर्वा, आतप, तण्डुल, जल पूर्ण कुम्भ श्वेत सर्षप, चन्दन, दर्पण, शंख, मांस, मत्स्य, मृत्तिका, गोरोचन, गोधूलि, देवमूर्ति, फल, पुष्प, अञ्जन, अलंकार, अस्त्र, ताम्बूल, यान, आसन, शराब, ध्वज, छत्र, व्यञ्जन, वस्त्र, पद्म, भृंगार, प्रज्वलित अग्नि, हस्ती, छाग, कुश, चामर, रत्न सुवर्ण, रूप्य, ताम्र, मद्य, औषधि, नूतन पल्लव और हरित वृक्ष इनका दर्शन शुभ है।

अशुभ—अंगार, भस्म, काष्ठ, रज्जु, कर्दम, कार्पास, तुष, अस्थि, कुश, चामर, विष्ठा, मलिन व्यक्ति, लोह, कृष्ण धान्य, पत्थर, केश, सर्प, औषध, तेल, गुड़, चमड़ा, खाली घड़ा, लवण तृण, तक्र, अर्गल, शृंखला, रजस्वला स्त्री, विधवा एवं दीना, मुक्तकेशा और मलिनवदना स्त्री का दर्शन अशुभ कारक है।

शब्द गत प्रश्न का अन्य वर्णन

हय-गय-वसहे सयडे य रहे य छत्त-धयदंडे (यावि)
गय-हट्टे देउल-पडिमा-पायार-पउलीए (य)॥१९१॥
असि-कुंत भंग सद्दो भग्गं दिट्ठं ण सोहणं होइ।
इदि कहियं सद्दगयं पण्हं वरपण्हसूरीहिं॥ १९२॥

हय-गज-वृषभाणां शकटस्य च रथस्य च छत्र-ध्वजदण्डयोश्चापि।
गज-हट्ट-देवकुल-प्रतिमा-प्राकार-प्रतोलीनां च ॥ १९१ ॥
असि-कुन्तभङ्ग शब्दो भग्नो दृष्टो न शोभनो भवति।
इति कथितः शब्दगतः प्रश्नो वरप्रश्नसूरिभिः॥ १९२॥

अर्थ—घोड़ा, हाथी, सांड, गाड़ी, रथ, छाते की डंडी, ध्वज की डंडी, दुकान, मंदिर की मूर्ति, किला, नगर का फाटक, गली का फाटक, तलवार, छुरा, इत्यादि के टूटने या नष्ट होने के शब्द तथा 'भग्न' या 'नष्ट' शब्द शुभ नहीं हैं। प्रश्न शास्त्र के जानने वाले आचार्यों ने इसी को शब्द गत प्रश्न कहा है।

अक्षर प्रश्न ज्ञात करने की विधि

पक्खालियकरजुअलं पुव्वविहाणेण कायसंसुद्धं।
गोरोयणाएँ पच्छा उव्वट्टउ किं वियप्पेण॥१९३॥

प्रक्षाल्य करयुगलं पूर्वविधानेन कायसंसुद्धः।
गोरोचनया पश्चादुद्वर्तयतु किं विकल्पेन॥ १९३॥

अर्थ—शरीर से शुद्ध होकर पूर्व विधि के अनुसार गौ के मूत्र या दूध और गोरोचन से अपने हाथों को धोकर केशर, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों से सुगंधित करे। इस विधि में अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

एगंते सुहदेसे पक्खालिय पीढगस्स उवरिम्मि ।
बंधित्ता पलियंकं णासग्गे इक्खणं णिवा ॥ १९४ ॥
णासग्गे करजुअलं धारउ वरसंपुडं च बंधवि ।
वामकरे सियपक्खं दाहिणहत्थे च कसणं च ॥१९५॥
पंचदहे वि तिहीओ चिंतित्ता अंगुलीण संधीसु ।
चिंतह तेसु हयारं मिल्लि (मेलि) ज्जए जत्थ हत्थम्मि ॥१९६॥

एकान्ते शुभदेशे प्रक्षाल्य पीठकस्योपरि ।
बद्ध्वा पर्यङ्कं नासाग्रे ईक्षणं स्थापयित्वा ॥ १९४ ॥
नासाग्रे करयुगलं धारयतु वरसम्पुटं च बद्ध्वा ।
वामकरे सितपक्षं दक्षिणहस्ते च कृष्णं च ॥१९५ ॥
पंचदशापि तिथींश्चिन्तयित्वाऽङ्गुलीनां सन्धिषु ।
चिन्तयत तेषु हकारं मेल्यते यत्र हस्ते ॥ १९६ ॥

अर्थ—उपर्युक्त विधि के अनन्तर स्वच्छ, एकान्त स्थान में आसन को धोकर पर्यंक आसन लगाकर, दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर कर नासिकाग्र की ओर हाथों को जोड़कर स्थिर रहे। पश्चात् दाहिने हाथ में कृष्ण पक्ष और बांये हाथ में शुक्लपक्ष का ध्यान करे तथा अंगुलियों की संधियों पर पन्द्रह तिथियों का ध्यान करे। अभिप्राय यह है के जुड़े हुए हाथों में तीन संधियां दिखलाई पड़ती है-नीचे की मध्य की, और ऊपर की इस प्रकार पांचों अगुलियों में १५ तिथियों की कल्पना करनी चाहिये। उन दोनों हाथों के मध्य में 'ह' अक्षर का ध्यान करना चाहिए।

× × × × × × × × × × ।
तं पक्खं जाणेज्जइ वरकज्जलरूवओ चेव ॥ १९७ ॥

× × × × × × × × × × × × × × × × ।
तं पक्षं जानीयाद्वरकज्जलरूपतश्चैव ॥ १९७ ॥

अर्थ—उस पक्ष का ज्ञान अञ्जन की उत्तम रीति के द्वारा करना चाहिए।

अक्षर प्रश्न का फल

अह जीए संखीए विणिज्जए सो हु अक्खरो णूणं ।
कमणो ता (सा) तस्स तिही अक्खररूवे समुद्दिट्ठा ॥१६८॥

अथ येन संख्यिना विनीयते तत्खल्वक्षरं नूनम् ।
कृष्णा सा तस्य तिथिरक्षररूपे समुद्दिष्टा ॥ १९८ ॥

अर्थ—जिस तिथि की सन्धि पर कृष्ण पक्ष पड़े और 'ह' अक्षर का संकेत हो वही मृत्यु का दिन है । इस प्रकार अक्षर प्रश्न द्वारा रिष्टों का वर्णन किया है ।

होरा प्रश्न की विधि

सियवत्थाइविभूसो पक्खालित्ता सयं सयं देहं ।
पुण खीरं भुंजित्ता बंभजुओ सुअउ भूमीए ॥१९९॥

सितवस्त्रादिविभूषः प्रक्षाल्य स्वयं स्वकं देहम् ।
पुनः क्षीरं भुक्त्वा ब्रह्मयुतः स्वपितु भूमौ ॥ १९९ ॥

अर्थ—स्नान कर स्वच्छ और सफेद वस्त्रों को धारण करे । पश्चात् दुग्ध पान कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भूमि पर शयन करे ।

सुग्गीवस्स य मंतं जवेवि अट्ठोयरं सयं तत्थ ।
कज्जं धरेवि चित्ते सुवउ सियवत्थदृसयणे वा ॥२००॥

ओं णमो भगवदे सुग्गीवस्स पराहसवणस्स कमले२ विमले२ विपुले २ उदरदेवि सत्यं कथय २ इटिमिटि पुलिंदिनि स्वाहा ।

सुग्रीवस्य च मन्त्रं जपित्वाऽष्टोत्तरशतं तत्र ।
कार्यं धृत्वा चित्ते स्वपितु सितवस्त्र दत्त शयने वा ॥ २०० ॥

अर्थ—जिस कार्य संबन्ध में फलाफल ज्ञात करना हो उस कार्य का चिन्तवन कर " ओं णमो भगवदे सुग्गीवस्स पराह सवणस्स कमले-कमले विमले-विमले विपुले-विपुले उदरदेवि सत्यं कथय-कथय इटिमिटि पुलिंदिनि स्वाहा " इस मन्त्र का १०८ बार

जाप करे। पुनः उस कार्य का चिन्तवन करते हुए सफेद चादर युक्त बिस्तर पर शयन करे।

पच्छा पहायसमए दिवस्स नाली तयम्मि वोलीणे ।
संजयवियमेयक्ख (घ) डिया पढमं परामिट्ठिमंतेण ॥२०१
पुणोवि जवेह णूणं वाराओ एगवीम सामिप्पं ।
सुग्गीवसुमंतेणं इय भणियं मुणिवरिंदेहिं ॥२०२।

पश्चात् प्रभात समये दिनस्य नाडीत्रये गते ।
सञ्जाप्यैकघटिकां प्रथमं परमेष्ठिमन्त्रेण ॥ २०१ ॥
पुनरपि जपन नूनं वारानेकत्रिंशतिं सामीप्ये ।
सुग्रीवसुमन्त्रेणेति भणितं मुनिवरेन्द्रैः ॥ २०२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर प्रातःकाल में तीन घटी - २४×३=७२ मिनट-१ घन्टा १२ मिनट दिन व्यतीत होने पर एक घटी-२४ मिनट तक परमेष्ठीमन्त्र—णमोकार मन्त्र का जाप विधि पूर्वक करे। पश्चात २१ बार "ओं णमो भगवदे सुग्गीवस्स पणह सवणस्स कमले कमले विमले-विमले विपुले-विपुले उदरदेवि सत्यं कथय कथय टिटिमिटि पुलिंदिनि स्वाहा" इस मन्त्र का जाप करे, इस प्रकार श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है।

सुइभूमिअले फलए समरेहाहि यं (य) विराम परिहीणो (णं)।
कड्ढिज्जउ भूमीए समं च रेहातयं पच्छा ॥ २०३ ॥

शुचि भूमितले फलके समरेखाभिश्च विराम परिहीनम्।
कृष्यताम् भूमौ समं च रेखात्रयं पश्चात् ॥ २०३ ॥

अर्थ—स्वच्छ भूमि में स्थित एक तख्ते पर तथा पृथ्वी पर तीन सीधी रेखाएँ बिना ठहरे हुए लगातार खींचे।

अद्धुट्ठरेहछिण्णे जे (जं) लब्भंति तत्थ रेहाओ ।
पढमं हि रेहअंकं ठाविज्ज पयाहिणं तत्थ ॥ २०४ ॥
अग्गिल्लं मग्गि (ज्झि) ल्लं पच्छिमयाइं तहेव जाणिज्जा।
धय-धूम-सीह-साण-बिसा-खर-गय-वायसा आया २०५॥

अट्टाष्टरेखाच्छिन्ना या या लभ्यन्ते तत्र रेखा: ।
प्रथमं हि रेखाङ्कं स्थापय प्रदक्षिणं तत्र ॥ २०४ ॥
अग्रिममध्यमपृष्ठगतानि तत्रैव जानीयात् ।
ध्वज-धूम-सिंह-श्वान-वृषाः खर-गज-वायसा आयाः ॥२०५॥

अर्थ—इस प्रकार आठ आड़ी रेखाएँ आठ खड़ी रेखाओं को काटती हुई बनाये। पहली पर बाईं ओर से दाहिनी ओर आदि, मध्य और अन्त अंकित कर ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज एवं वायस इन आठ आयों को लिखे।

सिंह और वृषभ आय के समानान्तर का फल

रुक्खो (?) दु सीह वसहे ठिओ कओ सोहणो समुद्दिट्ठो ।
इयरायाणं उत्तरि अ सोहणो किं वियप्पेण ॥ २०६ ॥

रुक्ष (?) स्तु सिंह-वृषभयोः स्थितः क्व शोभनः समुद्दिष्टः ।
इतरायाणामुत्तरे च शोभनः किं विकल्पेन ॥ २०६ ॥

अर्थ—सिंह और वृषभ आय आते मध्य और अन्त की रेखा के समान्तर में पड़ें तो मंगल सूचक कैसे हैं? अर्थात कष्ट दायक समझना चाहिए। शेष ध्वजादि आय समानान्तर में पड़े मंगल कारक होते हैं, अधिक कथन से क्या लाभ?

विवेचन—उपर्युक्त गाथाओं में आचार्य ने होरा प्रश्न का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है। होरा प्रश्न द्वारा फल निकालने की संक्षिप्त प्रक्रिया यह है कि शरीर शुद्ध कर विधि पूर्वक शयन करने के अनंतर प्रातःकाल णमोकार मंत्र और सुग्रीव मन्त्र का जाप करना चाहिए पश्चात् तीन रेखाएँ बिना हाथ को रोके पृथ्वी या किसी तख्ते के ऊपर खींचनी चाहिए। पुनः आठ आडी और आठ खड़ी रेखाएँ खींचकर ध्वज, धूम, सिंह आदि आठ आयों को लिख देना चाहिए। ये आये पूर्वोक्त तीन रेखाओं के समानान्तर में जिस प्रकार पड़ें वैसा ही फल ज्ञात करना चाहिए। स्पष्टार्थ चक्र नीचे दिया जाता है:—
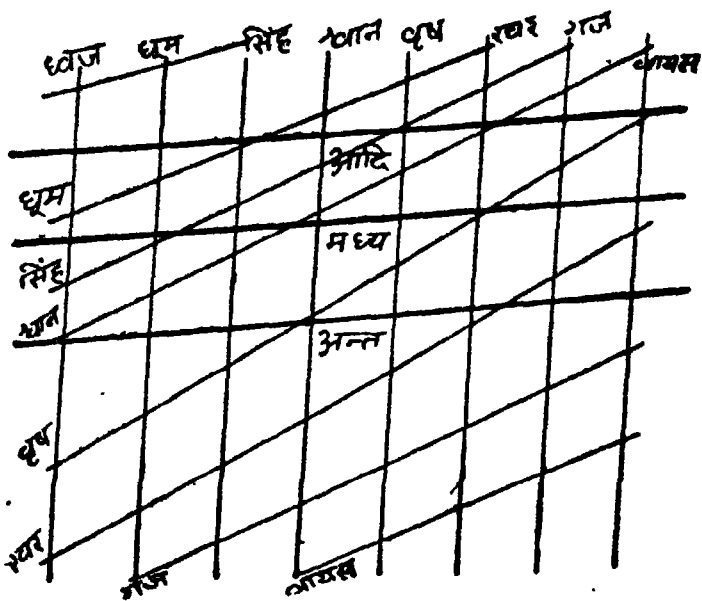
इस चक्र में धूम-स्वर, सिंह गज, श्वान-वायस, धूम-गज और श्वान-वायस का वेध-समानान्तरत्व है। इस समानान्तरत्व का फल आगेवाली गाथाओं के अनुसार समझना चाहिये।

यह चक्र स्थिर नहीं है, क्योंकि मंत्र जाप आदि क्रियाओं द्वारा जो तीन रेखाएं सहसा बिना विश्राम के खींची जाती हैं, कारण यह बदलता रहेगा। इसलिए इसका फल सब प्राणियों के लिए एक नहीं होगा, बल्कि भिन्न भिन्न आयेगा।

धूम आय के वेध का फल

धूमो सयलायाणं उवरिम्मि मुणेह सयलकज्जेसु ।
वह-बंध-रोय-सोअं कुणेइ धणहरण-भय-णासं ॥ २०७ ॥

धूम सकलायानामुपरि जानीत सकलकार्येषु ।
वध-बन्ध-रोग-शोकान् कुर्याद् धनहरण-भय नाशान् ॥२०७॥

अर्थ—यदि धूम आय का वेध-सामानान्तरत्व किसी अन्य आय के साथ हो तो सभी कार्यों के नाश के साथ वध, बन्धन, रोग, शोक, धनहानि, भय और क्षति समझनी चाहिए।

सिंह और ध्वज आय का वेध का फल

सीहो धयस्स उवरिं होइ सुहो मरणदो हु धूमस्स ।
इयरा (या) ण उवरि गओ साहइ कूराणि कम्माणि ॥२०८॥

सिंहो ध्वजस्योपरि भवति शुभो मरणदः खलु धूमस्य ।
इतरायाणामुपरि गतः कथयति क्रूराणि कर्माणि ॥ २०८ ॥

अर्थ—सिंह और ध्वज आय का वेध शुभ होता है, लेकिन सिंह और धूम आय का वेध मृत्यु दायक होता है। धूम और ध्वज आय को छोड़ शेष आयों के साथ सिंह आय का वेध क्रूर कार्यों को करने वाला बताया गया है ।

सिंह आय के वेध तथा श्वान और ध्वज आय के वेध का फल

सीहग्गि (ग्गी) गय लाहं ढेखस्सुवरम्मि दीसए मरणं ।
साणो धयम्मि सुहओ सेसेसु मज्झिमो होइ ॥२०९॥

सिंहोऽग्निगतो लाभं ढेङ्कस्योपरि दिशति मरणम् ।
श्वानो ध्वजे शुभदः शेषेषु मध्यमो भवति ॥ २०९ ॥

अर्थ—सिंह और धूम आय का वेध लाभ कराने वाला एवं सिंह और ध्वाँक्ष का वेध मरण-सूचक होता है। श्वान और ध्वज आय का वेध शुभ होता है, श्वान व। ध्वज के अतिरिक्त शेष आयों के साथ का वेध मध्यम होता है।

वृषभ आय के ध्वज, धूम और सिंह के साथ में होनेवाले वेध का फल

वसहो धाय-धूम गओ सुहओ मरणाय होइ सीहम्मि ।
सेसायाणं साहइ उवरित्थो मज्झिमं अत्थं ॥ २१० ॥

वृषभो ध्वज-धूमगतः शुभदो मरणाय भवति सिंहे ।
शेषायानां कथयति उपरिस्थो मध्यममर्थम् ॥ २१० ॥

अर्थ—वृषभ-ध्वज और वृषभ-धूम का वेध उत्तम होता है, वृषभ और सिंह का वेध मरण कारक होता है। शेष आयों के साथ वृषभ आय का वेध मध्यम फल का द्योतक है ।

खर आय के वेध का फल

मयगल-धूमम्मि सए परिट्ठिओ रासहो सुहं देइ ।
सेसेसु य मज्झत्थो सीहगओ होइ मरणे य ॥२११॥

मदकल-धूमयोः शुनि परिस्थितो रासभः शुभं ददाति।
शेषेषु च मध्यस्थः सिंहगतो भवति मरणे च ॥ २११ ॥

अर्थ—खर-गज खर-धूम और खर-श्वान का वेध शुभ फल दायक होता है। खर-सिंह का वेध मृत्यु कारक और शेष आयों के साथ खर आय का वेध मध्यम फल देने वाला होता है।

गज आय के वेध का फल

सीहम्मि (य) वारणं धए (य) ठिओ देइ जीवियं अत्थं।
सेसेसु अ मज्झत्थो इदि भणिज्ज पुव्व सूरीहिं ॥ २१२ ॥
सिंहे च वारणो ध्वजे च स्थितो ददाति जीवितमर्थम्।
शेषेषु च मध्यस्थ इति भणितं पूर्वसूरिभिः ॥ २१२ ॥

अर्थ—गज-सिंह और गज-ध्वज का वेध जीवन एवं धन फल का द्योतक है। अन्य आयों के साथ गज का वेध मध्यम फल देने वाला होता है, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है।

वायस आय के वेध का फल

दुरय-हरि हुअवहम्मि य परिट्ठिओ वायसो सुहो दिट्ठो।
मज्झत्थो सेसेसु अ साणस्सुवरिं विणासयरो ॥ २१३ ॥
दुरद-हरि-हुतवहेषु च परिस्थितो वायसः शुभो दिष्टः।
मध्यस्थः शेषेषु च श्वानस्योपरि विनाशकरः ॥ २१३ ॥

अर्थ—वायस-गज, वायस-सिंह, और वायस-धूम का वेध शुभ फल सूचक होता है। वायस-श्वान का वेध विनाश कारक एवं शेष आयों के साथ वायस आय का वेध मध्यम फल दायक होता है।

विद्ध आयों का अन्य फल

रुद्धेसु णत्थि गमणं आगमणं होइ देस विगयस्स।
रुद्धेसु मरइ सिग्घं सहजोणिगएसु सुत्त (सत्तु) सहिएसु ॥२१४॥
रुद्धेषु नास्ति गमनमागमनं भवति देशविगतस्य।
रुद्धेषु म्रियते शीघ्रं सहयोनिगतेषु शत्रुसहितेषु ॥ २१४ ॥

अर्थ—गमनागमन के प्रश्न में पूर्वोक्त चक्रानुसार रुद्ध आय के होने पर परदेश गया हुआ व्यक्ति आगे और नहीं जाता है बल्कि वापस लौट आता है। जीवन-मरण के प्रश्न में रुद्ध आय शत्रु सहित सहयोनिगत हो× तो शीघ्र मरण होता है।

आयों के मित्र शत्रुपने का विचार

लाहो सहजोणिगए मित्तजुगाए फुडं होइ।
सीहो गओ धयंमि गय-सीहाणं धओ तहा मित्तो ॥२१५॥

लाभः सहयोनिगते मित्रयुगाये स्फुटं भवति।
सिंहो गजो ध्वजे गज-सिंहयोर्ध्वजस्तथा मित्रम् ॥ २१५ ॥

अर्थ—यदि कोई आय उसी आय के साथ वेध को प्राप्त हो या मित्र संज्ञक आय के साथ वेध को प्राप्त हो तो लाभाला के प्रश्न में लाभ सूचक समझना चाहिए। ध्वज आय के सिंह और गज मित्र हैं तथा गज, सिंह ध्वज आय के मित्र हैं।

× यहां 'सहयोनिगत' शब्द का तात्पर्य उसी आय से है, जैसे ध्वज आय के लिए सहयोनिगत ध्वज आय ही होगा।

अन्य आयों के मित्रत्व का कथन

धूमस्स य साण खरो विस-धूमा रासह-सुणाण।
धूम धओ ढंखस्स य सेसाया तस्स इह सव्वे ॥२१६॥

धूमस्य च श्वान-खरौ वृष-धूमौ रासभ-श्वानयोः।
धूमो ध्वजश्च काकस्य च शेषायास्तस्येह सर्वे ॥ २१६ ॥

अर्थ—श्वान और खर आय धूम के मित्र हैं। वृष और धूम रासभ एवं श्वान के मित्र हैं। धूम और ध्वज काक आय के मित्र हैं। तथा शेष सभी आय काक आय के मित्र हैं। यहां इतनी विशेषता है कि ध्वज और धूम काक आय के अतिमित्र हैं और शेष आय मित्र हैं।

धूमो सीह-धयाणं खरवसहाणं च वायसो साणो।
सीहस्स गओ सत्थो इइ भणियं मुणिवरिंदेहिं ॥२१७॥

धूमः सिंह-ध्वजयोः खर-वृषभयोश्च वायसः श्वानः।
सिंहस्य गजः शस्त इति भणितं मुनिवरेन्द्रैः ॥ २१७ ॥

अर्थ—धूम सिंह और ध्वज आय का मित्र है। काक और श्वान खर तथा वृष आय के मित्र हैं। सिंह का गज आय मित्र है, ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है।

मित्रत्व कथन का उपसंहार

[× × × × × × × × × × ×]
नाऊणं आएसं कुणेह किं जंपिए इत्थ ॥ २१८ ॥
[× × × × × × × ×]
ज्ञात्वाऽऽदेशं कुरुत किं जल्पितेनात्र ॥ २१८ ॥

अर्थ—इस प्रकार मित्रत्व-शत्रुत्व आयों का ज्ञान कर फल निकालना चाहिए। इस विषय में अधिक कहने की क्या आवश्यकता है। तात्पर्य यह है कि मित्र मित्र का वेध अतिमित्र, मित्र रिपु का वेध उदासीन और रिपु रिपु का वेध अति रिपु होता है। रोगी की मृत्यु के संबन्ध में आयों द्वारा विचार करते समय पूर्वोक्त विधि के अनुसार मित्र रिपु के वेध द्वारा प्रश्न का फल अवगत करना चाहिये।

शत्रु आय के वेध का फल

रुद्धेसु अ मरणं रिउणा पट्ठीए संठिए तह य।
रिउपुरदाए वड्ढइ रोओ रोइस्स निब्भंतो॥ २१९ ॥
रुद्धेषु च मरणं रिपुणा पृष्ठे संस्थिते तथा च।
रिपुपुरत आये वर्धते रोगो रोगिणो निर्भ्रान्तम् ॥ २१९ ॥

अर्थ—रुद्ध आय हों या शत्रु आय पीछे स्थित हों तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। यदि रिपु वर्ग के आय संमुख हों तो रोगी का रोग निश्चित रूप से बढ़ता है।

नक्षत्रों के स्थापन की विधि और फलादेश

नव नव बिंदु तिवारं ठावित्ता भूयलम्मि रमणीए।
जं जस्स जम्मरिक्खं आईए तं तहं दिज्जा॥ २२० ॥
नव नव बिन्दूंस्त्रिवारं स्थापयित्वा भूतले रमणीये।
यद्यस्य जन्मर्क्षमादौ तत्तथा दत्त ॥ २२० ॥

अर्थ—एक उत्तम स्थान पर तीन पंक्तियों में नौ-नौ बिन्दु स्थापित करने चाहिए। जो जन्म नक्षत्र हो उसे पहले रखकर शेष नक्षत्रों को क्रमशः स्थापित कर देना चाहिए।

जन्म नक्षत्र से गर्भ नक्षत्र और नाम नक्षत्र स्थापन की विधि

तेरहम्मं जम्माओ रिक्खं गब्भस्स जंमि ठाणम्मि।
तह नामस्स य रिक्खं णायव्वं जत्थनिवडेइ ॥२२१॥

त्रयोदशं जन्माद्दक्षं गर्भस्य यस्मिन् स्थाने।
तथा नाम्नश्चर्क्षं ज्ञातव्यं यत्र निपताति ॥ २२१ ॥

अर्थ—जन्म नक्षत्र से तेरहवां नक्षत्र गर्भ नक्षत्र और नाम के अक्षरानुसार नाम नक्षत्र मानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि नक्षत्र स्थापन जहां से आरम्भ हुआ है वहां से तेरहवां नक्षत्र गर्भ नक्षत्र संज्ञक होता है और नाम के आदि अक्षर के अनुसार पूर्वोक्त गा. से नाम नक्षत्र निकालना चाहिए।

नक्षत्र स्थापन द्वारा फलादेश का विचार

तिवियप्पं नक्खत्तं गहेहि पावेहि जस्स फुडं विद्धं।
तो मरइ न संदेहो इय भणिअं दुग्गएवेण ॥ २२२ ॥

त्रिविकल्पं नक्षत्रं ग्रहैः पापैर्यस्य स्फुटं विद्धम्।
ततो म्रियते न सन्देह इति भणितं दुर्गदेवेन ॥ २२२ ॥

अर्थ—ये तीनों प्रकार के नक्षत्र-जन्म, गर्भ और नाम नक्षत्र प्रश्न समय में पाप ग्रहों के नक्षत्रों से विद्ध हों तो रोगी की मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है ऐसा दुर्ग देव ने कहा है।

विवेचन—ज्योतिष शास्त्र में रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु पाप ग्रह माने गए हैं। इन ग्रहों के नक्षत्रों से जन्म नक्षत्र, गर्भ नक्षत्र और नाम नक्षत्र का वेध हो तो रोगी की मृत्यु होती है। विषय को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

तारीख १६ को भरणी नक्षत्र में आकर किसी ने रोगी के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि रोगी जीवित रहेगा या नहीं? यहां पर

रोगी का जन्म नक्षत्र पुनर्वसु बताया गया है, अतः नक्षत्र स्थापना का क्रम इस प्रकार हुआ-

जन्म नक्षत्र — नाम नक्षत्र

पुन.	पुष्य	आ.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.
०	०	०	०	०	०	०	०	०
श.न.	गु.न.		म.न.	रा.न.		शु.न.		
वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा	श्र.	ध.	श.
०	०	०	०	०	०	०	०	०
बु.न.		भौ.न.	सू.न.	चन्द्र न.				के.न.
पू.भा.	उ.भा.	रे.	आश्वि.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आर्द्रा
०	०	०	०	०	०	०	०	०

नौ ग्रहों के नक्षत्रों को पञ्चाङ्ग में देखकर स्थापित करना चाहिए। इस चक्र में जन्म नक्षत्र पुनर्वसु का शनि नक्षत्र विशाखा और बुध नक्षत्र पूर्वाभाद्रपद से, गर्भ नक्षत्र मूल का सूर्य नक्षत्र अश्विनी से एवं नाम नक्षत्र चित्रा का वेध किसी से भी नहीं है। जन्म नक्षत्र पाप ग्रह शनि और शुभ बुध इन दोनों नक्षत्रों से विद्ध है तथा गर्भ नक्षत्र पाप ग्रह सूर्य के नक्षत्र से विद्ध है। अतः इस रोगी की मृत्यु अवश्य होगी पर अभी उसे कुछ दिन तक बीमार रहना पड़ेगा। जब प्रश्न समय में नाम जन्म और गर्भ तीनों ही नक्षत्र पाप ग्रहों के नक्षत्रों से विद्ध हों उस समय तक जल्दी ही मृत्यु बतलाना चाहिए। लेकिन जब दो नक्षत्रों से विद्ध हो उस समय विलम्ब से मरण और एक नक्षत्र के विद्ध होने से जीवन शेष समझना चाहिए।

नक्षत्र सर्प चक्र द्वारा मृत्यु समय का निरूपण

तह विहु भुअंगचक्के असिसणिआइं हवेइ (वंति) रिक्खाइं।
पावगहा मुह पुच्छे पाडीए सो लहुं मरइ ॥ २२३ ॥

तथाऽपि भुजङ्गचक्रेऽश्विन्यादीनि भवन्त्यृक्षाणि ।
पापग्रहा मुख-पुच्छयोर्नाड्यां स लघु म्रियते ॥ २२३ ॥

अर्थ—अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों को सर्पाकार लिखना चाहिए। पाप ग्रहों के नक्षत्र जब मुख और पूंछ की एक ही नाड़ी में पड़ें उस दिन मृत्यु कहनी चाहिए।

विवेचन - ज्योतिष शास्त्र में दो प्रकार के सर्प चक्रों का वर्णन मिलता है। प्रथम चक्र में आर्द्रा, पुनर्वसु आदि क्रम से नक्षत्रों को और द्वितीय में अश्विनी, भरणी आदि क्रम से नक्षत्रों को स्थापित करते हैं। कहीं कहीं प्रथम नाड़ी चक्र का नाम त्रिनाड़ी और द्वितीय का चतुर्नाड़ी सर्पचक्र बताया गया है।

× आर्द्रा से लेकर मृगशिर पर्यन्त त्रिनाड़ी सर्पाकार चक्र बना लेना चाहिए। इस चक्र के मध्य में मूल नक्षत्र पड़ेगा। जिस दिन एक ही नाड़ी में सूर्य नक्षत्र, चन्द्र नक्षत्र और नाम नक्षत्र पड़ें वह दिन अत्यन्त अशुभ होता है। इसी दिन रोगी की मृत्यु भी होती है।

अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त त्रिनाड़ी या चतुर्नाड़ी चक्र सर्पाकार बना लेना चाहिए। इस चक्र में जिस दिन सूर्य, चन्द्र

× आर्द्रादिकं लिखेच्चक्रं मृगांतं च त्रिनाडिकम्। भुजङ्गसदृशाकारं मध्ये मूलं प्रकीर्तितं ॥ यद्दिने एकनाडीस्थाश्चन्द्रनामार्क्षभास्कराः। तद्दिनेवर्जयेत्तत्र विवाहे विग्रहे रणे ॥

अश्विन्यादि लिखेच्चक्रं सर्पाकारं त्रिनाडिकम्। तत्रवेधवशाज्ज्ञेयं विवाहादि शुभाशुभं ॥ नाडीवेधेन नक्षत्राण्यश्विन्यार्द्रादि उत्तराः। हस्तेन्द्रमूल वारुण्याः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥ याम्यं सौम्यं गुरुर्योनिश्चित्रा मित्र अजाह्वये। धनिष्ठा चोत्तरा भाद्रा मध्यनाडी व्यवस्थिता ॥ कृत्तिका रोहणी सार्पं मघा स्वाति विशाखिके। उषा च श्रवणं पूषा पृष्ठनाडी व्यवस्थिता ॥ भरण्यादि नाडी वेधश्च षष्ठे च द्वितय क्रमात् ॥ —न. ज. पृ. १५२–१५३

अश्विन्यादीनि धिष्ण्यानि पंक्तियुक्तानि लिखेद्बुधः। नाडीचतुष्टये वेध सर्पाकारं पथाश्चक्रे ॥

अश्विन्यादीनि लिखेच्चक्रं रेवत्यंतं त्रिनाडिकम्। सर्पाकारे च ऋक्षाणि प्रत्येकं च वदाम्यहम् ॥

—ना. ज. पृ. १४७-१४८ तथा सूर्य-चक्र फणिचक्र पृ. १७१

और जन्म नक्षत्र का वेध हो उसी दिन मृत्यु समझनी चाहिए।

चक्र रचना—

आर्द्रादि त्रिनाड़ी सर्प चक्र

अश्विन्यादि चतुर्नाड़ी चक्र

अश्विन्यादि त्रिनाड़ी चक्र

शनि नक्षत्र चक्र निरूपण

जम्मिसरिक्खे रिक्खसे तं वयणे देह सूरपुत्तस्स।
चत्तारि पसत्थभुवे चलभुवि (य) चउह सुरिक्खाइं ॥२२४॥

आइच्चाइ धरेविभुअगह पनरहमाहि ठवे विणु अगह।
बारह बाहिरि तस्स या दिज्जइ जीविय मरण फुडं जणिज्जइ॥

आक्रांतभमादौ दत्वा भुजङ्गस्थापना अत्र ये ये ग्रहा येषु येषु भेषु स्युस्ते ते तेषु भेषु देयाः, ततोऽर्कभाद्रोहिणीनामभं यावद् गणयते। यद्यादानाडीमध्ये प्रथमं १ नवमं ६ त्रयोदशं १३ एकविंशं २१ पंचविंशं २५ वा स्यात्तदा मरणं यदि द्वितीय नाडीमध्ये द्वितीयं २ अष्टमं ८ चतुर्दशं १४ विंशं २० षटाविंशं २६ वा स्यात्तदा बाहुक्लेशः। यदि तु तृतीयनाडीमध्ये तृतीयं ३ सप्तमं ७ पंचदशं १५ एकोनविंशं १९ सप्तविंशं २७ वा स्यात्तदाऽल्पक्लेशः। शेषद्वादश भेषु आरोग्य। शुभाशुभ ग्रहवेधाच्च विशिष्य शुभाशुभं वाच्यम्।

—आ. सि. पृ. १२६-१२७

यस्मिन्शनिर्नक्षत्रे तद्वदने दत्त सूरपुत्राम्य ।
चत्वारि प्रशस्तभुजे चलभुजयोश्च षट्सु स्थाणि ॥२२४॥

अर्थ—शनिचक्र के मुख में शनि नक्षत्र को रखना चाहिए इससे आगे चार नक्षत्रों को दाहिनी भुजा पर और छः नक्षत्रों को पैरों पर रखना चाहिए।

वामभुयंमि उ चउरो हिययपए चेव दोण्णि नयणेसु ।
सीसम्मि तम्मि गुज्झे दो उद्धिइ देह नियमेणं ॥२२५॥

वामभुजे तु चत्वारि हृत्पदके चैव द्वे नयनयोः ।
शीर्षे तस्मिन् गुह्ये द्वे बुद्ध्या (!) दत्त नियमेन ॥२२५॥

अर्थ—इसके पश्चात् पुनः बुद्धिमत्तापूर्वक चार नक्षत्र बायीं भुजा पर, चार हृदय पर, दो दोनों नेत्रों में, दो सिर पर और दो गुह्यांगों पर रखने चाहिए * ।

शनि चक्रानुसार फलाफल निरूपण

दुक्खं लाहं यत्ता हादे सव्वाउ तहेव दुक्खं च ।
सुह पीदि अत्थ लाहो मरणं वि अ पावगहजुत्तो ॥२२६॥

दुःखं लाभो यात्रा घातः सर्वस्मात्तथैव दुःखं च ।
सुखं प्रीतिरर्थो लाभो मरणमपि च पापग्रहयुक्तः ॥ २२६ ॥

---

* शनिः स्याद्यत्र नक्षत्रे तद्दातव्यं मुखे ततः। चत्वारि दक्षिणे पाणौ त्रीणि त्रीणि च पादयोः ॥ चत्वारि वामहस्ते तु क्रमशः पंच वक्षसि। त्रीणि शीर्षे दृशो द्वे द्वे गुह्य एकः शनौ नरे ॥ निमित्तसमय तत्र पतितं स्थापना क्रमात्। जन्मर्क्षं नामऋक्षं वा गुह्यदेशे भवेद्यदि ॥ दृष्टं श्लिष्टं ग्रहैर्दुष्टैः सौम्यै रप्रेक्षितायुतम्। स्वस्थस्यापि तदा मृत्युः का कथा रोगिणः पुनः ॥

—यो. शा. श्लो. १९६–२००

शनिचक्रं नराकारं लिखित्वा सौरिमादितः। नामऋक्षं भवेद्यत्र ज्ञेयं तत्र शुभाशुभं ॥ मुखैकं दक्षदोस्तुर्ये षट्पादौ पंच हृत्करे। वामे तुर्यं त्रयं शीर्षे नेत्रे गुह्ये द्विकं द्विकं ॥ मुखे हानिर्जयो दक्षे भ्रम पादे श्रियो हृदि। वाम शीर्षे भय राज्यं नेत्रे सौख्यं मृतिर्गुदे ॥ तुर्याष्टद्वादशे यत्र यदा विघ्नकरः शनिः। तदा सौख्यं वपुस्थाने हृच्छीर्षे नेत्रदक्षयोः। तृतीयैकादशे षष्ठे यदा सौख्यकरः शनि। तदा विघ्नं शरीरस्थे मुखगुह्यांघ्रिवामदोः ॥

—न. ज. पृ. २०४

अर्थ—पापग्रह के नक्षत्र के संबन्ध से क्रमशः दुःख, लाभ, यात्रा, घात, अत्यन्त दुःख, सुख, प्रेम, धनलाभ और मृत्यु ये फल समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि नराकार शनि चक्र में पाप ग्रह का नक्षत्र मुख में पड़े तो दुःख, दाहिनी भुजा पर पड़े तो लाभ, पैरों पर पड़े तो यात्रा, बांयीं भुजा पर पड़े तो घात, हृदय पर पड़े तो अत्यन्त दुःख दाहिनी आंख पर पड़े तो प्रेम लाभ, बांयीं आंख पर पड़े तो धन लभा और गुह्याङ्गों पर पड़े तो मृत्यु होती है।

विवेचन—उपर्युक्त आचार्य के शनिचक्र के फलाफल और ज्योतिषतत्व, नरपतिजयचर्या आदि ज्योतिष ग्रन्थों में बताये गये शनि चक्र के फलाफल में अन्तर है। आचार्य ने पापग्रहों के नक्षत्रों का अंग विशेष पर पड़ने से फलाफल का निरूपण किया है, पर इतर ग्रन्थों में जन्म नक्षत्र के अंग विशेष पर पड़ने से फल का प्रतिपादन किया गया है।

ज्योतिषतत्त्व में बताया गया है कि प्रथम पुरुषाकार बनाकर शनि जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र को उस आकार के मुख में रखे पश्चात् उस नक्षत्र से आगे के चार नक्षत्र उस आकार के दाहिने हाथ में, छः दोनों पैरों में, पांच हृदय में, चार बायें हाथ में, तीन मस्तक में और दो दोनों नेत्रों में और दो दोनों गुह्य अंगों पर रखकर २७ नक्षत्रों का न्यास कर ले। जिसका जन्म नक्षत्र उस आकार के मुख में पड़े उसे हानि, दाहिने में जय, पैर में भ्रम; हृदय में लक्ष्मी लाभ, बायें हाथ में भय, मस्तक में राज्य, नेत्रों में सुख और गुह्य में पड़ने से मरण होता है। जिस समय शनि व्यक्ति की राशी से चौथी, आठवीं और बारहवीं राशि में रहकर अशुभफल प्रद होता है, उस समय वायु हृदय, सिर, दक्षिणनेत्रस्थ शनि सुखदायक होता है। जिस समय शनि व्यक्ति की राशि से तीसरी, ग्यारहवीं और छठी राशि में रहकर सुखदायक होता है उस समय गुह्य मुख और वाम नेत्रस्थ शनि अशुभजनक होता है।

वर्गचक्र-निरूपण

अकचटतपजस वग्गा एएहिं होइ नामसम्भूई।
(तह य) अइउएओ पंच सरा णं आणुपुव्वीए ॥२२७॥

अकचटतपयशा वर्गा एतेभ्यो भवति नामसम्भूतिः ।
तथा च अइउएओपञ्चस्वरा नन्त्रानुपूर्व्या ॥ २२७ ॥

अर्थ—अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग ये आठ वर्ग हैं और इनकी उत्पत्ति अ, क, च, ट, त, प, य और श इन अक्षरों से हुई है। अ, इ, उ, ए, ओ ये पांच स्वर हैं।

तिथियों की संज्ञा

नंदा× भद्दा (य जया रित्ता पुण्णा (पंच) तिही नेआ।
पडिवय बिदिया तिदिया चउत्थि तह पंचमी कमसो ॥२२८॥

नन्दा भद्रा च जया रिक्ता पूर्णा पञ्च तिथयो ज्ञेयाः ।
प्रतिपद् द्वितीया तृतीया चतुर्थी तथा पंचमी क्रमशः ॥२२८॥

अर्थ—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा ये पांच प्रकार की तिथियां होती हैं। १।६।११ तिथियां नन्दा, २।७।१२ तिथियां भद्रा, ३।८।१३ तिथियां जया, ४।९।१४ तिथियां रिक्ता और ५।१०।१५ तिथियां पूर्णा संज्ञक हैं।

नाम स्वर के भेद

उदिदो भमिदो भामिद सउम्भागओ [य] मुणेह अत्थमिओ।
पचादिणो णायव्वो नामसरो होइ निब्भंतो ॥ २२९ ॥

× नंदा भद्दा य जया, रित्ता य तिहि सनामफला ।
पडिवइ छट्ठि इगारसि पमुहा उ कमेण णायव्वा ॥
छट्ठी रिक्कदुयो बारसी अ अमावसा गयातही उ ।
चुद्द तिदिक्कदद्दा, वज्जिज्ज सुहेसु कम्मेसु ॥ -दि. शु पृ. ५२-५३
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ।
देवताश्चन्द्रसूर्यन्द्रा आकाशो धर्म एव च ॥ –भ. टी. जि ४ प. १६
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चेति त्रि न्विता ।
हीना मध्यासमा शुक्ला कृष्णा तु व्यत्ययात्तिथिः ॥
... ... रुद्रशनी त्याज्या त्रिदिनस्पर्शिनी तिथिः ।
... तिथित्रयस्पर्शान्यवमं मध्यमा च या ॥ —आ. सि. पृ. ४-६

उदितो भ्रमितो भ्रामितः सन्ध्यागतश्च जानीनास्तमितः ।
पञ्चदिनो ज्ञातव्यो नामस्वरो भवति निर्भ्रान्तम् ॥ २२९ ॥

अर्थ-नाम स्वरके पांच भेद हैं उदित, भ्रमित, भ्रामित, संध्यागत और स्तमित इनको पांच तिथियों में क्रमशः समझ लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि नन्दा (१।६।११) को उदित, भद्रा (२।७।१२) भ्रमित, जया (३।८।१३) को भ्रामित, रिक्ता (४।९।१४) को संध्यागत और पूर्णा (५।१०।१५) को स्तमित स्वर होता है।

जन्म स्वर और गर्भ स्वर का कथन

जम्मसरो रिक्खादो गब्भसरो वि अ तहेव णाअव्वो ।
दुअसत्तरिदिअहे (ह) सरो णायव्वो सत्थदिट्ठीए ॥२३०॥
जन्मस्वर ऋक्षाद्गर्भस्वरोऽपि च तथैव ज्ञातव्यः ।
द्विसप्ततिदिवसस्वरो ज्ञातव्यः शास्त्रदृष्ट्या ॥ २३० ॥

अर्थ—जन्म नक्षत्र के द्वारा जन्म स्वर का ज्ञान तथा गर्भ नक्षत्र द्वारा गर्भ स्वर का ज्ञान करना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार इन स्वरों का समय ७२ दिन होता है।

अनुस्वर या मास स्वर चक्र का वर्णन

कत्तिय मायसिरं चिअ बारसदि अहाइं तह य पुसस्स ।
उदएइ अयारसरो इइ कहियं सत्थइत्तेहिं ॥ २३१ ॥
कार्तिकमार्गशीर्षमेव द्वादश दिवसांस्तथा च पौषस्य ।
उदेत्यकार स्वर इति कथितं शास्त्रविद्भिः ॥ २३१ ॥

अर्थ—शास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि कार्तिक, मार्गशिर और पौष के पहले १२ दिनों तक अकार स्वर का उदय होता है। अर्थात् ३० दिन कार्तिक के, ३० दिन अगहन के और १२ दिन पौष के, इस प्रकार ७२ दिन अकार का उदय रहता है।

पुस्सट्ठारहदिअहे माहे तह फग्गुणस्स चउवीसा ।
दीसइ इयारसरो उइओ (त) ह सयलदरिसीहिं ॥२३२॥
पौषाष्टादशदिवसान् माघं तथा फाल्गुनस्य चतुर्विंशातिम् ।
दृश्यत इकारस्वर उदितस्तथा सकलदर्शिभिः ॥ २३२ ॥

अर्थ—सर्वज्ञ देव ने कहा है कि [इकार स्वर का पौष के अन्तिम १८ दिनों में तथा माघ के ३० दिनों में और फाल्गुन के प्रारंभ के २४ दिनों में उदय रहता है।

फग्गुणद् (छ) हदियहाइं (तह य) मुणेह तह चित्त-वइसाहे।
होइ उआरे उदओ जिट्ठस्स छहेव दिअहाइं ॥ २३३ ॥

फाल्गुनषड्दिवसांस्तथा च जानीत तथा चैत्र-वैशाखे।
भवत्युकार उदयो ज्येष्ठस्य षडेव दिवसान् ॥ २३३ ॥

अर्थ—उकार स्वर का उदय फाल्गुन के अंतिम ६ दिनों में, चैत्र और वैशाख मास के समस्त दिनों में तथा ज्येष्ठ के प्रारंभिक ६ दिनों में रहता है।

चउवीस जिट्ठदिअहे आसाढ़ तह य सावणादिणाइं।
अट्ठारह णेआइं एआरसरस्स उदउ त्ति ॥ २३४ ॥

चतुर्विंशतिं ज्येष्ठदिवसानाषाढं तथा च श्रावणदिनानि।
अष्टादश ज्ञेयान्येकारस्वरोदय इति ॥ २३४ ॥

अर्थ—एकार स्वर का ज्येष्ठ के अन्तिम २४ दिनों में, आषाढ़ के ३० दिनों में और श्रावण के प्रारम्भिक १८ दिनों में उदय रहता है।

सावणसिअपक्खस्स य बासदिअहाइँ होइ उदय त्ति।
भद्दवयं अस्सजुयं उहा (ओ आ) रसरस्स णाअव्वो ॥२३५॥

श्रावणसितपक्षस्य च द्वादश दिवसान् भवत्युदय इतिः।
भाद्रपदमश्वयुजमोकारस्वरस्य ज्ञातव्यः ॥ २३५ ॥

अर्थ—ओकार स्वर का उदय श्रावण मास के शुक्लपक्ष के १२ दिनों में, भाद्रपद के ३० दिन और आश्विन के ३० दिनों में रहता है, ऐसा समझना चाहिए।

विवेचन—इस ग्रंथ में आचार्य ने जिसे मास स्वर चक्र बतलाया है, ग्रंथान्तरों में उसे ऋतुस्वरचक्र बतलाया है, लेकिन स्वरों की दिन संख्या में अन्तर है। नीचे नरपतिजयचर्या और ज्योतिस्तत्त्व के आधार पर ऋतुस्वरचक्र और मास स्वर चक्र दिये जाते हैं।

ऋतुस्वर चक्र

अ ७२	इ २७	उ ७२	ए ७२	ओ ७२
वसन्त चैत्र=३० वैशाख=३० ज्येष्ठ=१२	ग्रीष्म ज्येष्ठ=१८ आषाढ़=३० श्रावण=२४	वर्षा श्रावण=६ भाद्र=३० आश्विन ३० कार्तिक ६	शरत कार्तिक=२४ अगहन=३० पौष=१८	हिम पौष=१२ माघ=३० फाल्गुन ३०
७२	७२	७२	७२	७२
६।३२।४३ अन्तरोदय	६।३२।४३ अन्तरोदय	६।३२।४३ अन्तरोदय	६।३२।४३ अन्तरोदय	६।३२।४३ अन्तरोदय

आचार्योक्त ऋतुस्वर या मासस्वर चक्र

अ ७२	इ ७२	उ ७२	ए ७२	ओ ७२
कार्तिक ३० अगहन ३० पौष १२	पौष १८ माघ ३० फाल्गुन २४	फाल्गुन ६ चैत्र ३० वैशाख ३० ज्येष्ठ ६	ज्येष्ठ २४ आषाढ़ ३० श्रावण १८	श्रावण १२ भाद्रपद ३० आश्विन ३०
७२	७२	७२	७२	७२

मास स्वर चक्र

अ	इ	उ	ए	ओ
मा.	श्रा.	चै.	ज्ये.	मा.
मा.	आ.	पौ.	का.	फा.
वै.	भा.	०	०	०
२	२	२	२	२
४३	४३	४३	४३	४३
३८	३८	३८	३८	३८

पक्षस्वर चक्र

अ	इ	उ	ए	ओ
कृ.	शु.	०	०	०
१	१	१	१	१
२१	२१	२१	२१	२१
४६	४६	४६	४६	४६

दिन स्वर चक्र

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०
घ ५	घ ५	घ ५	घ ५	घ ५
प २७	प २७	प २७	प २७	प २७
बा	कु	भु	वृ	मृ
११	१२	१३	१४	१५

घटिक स्वर चक्र

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५
घ ५	घ ५	घ ५	घ ५	घ ५
प २७	प २७	प २७	प २७	प २७
बा.	कु.	कु.	वृ.	मृ.

स्वर चक्र २० प्रकार के होते हैं—मायाचक्र, वर्णस्वरचक्र ग्रहस्वरचक्र, जीवस्वरचक्र, राशिस्वरचक्र, नक्षत्रस्वरचक्र, पिण्ड-स्वरचक्र, योगस्वरचक्र, द्वादशवार्षिकस्वरचक्र, ऋतुस्वरचक्र, मासस्वरचक्र, पक्षस्वरचक्र, पिण्डस्वरचक्र, योगस्वरचक्र, द्वादश-वार्षिकचक्र, ऋतुस्वरचक्र, मासस्वरचक्र, पक्षस्वरचक्र, तिथिस्वर चक्र, घटीस्वरचक्र, तिथिवाराद्यादिस्वरचक्र, तात्कालिकदिनस्वर चक्र, दिक्चक्र और देहजस्वरचक्र। इन स्वरचक्रों पर से जय पराजय, जीवन, मरण; शुभ, अशुभ आदि का ज्ञान किया गया है।

राशिस्वर का निरूपण

एवं रासिसरो विश्र णायव्वो होइ आणुपुव्वीए।
तुलयाई सयलाणं रविसंकमणेण अविअप्पं ॥२३६॥

एवं राशिस्वरोऽपि ज्ञातव्यो भवत्यानुपूर्व्या ।
तुलकादीनां सकलानां रविसंक्रमणेनाविकल्पं ॥ २३६ ॥

अर्थ--इसी प्रकार परम्परागत क्रम से राशिस्वर को भी अवगत कर लेना चाहिए। रवि के संक्रमण से तुलादि सभी राशियों के स्वरों को निश्चय से समझ लेना चाहिए।

विवेचन—द्वादश राशियों में कुल २७ नक्षत्र और प्रत्येक नक्षत्र में चार चरण होते हैं, इस प्रकार कुल १२ राशियों में २७×४=१०८ या १२×९=१०८ नक्षत्र चरण होते हैं। मेष राशि के ९ चरण वृष राशि के ९ चरण और मिथुन के ६ चरण, इस प्रकार २४ चरणों में अ स्वर का उदय, मिथुन के शेष ३ चरण, कर्क के ९ चरण और सिंह के ९ चरण इस प्रकार २१ चरणों में इ स्वर का उदय, कन्या के ९ चरण, तुला के ९ चरण और वृश्चिक के ३ चरण इस प्रकार २१ चरणों में उ स्वर का उदय, वृश्चिक के शेष ६ चरण धनु के ९ चरण और मकर के ६ चरण, इस प्रकार २१ चरणों में ए स्वर का उदय एवं मकर के शेष तीन चरण, कुम्भ के ९ चरण और मीन के ९ चरण इस प्रकार २१ चरणों में ओ स्वर का उदय रहतः है। राशि स्वर चक्र से किसी भी व्यक्ति की राशि के अनुसार उसके स्वर का ज्ञान करना चाहिए। राशि स्वर का उपयोग मृत्यु समय ज्ञात करने के लिए किया जाता है। ग्रहों की राशियों से उसके स्वर को मालुम कर व्यक्ति के नाम पर से उसका स्वर निकालकर मिलान करना चाहिए। यदि व्यक्ति का स्वर पाप ग्रहों से युक्त हो तो जल्द मृत्यु समझनी चाहिए। राशि स्वर का अन्य उपयोग मुकद्दमा का फल और मित्रता-शत्रुता के ज्ञात करने में भी होता है।

उदाहरण—देवदत्त के नाम का आदि अक्षर मीन राशि का छठा चरण होने के कारण उसका ओ राशि स्वर माना जायगा। जिस दिन प्रश्न पूछा गया है उस दिन सूर्य वृष

राशि के तीसरे चरण में, चंद्रमा कर्क राशि के प्रथम चरण में, मंगल धनु राशि के पाचवें चरण में, बुध कुम्भ राशि के छठे चरण में, गुरु मकर राशि के तीसरे चरण में, शुक्र कन्या राशि के चौथे चरण में, शनि धनु राशि के आठवें चरण में, और राहु सिंह राशि के तीसरे चरण में है। राशि स्वर चक्र के अनुसार सूर्य का आ स्वर, चंद्रमा का इ स्वर, मंगल का ए स्वर, बुध का ओ स्वर, गुरु का ए स्वर, शुक्र का उ स्वर, शनि का ए स्वर, और राहु का इ स्वर है। इस उदाहरण में देवदत्त का राशि स्वर ओ बुध के ओ स्वर से विद्ध है। बुध शुभ ग्रह है अतः इस प्रश्न में रोगी रोगमुक्त हो जायगा यह कहना चाहिए।

राशि स्वर चक्र ×

अ	इ	उ	ए	ओ
मेष ६ चु, चे, चो, ला ली, लू ले, लो, अ, अ ४, भ ४, कृ १,	मिथुन ३ के, को, हा पु० ३	कन्या ६ टो पा पी पू ष ण ठ पे पो उ फा. ३, ह. ४, चि. २,	वृश्चिक ६ नू ने नो या यि यू अनु ३, ज्ये. ४	मकर ३ खो, ग, गी, अ. १, धा. २
वृष ६ इ, उ, ए, ओ, ब, बी, बु, बे, बो, कृ. ३, रो. ४, मृ २	कर्क ६ ही, हु. हे. हो ड, डी. डू. डे, डो, पु १, पु ४, आ. ४	तुला ६ रा री रू रे रो ता ती तू ते चि. २, स्वा. ४, वि ३	धनु ६ ये यो भ भी भू ध फ ढ भे मू ४, पू षा ४, उ.षा. १	कुम्भ ६ गु गे गो स सी सू से सो द ध २, श.४, पू. भा. ३
मिथुन ६ का. की, कु, घ, ङ, छ, मृ. २, आर्द्रा ४	सिंह ६ म मी मू मे मो टा टी टू टे म. ४, पू.फा. ४, उ फा. १	वृश्चिक ३ नो न नी वि. १. अनु. २,	मकर ६ भो ज जी खी खू खे उ, षा. ३ श्र. ३	मीन ६ दी दू थ झ ञ दे दो च ची पू.भा.१, उ. भा.४, रे.४

× मेषवृषावकारे च मिथुनाद्याः षडंशकाः। मिथुनांशत्रयं चैवमिकारे सिंह कर्कटौ॥ कन्यातुला उकारे च वृश्चिकाद्यास्त्रयोंशकाः। एकारे वृश्चिकांत्यांशास्चापः षट् च मृगादिमाः॥ अंशास्त्रयो मृगस्यांत्याः कुम्भमीनौ तथो स्वरे। एवं राशिस्वरः

क्रूरग्रह के वेध द्वारा रोगी की मृत्यु का निश्चय

नक्खत्तं तह रासी वग्गं तह (य) तिही (य) वियाणेह ।
पंचवि कूरगहेहिं विद्धाइं णेह सो जिअइ ॥ २३७ ॥

नक्षत्रं तथा राशीन् वर्गं तथा च तिथींश्च विजानीत ।
पंचापि क्रूरग्रहैर्विद्धानि नेह स जीवति ॥ २३७ ॥

अर्थ—नक्षत्र, राशि, वर्ग, तिथि और स्वर ये पांचों ही यदि क्रूर ग्रहों से विद्ध हों तो वह रोगी जीवित नहीं रहता है *

अवकहडा चक्र का वर्णन

कोणेसु सरा देआ अट्ठावीसं उ तह य रिक्खाइं ।
इअ अवकहडाचक्के चउदिसाइसु पयत्तेण ॥२३८॥
अवकहडा मटपरता णयभज (ख) खा तह य तत्थगसद(द)चला
मेसाइसुरासीओ णंदाइतिहीउ सयलाउ ॥ २३९ ॥

कोणेषु स्वरा देया अष्टाविंशतिस्तु तथा चर्क्षाः ।
इत्यवकहडाचक्रे चतुर्दिशादिषु प्रयत्नेन ॥ २३८ ॥
अवकहडा मटपरता नयभजखास्तथा च तत्र गसदचला ।
मेषादिसुराशयो नन्दादितिथयः सकलाः ॥ २३९ ॥

अर्थ—चारों दिशाओं के कोणों में स्वरों को स्थापित कर देना चाहिए तथा अट्ठाईस नक्षत्रों को यथास्थान रख देना चाहिए. इस अवकहोड़ा चक्र में अवकहड़ा, मटपरता, नयभजखा, गसदचला इन नक्षत्र चरण वाले अक्षरों को मेषादि द्वादश राशियों को तथा नन्दादि तिथियों को स्थापित कर देना चाहिए ।

पोडशो नवांशकक्रमोदयः ॥ नक्षत्रचरणेनोदाहरणम् अश्विन्यादिपंचनक्षत्र चरणानामस्वरः स्वामी। पुनर्वस्वादिपंचनक्षत्राणामुत्तराफाल्गुन्येकचरणसहितचरणानाभिः स्वरः स्वामी। उत्तराफाल्गुनीचरणत्रयसहित हस्तादिनक्षत्रचतुष्टयानुराधा चरणद्वयसहितपादानामुः स्वरः स्वामी। अनुराधा चरणद्वयज्येष्ठादिनक्षत्र चतुष्टय श्रवणत्रय सहितैर्विंशति चरणानामेकारः स्वरः स्वामी। श्रवणचरणैकधनिष्ठादि रेवत्यंतचरणैकविंशतिचरणानामोस्वरः स्वामी। —न. ज. पृ. १४-१५

*नक्षत्रेऽस्ते रुजो वर्गे हानिः शोकः स्वरेऽस्तगे। विघ्नं तिथौ भीतिः पंचास्ते मरणं ध्रुवम् ॥ —न. ज. पृ. ६३

विवेचन—आचार्य ने उपर्युक्त दो गाथाओं में सर्वतोभद्र, शतपदचक्र, अवकहोड़ा चक्र इन तीनों का ही संक्षेप में वर्णन किया है। एक ही अवकहडा चक्र में उक्त तीनों चक्रों का संमिश्रण कर दिया है। आचार्योक्त अवकहडाचक्र को नीचे दिया जा रहा है—

अवकहडा चक्र

अ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले	मा
म	उ	ऊ	व	क	ह	ड	ऊ	म
भ	ल	लृ	लृ	मि	क	लु	म	पू
रे	ख	मे	ओ	र, मं १-६-११	औ	लि	ट	उ
उ	द	मी	शु ४-९-१४	श ५-१०-१५	बं, बु २-७-१२	क	प	ह
पू	ल	कु	अः	गु. ३-८-१८	ध	तु	र	चि
श	ग	ऐ	म	घ	ह	प	त	स्वा
घ	श्र	ख	ज	भ	य	न	श्र	वि
ई	अ	म	उ	पू	मू	ज्ये.	म	इ

होड़ा या शतपदचक्र

अ	व	क	ह	ड	म	ट	प	र	त
इ	वि	कि	हि	डि	मि	टि	पि	रि	ति
उ	वु	कु घ ङ. छ	हु	डु	मु	टु	पु ष ण ठ	रु	तु
ए	वे	के	हे	डे	मे	टे	पे	रे	ते
ओ	वो	को	हो	डो	मो	टो	पो	रो	तो

न	य	भ	ज	ख	ग	स	द	च	ल
नि	यि	भि	जि	खि	गि	सि	दि	चि	लि
नु	यु	भु ध फ ढ	जु	खु	गु	सु	दु थ झ ञ	चु	लु
ने	ये	भे	जे	खे	गे	से	दे	चे	ले
नो	यो	भो	जो	खो	गो	सो	दो	चो	लो

अंशचक्र—इस चक्र में २८ रेखायें सीधी और २८ रेखाएं आड़ी खींचकर चक्र बना लेना चाहिए। ईशान कोण की रेखा को आरम्भ कर २८ नक्षत्रों को उनके पाद द्योतक अक्षर क्रम से रख लेना चाहिए। पश्चात् जो ग्रह जिस नक्षत्र के जिस पाद में हो उसको वहां रख देना और उस रेखा में ग्रह का वेध देखना चाहिए। नक्षत्र के चौथे पाद में ग्रह हो तो आदि, आदि में रहे तो चतुर्थ, द्वितीय पाद में रहने से तृतीय और तृतीय मे रहने से द्वितीय पाद विद्ध होता है। इस चक्र के अनुसार यदि मनुष्य के नाम का आदि अक्षर शुभ ग्रह द्वारा विद्ध हो तो हानि, एक पाप ग्रह द्वारा विद्ध हो तो अमंगल, रोग आदि और दो पाप ग्रहों द्वारा विद्ध हो तो मृत्यु समझनी चाहिए।

अंशचक्र में नक्षत्र का जो पाद ग्रह द्वारा विद्ध होता है, उस पाद में विवाह करने से वैधव्य, यात्रा करने से महाभय, रोग की उत्पत्ति होने से मृत्यु और संग्राम होने से पराजय या नाश होता है। चन्द्रमा जिस दिन जिस नक्षत्र के पाद में रहे उस नक्षत्र का वह पाद यदि चन्द्रमा के सिवा अन्य ग्रहों द्वारा विद्ध हो तो उस समय में कोई भी शुभ कार्य प्रारंभ नहीं करना चाहिए क्योंकि उस समय में किया गया कोई भी कार्य पूरा नहीं होता है।

अवकहडाचक्र का उपसंहार

इय अवकहडाचक्कं भणिअं सत्थाणुसारदिट्ठीए।
पण्हया (ण्हा) लस्स य लग्गं भणिज्जमाणं निसामेह ॥२४०॥

अंशचक्र

कृ रो मृ आ पु पु आ

अ इ उ ए ओ वा वि वू वे वो क कि कु घ ङ छ के को ह हि हु हे हो डा डि डु डे डो

इत्यक्षकहडाचक्रं भणितं शास्त्रानुसारदृष्ट्या ।
प्रश्नकालस्य च लग्नं निशामयत ॥ २४० ॥

अर्थ—इस प्रकार अवकहडाचक्र का कथन शास्त्रानुसार किया गया है । अब प्रश्नकाल के लग्न का कथन किया जाता है, सुनो ।

प्रश्नकाल काल के लग्न का पाप ग्रह से युक्त और दृष्ट होने फल

दूअस्स पण्हयाले लग्गं दिट्ठं जुअं च पावेहिं ।
ता मरइ रोअगहिंओ इयरं पि असोहणं कज्जं ॥२४१॥

दूतस्य प्रश्नकाले लग्नं दृष्टं युक्तं च पापैः ।
तदा म्रियते रोगगृहीत इतरमप्यशोभनं कार्यम् ॥ २४१ ॥

अर्थ—पृच्छक के प्रश्न समय में यदि लग्न पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो रोगी का मरण समझना चाहिए । यदि अन्य कार्यों के संबंध में प्रश्न किया गया हो तो भी अमङ्गल दायक फल समझना चाहिये ।

विवेचन—जिस समय कोई प्रश्न पूछने आवे, उस समय का लग्न गणित विधि से बना लेना चाहिए । ज्योतिष शास्त्र में लग्न का साधन इष्ट काल पर से किया गया है । अतएव प्रथम इष्ट काल बनाने के नियम दिये जाते हैं:-१-सूर्योदय से १२ बजे दिन के भीतर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना (२½) करने से घट्यादिरूप इष्टकाल होता है । जैसे मानलिया कि वि. सं. २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को प्रातःकाल ८ बज कर १५ मिनट पर किसी ने प्रश्न किया । उपर्युक्त नियम के अनुसार इस समय का इष्टकाल अर्थात् ५ बजकर ३५ मिनट सूर्योदय काल को प्रश्न समय ८ बज कर १५ मिनट में से घटाया (८-१५)-(५-३५)=(२-४०) इसको ढाई गुना किया तो ६ घटी ४० पल इष्ट काल हुआ । २—यदि १२ बजे दिन से सूर्यास्त के अन्दर का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्यास्त का अन्तर कर शेष को ढाई गुना (२½) कर दिनमान में से अपने घटाने पर इष्टकाल होता है । उदाहरण—२००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया

सोनवार को २ बज कर २५ मिनट पर किसी ने प्रश्न किया है।
उपर्युक्त नियम के अनुसार-सूर्यास्त ६-२५
　　　　　　　　　प्रश्न समय २-२५
　　　　　　　　　　　　　　४-० इसे ढाई गुना किया तो

$\frac{४ \times ५}{२}$ =१० घटी हुआ। इसे दिन मान ३२ घटी ४ पल में से घटाया-

३२-४
१०
२२-४ इष्ट काल हुआ।

३-सूर्यास्त से १२ बजे रात तक प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान में जोड़ देने से इष्टकाल होता हैं। उदाहरण-सं २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को रात १० बज कर ४५ मिनट का इष्टकाल बनाना है। अतः
प्रश्न समय १०।४५
सूर्यास्त समय ६।४५
　　　　$४।२० = ४ + \frac{२०}{६०} = ४ + \frac{१}{३} = \frac{१३}{३} \times \frac{५}{२} = \frac{६५}{६} = १०\frac{५}{६} \times \frac{६०}{५} = ५०$ अर्थात्
१० घटी ५० पल हुआ।

४—यदिरात के १२ बजे के बाद और सूर्योदय के पहले का प्रश्न हो तो प्रश्न समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर ६० घटी में से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—सं. २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार रात के ४ बज कर १५ मिनट का इष्टकाल बनाना है, अतः उपर्युक्त नियम के अनुसारः—
३-३५ सूर्योदय काल
४-१५ प्रश्न समय
$१।२० = १ + \frac{२०}{६०} = १ \times \frac{१}{३} = \frac{४}{३} \times \frac{५}{२} = \frac{१०}{३} = ३\frac{१}{३} \times \frac{६०}{५} = २०$ अर्थात् ३ घटी २० पल हुआ, इसे ६० घटी में से घटाया—६०-०
　　　　　　　　　　　　　　　　३-२०
　　　　　　　　　　　　　　　५६-४० अर्थात् ५६ घटी ४० पल इष्ट काल हुआ।

५—सूर्योदय से लेकर प्रश्न समय तक जितना घण्टा, मिनटात्मक काल हो उसे ढाई गुना कर देने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को ४ बजकर ४८ मिनट सायंकाल का प्रश्न है और सूर्योदय ५ बजकर ३५ मिनट होता है अतः सूर्योदय ५ बजकर ३५ मिनट से प्रश्न समय ४ बजकर ४८ मिनट तक के समय को जोड़ा तो ११ घंटा १३ मिनट हुआ, इसे ढाई गुना किया—११+$\frac{१३}{६०}$=$\frac{६७३}{६०}$×$\frac{५}{२}$=$\frac{६७३}{२४}$=२८$\frac{१}{२४}$×$\frac{६०}{१}$=$\frac{५}{२}$=२$\frac{१}{२}$×$\frac{६०}{१}$=३० अर्थात २८ घटी २ पल ३० विपल इष्ट काल हुआ।

प्रश्न लग्न बनाने की सरल विधि

जिस दिन का लग्न बनाना हो, उस दिन के सूर्य के राशि और अंश पञ्चांग में देखकर लिख लेना चाहिए। आगे दी गई लग्न सारणी में राशि का कोष्ठक बाईं ओर अंश का कोष्ठक ऊपरी भाग में है। सूर्य की राशि के जो राशि के सामने अंश के नीचे जो अंक संख्या मिले, उसे इष्टकाल में जोड़ दे, वही योग या उसके लगभग जिस कोष्ठक में मिले उसके बायीं ओर राशि का अंक और ऊपर अंश का अंक रहता है। ये ही दोनों अंक लग्न के राशि अंश होंगे त्रैराशिक द्वारा कला विकला का प्रमाण भी निकाल लेना चाहिये।

उदाहरण—वि. सं. २००१ वैशाख शुक्ला २ सोमवार को पंचांग में सूर्य ०।१०।२८।५७ लिखा है। लग्न सारणी में अर्थात् मेष राशि के सामने और १० अंश के नीचे देखा तो ४।७ ४२ अंक मिले। इन अंकों को इष्ट काल में जोड़ दिया—

२३।२२।० इष्ट काल
४। ७।४२ लग्न सारणी में प्राप्त फल

२७।५६।४२ इस योग को पुनः लग्न सारणी में देखा तो सारणी में २७।२१।४२ तो कहीं नहीं, किन्तु ४।२३ के कोठे में २७।२४।५६, लगभग संख्या होने के कारण यहां यही लग्न मान लिया जायगा। अतएव सिंह लग्न प्रश्न लग्न होगा, सिंह को लग्न स्थान में रख, अवशेष राशियों को क्रमशः अन्य भावों में स्थापित करना देना चाहिए। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों का भी लग्न बनालेना चाहिए।

द्वादश भावों में पञ्चाङ्ग में से देखकर ग्रह स्थापित करने चाहिए। यदि लग्न स्थान में पाप ग्रह हों या लग्न स्थान पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो रोगी की मृत्यु समझनी चाहिए।

ग्रहों की दृष्टि जानने का ज्योतिष शास्त्र में यह नियम है कि जो ग्रह जहां रहता है, वहां से सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। पर विशेष बात यह है कि शनि अपने स्थान से तीसरे और दशवें स्थान को, बृहस्पति अपने स्थान से पांचवें और नवनें स्थान को एवं मंगल चौथे और आठवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। दृष्टि का विचार पौर्वात्य और पाश्चात्य मत में विभिन्न प्रकार का है, लेकिन प्रश्न लग्न का विचार करने के लिए उपर्युक्त पूर्ण दृष्टि वाला विचार उपयुक्त है।

प्रश्न लग्न से फल बतलाने के लिए ग्रहों का उच्च नीच मालुम कर लेना भी आवश्यक है। अतः उच्च, नीच, विचार निम्न प्रकार समझना चाहिए।

सूर्य मेष राशि के १० अंश में, चन्द्रमा वृष राशि के ३ अंश में, मंगल मकर राशि के २८ अंश में, बुध कन्या राशि के १५ अंश में, गुरु कर्क राशि के ५ अंश में, शुक्र मीन राशि के २७ अंश में शनि तुला राशि के २० अंश में, राहु वृषभ राशि और केतु वृश्चिक राशि में परमोच्च का होता है। और जिस ग्रह की जो उच्च राशि है, उससे सातवीं नीच राशि होती है। प्रश्न लग्न से फल का विचार करते समय इस उच्च और नीच राशि व्यवस्था का विचार भी करना चाहिए।

उच्च नीच बोधक चक्र

रवि	चंद्रमा	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्र०
मेष १० अंश	वृष ३ अंश	मकर २८ अंश	कन्या १५ अंश	कर्क ५ अंश	मीन २७ अंश	तुला २० अंश	वृषभ	वृश्चिक	उच्च
तुला १०	वृश्चिक ३ अंश	कर्क २८ अंश	मीन १५ अंश	मकर ५ अंश	कन्या २७ अंश	मेष २० अंश	वृश्चिक	वृषभ	नीच

अट्ठम ठाणम्मि ससी जइ लग्गो होइ पावसंदिट्ठो ।
अहव जुओ आएसह मरणं रोएहि गहिअस्स ॥ २४२ ॥×

अष्टम स्थाने शशी यदि लग्नो भवति पाप संदृष्टः ।
अथवा युत आदिशत मरणं रोगैर्गृहीतस्य ॥ २४२ ॥

अर्थ—यदि प्रश्न कुण्डली में आठवें स्थान में चन्द्रमा हो और लग्न पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो रोगी का मरण समझना चाहिए।

विवेचन—ग्रन्थान्तरों में बताया गया है कि प्रश्न लग्न में पाप ग्रह हों और चन्द्रमा बारहवें, आठवें, सातवें, छठवें में हो तो रोगी की मृत्यु समझनी चाहिए शनि यदि अष्टमेश होकर बारहवें भाव में हो और मंगल तृतीयेश होकर आठवें भाव में हो तो भी रोगी की मृत्यु होती है। लग्न स्थान में बुध, शुक्र और गुरु हों तथा आठवें और छठे भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो रोगी जल्द रोग से मुक्त होता है। पांचवें भाव में शुक्र हो, शनि चतुर्थ भाव में हो और रवि षष्ठेश होकर सातवें या आठवें भाव में हो तो रोगी एक दो माह कष्ट पाने के बाद रोग मुक्त होता है।

प्रश्न लग्न के स्वामी क्रूर ग्रह रवि, मंगल हों और बारहवें या सातवें भाव में स्थित हों तो रोगी की १० दिन के भीतर मृत्यु समझनी चाहिए। इस प्रकार ग्रहों की विभिन्न परिस्थितियों से रोगी के जीवन मरण का विचार किया गया है।

× पिट्ठोदये विलग्गे कूरा लग्गत्थ हिबुग दसमाइया ।
जइ हुंति अट्ट छट्ठमरासीसु निसाहिवो होति ॥
तो रोगी मरइ धुवं अहवा लग्गाहिवो पहो अत्थं ।
मुवणमइ तो वि मरणं रोगी सज्जो वि खणं नेइ ॥

—सं. रं. ओइ. दा. ११८–१६

प्रश्नलग्नोपगं पापभं रोगिणः पापयुक्तेऽपि चाष्टमर्क्षे यदा ।
पापयोरन्तरे पापयुक्तो ऽष्टमे चंद्रमा मृत्युयोगो भवेत्सत्वरम् ॥
प्रश्नलग्नखगे पापखेटा व्यये नैधने चन्द्रमा व नगे लग्नभे ।
नैधने शत्रुभे सत्वरं रोगिणो मृत्युयोगस्तदा व्यत्यये व्यत्ययः ॥
चन्द्रे लग्ने कलत्रेऽर्के शीघ्रं रोगी विनश्यति । कार्येशो मेषभे भौमे चन्द्र युक्ते च नश्यति ॥

—प्र भू. पृ. ५३–५५

रोगोत्पत्ति के नक्षत्रों के अनुसार रोग की समय मर्यादा

णहजाणं (अह) व दिणे पच्चेयं इह कहेमि किं बहुणा ।
पुव्वसूरी (मुणी) हिं भणिए लवमित्तं जए अ जीविता॥२४३

नमजानामथवा दिनानि प्रत्येकमिह कथयामि किं बहुना ।
पूर्वमुनिभिर्भणितानि लवमात्रं जगति च जीवित्वा ॥२४३॥

अर्थ—पूर्वाचार्यों ने इस संसार में थोड़े दिन तक जीवित रहकर रोगोत्पत्ति के दिन के नक्षत्र के अनुसार जो रोग की समय मर्यादा का कथन किया है उसे कहता हूं, अधिक क्या।

दह दिअह अस्सिणीए भरणीए हवंति पउरदि अहाइं ।
सत्त दिणा कत्तियाए रोहिणीरिक्खे य पंचेव ॥२४४॥

दश दिवसा अश्विन्यां भरण्यां भवन्ति प्रचुर दिवसाः ।
सप्त दिनानि कृत्तिकायां रोहिण्यृक्षे च पंचैव ॥ २४४ ॥

अर्थ—यदि अश्विनी नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १० दिन तक, भरणी में उत्पन्न हो तो बहुत दिन तक, कृत्तिका में उत्पन्न हो तो ७ दिन तक और रोहिणी में उत्पन्न हो तो ५ दिन तक रोगी बीमार रहता है। *

दह दियह मिगसिरम्मि अ पउरादिणाइं हवंति अद्दाए ।
पक्ख पुणव्वसुम्मि अ दह दिअहे जाण पुस्सम्मि ॥२४५॥

दश दिवसा मृगशिरसि च प्रचुरदिनानि भवन्त्यार्द्रायाम् ।
पक्षं पुनर्वस्वोश्च दश दिवसा जानीहि पुष्ये ॥ २४५ ॥

अर्थ-यदि मृगशिर नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १० दिन तक, आर्द्रा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो अधिक दिन तक, पुनर्वसु नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १५ दिन तक और पुष्य नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १० दिन तक रोगी बीमार रहता है।

---

* जातरोगस्य पूर्वार्द्रा स्वाति ज्येष्ठादि भैर्मृतिः । भवेन्नीरोगता रेवत्यनु राधासु कष्टतः ॥ मासान्मृगोत्तराष ढे विंशत्यह्नां मघासु च । पक्षेण तु द्विदैवत्ये धनिष्ठाहस्तगोस्तथा ॥ भरणीवारुणश्रोत्र चित्रास्वेकादशाहतः । अश्विनी कृत्तिका रक्षोनक्षत्रेषु नवाहतः ॥ आदित्यपुष्यादिर्बुध्नरोहिण्यार्यमरोगे तु । सप्ताहादिह ताराया यदि स्यादनुकूलता ॥ —आ. सि. पृ. १२६

पउरादिणे (ण) णिद्दिट्ठ हु।) असिलेसाए महाइ मासिक्कं ।
तह पुव्वफग्गुणीए सत्तेव एगवीसं च उत्तराए हु ॥२४६॥

प्रचुरदिनानि निर्दिष्टान्याश्लेषायां मघायां मासिकं ।
तथा पूर्वाफाल्गुन्यां सप्तैवैकविंशति चोत्तरायां खलु ॥२४६॥

अर्थ—यदि आश्लेषा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो अत्यधिक दिन तक, मघा में रोग उत्पन्न हो तो एक मास तक पूर्वाफल्गुनी में उत्पन्न हो तो सात दिन तक और उत्तराफाल्गुनी में रोग उत्पन्न हो तो इक्कीस दिन तक रोगी बीमार रहता है।

एयारस हत्थम्मि अ एगदिणं च उत्तराए हु ।
माई सत्त दिअहे दह दिअहे तह विसाहाए ॥२४७॥

एकादश हस्ते चैकदिनं जानीहि तथा च चित्रायाम् ।
स्वात्यां सप्त दिवसान् दश दिवसांस्तथा विशाखायाम् ॥२४७॥*

अर्थ-यदि हस्त नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो ११ दिन तक चित्रा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १ दिन तक, स्वाति नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो ७ दिन तक और विशाखा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १० दिन तक रोगी बीमार रहता है।

अणुराहाए वीसं जिट्ठाए विआण पउरदिअहाइं ।
मूलम्मि चउव्वीसं पुव्वासाढाए एअं उ ॥ २४८ ॥

---

*कृत्तिकायां यदा व्याधिरुत्पन्नो भवति स्वयम् । नवरात्रं भवेत्पीड़ा त्रिरात्रं रोहिणी सु च ॥ मृगशीर्षे पंचरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः । पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रेण मोचनम् ॥ नव रात्र तथाऽऽश्लेषे श्मशानान्तं मघाम् च । द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासुत्रिपञ्चकम् ॥ हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्ध मासकं । मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः ॥ मित्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकं । मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकं ॥ उत्तरे दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणे तथा । धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुणे च दशाहक ॥ पूर्वभाद्रपदे देवि ऊनविंशतिवासरम् । त्रिपंचाहिर्बुध्ने च रेवत्यां दश रात्रकं॥ अहोरात्रं तथाऽश्विन्यां भरण्यां तु गतायुषः । एवं क्रमेण जानीयान्नक्षत्रेषु यथोदितम् ॥

-भै. र. ग. १०५-१०६

अनुराधायां विंशतिं ज्येष्ठायां विजानीहि प्रचुरदिवसान् ।
मूले चतुर्विंशतिं पूर्वाषाढायामेकं तु ॥ २४८ ॥

अर्थ—यदि अनुराधा में रोग उत्पन्न हो तो २० दिन तक ज्येष्ठा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो अत्यधिक दिन तक, मूल नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो २४ दिन तक और पूर्वाषाढा में रोग उत्पन्न हो तो एक दिन तक रोगी बीमार रहता है।

दह दिअह उत्तराए सवणम्मि विआण पंच वरदिअहे ।
पक्खं धणिट्ठरिक्खे वीसदिणा सयदिसाए य ॥ २४९ ॥

दश दिवसानुत्तरायां श्रवणे विजानीहि पंच वरदिवसान् ।
पक्षं धनिष्ठर्क्षे विंशति दिनानि शतभिषायां च ॥२४९॥

अर्थ—यदि उत्तराषाढा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १० दिन तक, श्रवण नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो ५ दिन तक, धनिष्ठा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो १५ दिन तक और शतभिषा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो २० दिन तक रोगी रोगग्रसित रहता है।

पुव्वस्स भद्दवदा पउर दिणे उत्तराइ तह वीसं ।
इगवीसं चिय रिक्खे रेवइदिअहे समुद्दिट्ठे ॥ २५० ॥

पूर्वायां भाद्रपदायां प्रचुरदिनान्युत्तरायां तथा विंशतिः ।
एकविंशतिरेवर्क्षे रेवत्यां दिवसाः समुद्दिष्टाः ॥ २५० ॥

अर्थ—यदि पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो बहुत दिन तक, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो २० दिन तक और रेवती नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो २१ दिन तक रोगी रोग पीड़ित रहता है।

एतावंति दिणाइं चिट्ठइ रोओ इमेसु रिक्खेसु ।
पडियस्स य रोइस्स य किं बहुणा इह पलावेण ॥२५१॥

एतावंति दिनानि तिष्ठति रोग एष्वृक्षेषु ।
पतितस्य च रोगिणश्च किं बहुनेह प्रलापेन ॥२५१॥

अर्थ—इस प्रकार भिन्न २ नक्षत्रों में उत्पन्न होने पर रोग चरित्रहीन व्यक्ति के लिए उपर्युक्त दिनों तक कष्ट देता रहता है, इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

विवेचन—मुहूर्त चिन्तामणि में बतलाया है कि स्वाति, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा और आश्लेषा इन नक्षत्रों में ज्वर की उत्पत्ति हो तो मृत्यु, रेवती और अनुराधा इन दो नक्षत्रों में ज्वर की उत्पत्ति हो तो बहुत दिन तक बीमारी, भरणी, श्रवण, शतभिषा और चित्रा इन नक्षत्रों में ज्वर उत्पन्न हो तो ११ दिन तक कष्ट, विशाखा, हस्त और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में ज्वर उत्पन्न हो तो १५ दिन तक कष्ट, उत्तराभाद्रपद उत्तराफाल्गुनी, पुष्य, पुनर्वसु और रोहिणी इन नक्षत्रों में ज्वर उत्पन्न हो तो ७ दिन तक कष्ट एवं मृगशिर और उत्तराषाढ़ा में ज्वर हो तो एक माह तक कष्ट रहता है। आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा शतभिषा, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढा, विशाखा धनिष्ठा, कृत्तिका इन नक्षत्रों में, रविवार, मंगलवार, शनिवार इन दिनों में और चतुर्थी, एकादशी, चतुर्दशी एवं षष्ठी इन तिथियों में यदि रोग उत्पन्न हो तो उस रोगी की मृत्यु होती है।

जिस समय रोग उत्पन्न हुआ हो, उस समय की लग्न चर हो तो कुछ दिनों के बाद रोग दूर हो जाता है, स्थिर लग्न में रोग उत्पन्न हो तो अधिक दिन तक बीमारी जाती है और द्विस्वभाव लग्न में रोग उत्पन्न होने से मृत्यु होती है। लग्न के अनुसार रोगी की बीमारी का समय ज्ञात करने के लिए ग्रहों का विचार भी करलेना आवश्यक है। मृत्यु दिन निकालने के लिए तारा विचार भी किया जाता है। रोगी के जन्म नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनकर नौ का भाग देने से ३, ५, और ७, शेष रहने पर मृत्यु होती है। अभिप्राय यह है कि रोगी के जन्म नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनने पर जिस दिन तीसरी, पांचवीं और सातवीं ताराएं आवें उसी दिन उसकी मृत्यु समझनी चाहिए। उदाहरण जैसे यज्ञदत्त नामक रोगी व्यक्ति की मृत्यु तिथि निकालनी है, इसका जन्म नक्षत्र कृत्तिका है और आज का नक्षत्र आश्लेषा है।

यहां जन्म नक्षत्र कृत्तिका से आश्लेषा तक गणना की तो ७ संख्या आई इसमें ६ का भाग दिया तो लब्धि शून्य और शेष ७ रहा अतः यहां ७ वीं तारा हुई इस कारण आज का दिन रोगी के लिए मरण दायक समझना चाहिए।

समय पर ही मृत्यु होती है, इसका कथन

दिट्ठं रिट्ठो वि पुणो जीवइ तावंति सो वि दिग्रहाइं।
जो लेइ अणसणं जिम्र र ' जीवइ तत्तिए दियहे ॥२५२॥

दृष्टरिष्टोऽपि पुनर्जीवति तावतः सोऽपि दिवसान्।
यो लात्यनशनमेव स जीवति तावतो दिवसान् ॥ २५२ ॥

अर्थ—अरिष्टों के दृष्टिगोचर होने पर भी जितने दिन की आयु शेष है उतने दिन तक जीवित रहता है। यदि कोई उपवास भी करता है तो भी वह उतने दिन तक अवश्य जीवित रहता है। तात्पर्य यह है कि अरिष्ट दर्शन द्वारा जितने दिन की आयु ज्ञात हुई है उतने दिन तक अवश्य जीवित रहना पड़ता है।

इस ग्रन्थ के निर्माण की समय मर्यादा का कथन

इय दिग्रहतएणं चिग्र बहुविहसत्थाणुसारदिट्ठीए।
लवमित्त चिग्र रइय (यं) सिरिरिट्ठसमुच्चयं सत्थं ॥२५३॥

इति दिवसत्रयेणापि च बहुविध शास्त्रानुसारदृष्ट्या।
लवमात्रमेव रचितं श्री रिष्टसमुच्चयं शास्त्रं ॥ २५३ ॥

अर्थ—इस प्रकार तीन दिनों में नाना प्रकार के शास्त्रों की दृष्टि के अनुसार थोड़े ही समय में श्री रिष्टसमुच्चय शास्त्र रचा गया है अभिप्राय यह है कि इस ग्रन्थ का निर्माण तीन दिनों में हुआ है।

ग्रन्थ कर्त्ता की प्रशस्ति

जयउ जए जियमाणो संजमदेवो मुणीसरो इत्थ।
तहवि हु संजमसेणो माहवचन्दो गुरू तह य ॥२५४॥

जयतु जगति जितमानः संयमदेवो मुनीश्वरोऽत्र ।
तथापि खलु संयमसेनो माधवचन्द्रो गुरुस्तथा ॥२५४॥

अर्थ—संसार में विजयी मुनिवर संयमदेव जय को प्राप्त हों। इन संयमदेव के गुरु संयमसेन और इन संयमसेन के गुरु माधवचन्द्र भी जय को प्राप्त हों।

रइयं बहुसत्थत्थं उवजीवित्ता हु दुग्गएवेण ।
रिट्ठसमुच्चयसत्थं वयणेण [संयम] देवस्स ॥२५५॥

रचितं बहुशास्त्रार्थमुपजीव्य खलु दुर्गदेवेन ।
रिष्टसमुच्चयशास्त्रं वचनेन संयमदेवस्य ॥ २५५ ॥

अर्थ—संयमदेव के उपदेशानुसार दुर्गदेव ने नाना शास्त्रों के आधार पर इस रिष्टसमुच्चय शास्त्र की रचना की है।

जं इह किंमि वरिट्ठं अयाणमाणेण अहव गव्वेण ।
तं रिट्ठसत्थणिउणे सोहेत्ति महीइ पयडंतु ॥२५६॥

यदिह किमप्यरिष्टमजानताऽथवा गर्वेण ।
तदिष्ट शास्त्रनिपुणाः शोधयित्वा मह्यां प्रकटयन्तु ॥ २५६ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थ में अज्ञान या प्रमाद से जो कुछ त्रुटि रह गई हो, उसका रिष्टशास्त्र के ज्ञाता संशोधन कर मुझे बतलाने का कष्ट करें।

जोऽच्छद्दंसण-तक्क-तक्कि अइम (मई) पंचंग-सद्दागमे ।
जो णी (णी) सेसमहीसनीतिकुसलो वाइब्भ (इभ) कंठीरवो ॥
जो सिद्धंतमपारतीरसुनिही तीरेवि पारंगओ ।
सो देवो सिरिसंजमाइमुणिवो आसी इहं भूतले ॥२५७॥

यः षड्दर्शन-तर्क-तर्कितमतिः पचांग-शब्दागमः,
यो निःशेषमहीशनीतिकुशलो वादीभकण्ठीरवः ।
यः सिद्धान्तमपारतीरसुनिधिं तीर्त्वा पारंगतः,
स देवः श्रीसंयमादिमुनिप आसीदिह भूतले ॥२५७॥

अर्थ—जो छः प्रकार के दर्शन शास्त्र का ज्ञाता होने से तर्क बुद्धिवाला है, ज्योतिष और व्याकरण शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता है, सम्पूर्ण राजनीति का जानकार है और जो वादीरूपी मदोन्मत्त हाथियों के झुण्ड को सिंह के समान है जिसने सिद्धांत रूपी अपार समुद्र को पार कर किनारा प्राप्त कर लिया है—संपूर्ण सिद्धांत का ज्ञाता है, ऐसा मुनियों में श्रेष्ठ श्री संयम देव इस पृथ्वी पर हुआ था।

संजाओ इह तस्स चारुचरिओ नाणं भुद्धोयं (धोया) मई
सीसो देसजई सं (वि) बोहणयरो णीसेसबुद्धागमो।
नामेणं सिरिदुग्गएव विदिओ वागीसरायणओ
तेणेदं रइयं विसुद्धमइणा सत्थं महत्थ फुडं ॥२५८॥

सञ्जात इह तस्य चारुचरितो ज्ञानम्बुधौता मतिः।
शिष्यो देशजयी विबोधनपरो निःशेषबुद्धागमः।
नाम्ना श्रीदुर्गदेवो विदितो वागीश्वरायत्नकः
तेनेदं रचितं विशुद्धमतिना शास्त्रं महदर्थं स्फुटम् ॥२५८॥

अर्थ—उपर्युक्त गुणवाले संयमदेव का शिष्य विशुद्ध चरित्र वाला, ज्ञानरूपी जल के द्वारा प्रक्षालित बुद्धिवाला, वाद-विवाद में देशभर के विद्वानों को जीतनेवाला, सब को समझाने वाला, सम्पूर्ण शास्त्रों का विद्वान श्री दुर्गदेव नाम का ग्रन्थकर्त्ता हुआ, जिसने अपनी विशुद्ध बुद्धि द्वारा स्पष्ट और महान् अर्थवाला इस रिष्टसमुच्चय शास्त्र की रचना की।

जा धम्मो जिणदिट्ठणिच्छिदयये (प ए) बद्धं (बद्धे) ति जावज्जइ
जा मेरू सुरपायवेहि सरिसो (हिओ) जाव (वं) मही सा मही
जा नायं ? च सुरा णभो तिपदुणी चंद-क्क-तारागणं
तावच्छेउ मही अलम्मि विदिट्ठं (यं) दुग्गस्स सत्थं जसो (से)
॥२५९॥

यावद् धर्मो जिनदिष्टनिश्चितपदो वर्धते यावज्जगति
यावन्मेरूः सुरपादपैः सहितो यावन्मही सा मही।

जा मायं (?) च सुरा नभखिपथगा चन्द्र-अर्क-तारागणम्

तावदास्तां महीतले विदितं दुर्गस्य शास्त्रं यशसि ॥२५९॥

अर्थ—जबतक संसार में जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित धर्म वृद्धि को प्राप्त होता रहेगा, जब तक सुमेरु पर्वत कल्पवृक्षोंसहित पृथ्वी पर स्थित रहेगा, जब तक पृथ्वी स्थिर रहेगी, जब तक स्वर्ग में इन्द्र शासन करता रहेगा, जबतक आकाश में सूर्य, चन्द्र और तारागण प्रकाशमान रहेंगे तब तक पृथ्वी पर दुर्गदेव का शास्त्र और यश दोनों ही वर्तमान रहेंगे।

ग्रन्थ का रचना काल

संवच्छरइगसहसे बोलीणे णवयसीइ संजुत्ते।

सावणसुक्केयारसि दिअहम्मि (य) मूलरिक्खंमि ॥२६०॥

संवत्सरैकसहस्रे गते नवाशीतिसंयुक्ते।

श्रावणशुक्लैकादश्यां दिवसे च मूलर्क्षे ॥२६०॥

अर्थ—संवत् १०८९ श्रावण शुक्ला एकादशी को मूल नक्षत्र में इस ग्रन्थ की रचना की।

ग्रन्थ निर्माण का स्थान

सिरिकुंभनयरण (य) ए सिरिलच्छिनिवासनिवइरज्जंमि।

सिरिसतिनाह भवणे मुणि-भविअ-सम्मउमे (ले) रम्मे ॥२६१॥

श्रीकुम्भनगरनगके श्रीलक्ष्मीनिवासनृपतिराज्ये।

श्रीशान्तिनाथभवने मुनि-भविक-शर्मकुले रम्ये ॥२६१॥

अर्थ—श्री लक्ष्मी निवास राजा के राज्य में श्री कुम्भीनगर नग के मुनि और भव्य श्रावकों से सुशोभित श्री शांतिनाथ जिनालय में इस ग्रन्थ की रचना की गई।